माता सिंहालिका (होलिका) एवं पुत्र आचार्य स्वर्भानु (राहु एवं केतु)

(पौराणिक कथाओं पर आधारित)

लेखक

डॉ यतेंद्र शर्मा

माता सिंहालिका (होलिका) एवं पुत्र आचार्य स्वर्भानु (राहु एवं केतु)

(पौराणिक कथाओं पर आधारित)

लेखक

डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रकाशक

श्री राम कथा संस्थान पर्थ

३५मायना रिट्रीट, हिलरीज़, वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया – ६०२५

वेबसाइट: https://shriramkatha.org

ईमेल: srkperth@outlook.com

MATA SIMHALIKA (HOLIKA) EVAM PUTRA SWARBHANU (RAHU EVAM KETU) PAURANIK KATHAON PAR ADHARIT (HINDI)

ISBN: 978-1-7648041-2-7

Author / All rights Reserved

© Author: Dr. Yatendra Sharma

1st Edition: June 2025

E-Book

Published by: Shri Ram Katha Sansthan

35 Mayena Retreat, Hillarys
W.A. 6025, AUSTRALIA
Telephone: +61 8 94011543
Email: srkperth@outlook.com

क्रमावली

क्रमावली 5
अस्वीकरण 6
माता सिंहालिका (होलिका) 7
प्रस्तावना 8
जन्म और माता-पिता 11
बाल्यकाल 17
अग्निदेव से दीक्षा 24
माँ गंगा की कृपा 28
विप्रचित्ति के साथ विवाह 31
हिरण्यकश्यपु की वापसी 40
हिरण्यकश्यपु का उत्पात 50
होलिका 54
होलिका की पूजा 63
आचार्य स्वर्भानु (राहु एवं केतु) 66
प्रार्थना 67
जन्म 70
गुरु शुक्राचार्य 76
गुरु शुक्राचार्य आश्रम 84
आचार्य पद 89
विवाह 93
महातप 104
पुत्री प्रभा 114
जयन्ती 125
देवयानी 129
चक्रवर्ती सम्राट महाबालि 139
वामन अवतार 163
युवराज बाण 177
समुद्र मंथन 195
न्यायमूर्ति - शनि, राहु एवं केतु 212
लेखक: डॉ यतेंद्र शर्मा 216

अस्वीकरण

इस काव्य पुस्तक की सामग्री जनहित एवं सामान्य ज्ञान के लिए प्रदान की गई है। हमारा तद्भाव पाठक को कोई परामर्श देने का नहीं है। इस काव्य पुस्तक की सामग्री किसी भी तरह से विशिष्ट परामर्श का विकल्प नहीं है। आपको इस ज्ञान के आधार पर कोई भी निर्णय लेने से पहले प्रासंगिक निपुण या विशेषज्ञ का परामर्श प्राप्त कर लेना चाहिए।

इस काव्य पुस्तक के रचयिता, प्रकाशक और उनका कोई प्रतिनिधि किसी भी विषय में इस काव्य पुस्तक से सम्बंधित कोई प्रत्याभूति नहीं लेते। इस काव्य पुस्तक का पठन-पाठन-गायन-श्रवण पाठक स्वयं के संज्ञान से दायित्व ले कर ही करें।

यद्यपि हमने इस काव्य पुस्तक में सटीक ज्ञान देने का पूर्ण प्रयास किया है लेकिन किसी भी प्रकार कोई त्रुटि अथवा अकृता रह गई हो तो उसके लिए रचयिता एवं प्रकाशक क्षमा प्रार्थी हैं और इसके परिणाम स्वरूप किसी विधि, सामाजिक, धार्मिक, इत्यादि का दायित्व नहीं लेते।

माता सिंहालिका (होलिका)

प्रस्तावना

होली को भारत के सबसे पवित्र धार्मिक उत्सवों में से एक माना जाता है। यह उत्सव विश्व के लगभग हर देश में मनाया जाता है। इसे रंग और प्रेम का उत्सव भी कहते हैं। इस दिन सभी लोग एक दूसरे के प्रति किसी भी प्रकार की अप्रसन्नता अथवा बुरी भावनाएँ भूलकर एक साथ प्रेम का व्यवहार करते हैं। यह महान भारतीय उत्सव फाल्गुन महीने की पूर्णिमा की सायं को प्रारम्भ होता है। उत्सव का जश्न सायं को 'होलिका दहन' (होली की चिता जलाना) से प्रारम्भ होता है। अगले दिन, इसे एक दूसरे पर रंग डालकर और गले मिलकर बड़ी प्रसन्नता के साथ मनाया जाता है। होली के प्रारंभ के बारे में कई पौराणिक और लोक कथाओं में पृथक पृथक कथाएं बताई गई हैं। एक प्रसिद्ध कथा के अनुसार एक दुष्ट सम्राट हिरण्यकश्यपु इतना शक्तिशाली हो गया था कि उसने अपनी प्रजा को स्वयं को 'भगवान' के रूप में पूजा करने के लिए विवश किया। लेकिन सम्राट के क्रोध के उपरान्त भी उसके अपने पुत्र प्रह्लाद ने उसकी बात मानने से मना कर दिया और वह भगवान विष्णु का भक्त ही बना रहा। जब अपने पुत्र प्रह्लाद से स्वयं को भगवान की भांति पुजवाने में वह असमर्थ रहा तब उसने उसे मारने का प्रयास किया। सौभाग्य से वह इसमें सफल नहीं हो पाया। अंत में क्रोधित सम्राट ने अपनी बहन सिंहालिका के साथ मिलकर उसे मारने का षड्यंत्र किया। सिंहालिका एक अग्निदेव भक्त थीं। उनकी भक्ति से प्रसन्न हो स्वयं अग्निदेव ने उन्हें एक कम्बल वरदान स्वरुप दिया था जो अग्नि से उन्मुक्त था। अग्नि उसे नहीं जला सकती थी। उसने प्रह्लाद को अपनी गोद में लिया और उसके साथ चिता में बैठ गईं। संयोग से वह जलकर मर गईं लेकिन प्रह्लाद बच गया। इसलिए यह होली का उत्सव भक्त प्रह्लाद के आग से बचने पर प्रसन्नता से मनाया जाता है।

बाल्यकाल में इस होली के उत्सव को लेकर मेरे मन में कई प्रश्न थे। मेरा छोटा मन यह नहीं समझ पाता था कि यदि होलिका सच में एक बुरी स्त्री थी, तो होली पर चिता जलाने से पहले उसकी पूजा क्यों की जाती है? जैसा कि हम सब जानते हैं कि चिता जलाने से पहले, उसकी पूजा एक 'देवी' की तरह की जाती है। मेरे आचार्य दादाजी ने मेरे मन से भ्रम दूर किया और मुझे बताया कि होलिका कोई बुरी स्त्री नहीं थी। उन्होंने मुझे बताया कि सत्य में उनका मूल नाम सिंहालिका था। वह महर्षि कश्यप और उनकी पत्नी दिति की पुत्री थीं। वह दैत्य वंश के सम्राट हृण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु की बहन थीं। सम्राट हृण्याक्ष और उनके भाई हिरण्यकश्यपु, जय और

विजय (भगवान विष्णु के सुरक्षा प्रमुख) के पुनर्जन्म थे, जिन्हें महर्षियों, सनक, सनंदन, सनातन और सनत कुमार के श्राप के कारण पृथ्वी पर राक्षस के रूप में जन्म लेना पड़ा था। उनकी बहन सिंहालिका अग्नि देवता की गहन भक्त थीं। अग्नि देवता ने उन्हें वरदान के रूप में एक कंबल दिया था जो अग्नि में नहीं जल सकता था। उनका विवाह उनकी मौसी दानु के पुत्र और पाताल लोक के दानव वंश के सम्राट विप्रचित्ति से हुआ था। दुर्भाग्य से विवाह के कई वर्षों बाद भी वह माँ नहीं बन सकीं। उनके भाई शक्तिशाली सम्राट हिरण्यकश्यपु ने अपने एक पुत्र अह्लाद को उन्हें गोद देकर प्रसन्न किया। वह इस कृपा के लिए अपने भाई सम्राट हिरण्यकश्यपु की अति कृतज्ञ थीं। जब हिरण्यकश्यपु के अपने ही पुत्र प्रह्लाद को मारने के सब प्रयास असफल हुए, तब उसने अपनी बहन सिंहालिका से प्रह्लाद को मारने में मदद करने के लिए कहा। वह सिंहालिका को अग्नि देवता से मिले वरदान के बारे में जानता था। वह चाहता था कि सिंहालिका प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर चिता में बैठकर प्रह्लाद को जीवित जला दें। सिंहालिका प्रह्लाद को अपने दत्तक पुत्र अह्लाद की भांति प्रेम करती थी और कभी भी अपने छोटे भतीजे प्रह्लाद को मारना नहीं चाहती थीं। हिचकिचाते हुए यद्यपि उन्होंने सम्राट हिरण्यकश्यपु की बात मानने से मना कर दिया परन्तु क्रोध में सम्राट हिरण्यकश्यपु ने तब उनके दत्तक पुत्र अह्लाद और उनके पति विप्रचित्ति को मारने की धमकी दी। अह्लाद और विप्रचित्ति दोनों ही उन्हें अत्यंत प्रिय थे। यदि उनके पति और पुत्र को सम्राट हिरण्यकश्यपु मार देता तो उनके जीवन का भी अंत ही हो जाता। उन्होंने सोचा कि यदि उनके बलिदान से उनके पति और दत्तक प्रिय पुत्र अह्लाद का जीवन बच सकता है, तो क्यों न एक सम्मानित मृत्यु को गले लगाया जाए जिससे उनके प्रिय भतीजे प्रह्लाद का जीवन भी बच सके जो भगवान विष्णु का एक बड़ा भक्त था। उन्होंने अपने भाई हिरण्यकश्यपु की बात मान ली और प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर चिता में बैठ गईं। उन्होंने प्रह्लाद को आग में न जलने वाले कंबल से ढक दिया। इस प्रकार प्रह्लाद तो अग्नि में जलने से बच गए पर वह जलकर मर गईं। भक्त प्रह्लाद को बचाने के लिए उनके बलिदान की प्रशंसा की जाती है और होली पर जश्न प्रारम्भ होने से पहले उन्हें 'होलिका' अथवा 'चिता की देवी' के रूप में पूजा जाता है।

मैं जानता हूँ कि सिंहालिका (होलिका) की कथा साधारण लोगों को मालूम नहीं है। कुछ किंवदंतियों के आधार पर वह यही सोचते हैं कि सिंहालिका दैत्य वंश के सम्राटों हृण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु की एक दुष्ट बहन थी। लेखक ने सिंहालिका (होलिका)

के जीवन पर एक कथा लिखने का प्रयास किया है। यह सिंहालिका (होलिका) के जीवन की सच्चाई बताने का एक प्रयास है। लेखक को आशा है कि इससे लोगों में यह जागरूकता आएगी कि सिंहालिका कोई दुष्ट स्त्री नहीं थी बल्कि अग्नि देवता की गहन भक्त एवं महर्षि कश्यप और माता अदिति की एक महान पुत्री थी।

मन में एक प्रश्न उठ सकता है कि यदि सिंहालिका दुष्ट नहीं थी तो उसके भाई हृण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु दुष्ट क्यों थे? श्रुति कहती है कि कोई भी प्राणी दुष्ट पैदा नहीं होता। उसके कर्म ही उसे अच्छा या बुरा प्राणी बनाते हैं। जब प्राणी में चार बुरे विकार - अहंकार, वासना, क्रोध और लालच (अहंकार, काम, क्रोध और लोभ) में से कोई एक भी आ जाता है, तो वह बुराई की ओर बढ़ जाता है। सिंहालिका इन सभी विकारों से दूर थीं लेकिन उनके दोनों भाई हृण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु, इन चारों विकारों से पूर्ण थे।

इस कथा के लिखने में लेखक ने पर्याप्त अनुसंधान किया है। इस कथा का सूत्र कई पौराणिक एवं लोक कथाएँ हैं। आशा है कि यह कथा पाठकों को पसंद आएगी।

जन्म और माता-पिता

महर्षि कश्यप सोरों का भ्रमण कर रहे थे जहां उनकी पत्नी दिति कुछ समय से मां गंगा के तट पर उनके एक आश्रम में रह रही थीं। माँ गंगा का सौन्दर्य उन्हें सदैव मंत्रमुग्ध करता रहता था। माँ गंगा के तट से अधिक शांति उन्हें पृथ्वी पर कहीं नहीं मिलती थी। 'गंगा' नाम ही सबके मन में पवित्रता, शांति, आनंद, सुंदरता और मिठास की तस्वीर उभारता है। मां गंगा केवल एक नदी नहीं हैं। वह पृथ्वी पर किसी भी स्थान से कहीं अधिक ऊंची वस्तु का प्रतीक हैं। यदि हिमालय ध्यान में डूबा हुआ योगी है तो हिमालय के हृदय से निकलने वाली माँ गंगा उस ध्यान की पराकाष्ठा हैं। वह अच्छे या बुरे सभी के लिए एक आशीर्वाद हैं। वह सभी को आशीर्वाद देती हैं और सभी का शारीरिक और आध्यात्मिक पोषण करती हैं। वह प्रत्येक जीवित इकाई का जीवन और आत्मा हैं। वह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का पुल हैं। वह जल के रूप में सभ्यता हैं। पापी उनमें डुबकी लगाकर पवित्र हो जाते हैं। सत्य उनका शाश्वत संदेश है। संतों के लिए ईश्वर और सत्य पर्यायवाची हैं। माँ गंगा संतों को प्रिय है क्योंकि वह 'माँ' हैं। वह न केवल संतों की आत्मा हैं, बल्कि वह उनका मार्ग दर्शन करती हैं।

मां गंगा की सुंदरता का ध्यान करते हुए उनके हृदय से प्रार्थना निकली।

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे ।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले ॥

हे देवों की देवी भगवती गंगा, आप अपने जल की दयालु लहरों से तीनों लोकों को मुक्त करती हैं। हे पवित्र माँ, आप शंकर के सिर में निवास करती हैं। मेरी भक्ति आपके कमल चरणों में दृढ़ता से स्थापित रहे।

तभी महर्षि का ध्यान उनकी एक शिष्या कादम्बिनी के स्वर से टूटा।

'हे गुरुदेव महर्षि, बधाई हो! मां दिति को एक पुत्री का आशीर्वाद मिला है।'

एक पुत्री की प्राप्ति, अवश्य ही प्रकृति माता के आशीर्वाद से उसने जन्म लिया होगा। उन्होंने अपनी दूसरी पत्नी अदिति से प्राप्त अपने पुत्र अग्नि देव के वचनों को स्मरण

किया जब उन्होंने कहा था कि हे पिता, मौसी दिति को शीघ्र ही एक पुत्री का आशीर्वाद मिलेगा जो मेरी परम भक्त होगी। उस पर मेरे साथ भगवान वामन का भी आशीर्वाद होगा और एक दिन वह भगवान विष्णु के महान भक्त की रक्षा करेगी। उसका नाम सदैव के लिए अमर हो जाएगा।

अपनी शिष्या कादम्बिनी का स्वर सुनकर महर्षि कश्यप प्रसन्नता से रोमांचित हो गए और शीघ्र ही आश्रम पहुंचे जहां उनकी प्रिय पत्नी दिति ने इस दिव्य पुत्री को जन्म दिया था। उन्होंने पुत्री को गोद में ले लिया और बोले, 'हे सिंहालिका (सिंह की मित्र), मेरे परिवार में आपका स्वागत है।'

महर्षि कश्यप कोई साधारण ऋषि (संत) नहीं थे। वह भगवान ब्रह्मा के पोते और महर्षि मरुचि (भगवान ब्रह्मा के मानस-पुत्र) के पुत्र थे। वह सप्तऋषियों में से एक थे (अन्य सप्तऋषि महर्षि अगस्त्, महर्षि अत्रि, महर्षि भारद्वाज, महर्षि गौतम, महर्षि जमदग्नि और महर्षि वशिष्ठ)। उन्होंने वेदों के दस से अधिक स्तोत्र रचे और सनातन धर्म दर्शन, आयुर्वेदिक औषधियाँ, शास्त्रीय संगीत आदि पर अनेक पुस्तकें लिखीं। उन्होंने जो कुछ पुस्तकें लिखीं, वह निम्नलिखित थीं।

कश्यप संहिता: आयुर्वेदिक बाल रोग, स्त्री रोग और प्रसूति विज्ञान पर एक शास्त्रीय संदर्भ पुस्तक है। यह पुस्तक महर्षि कश्यप और उनके एक शिष्य वृद्धजीवक के बीच एक संवाद के रूप में लिखी गई थी। यह शिशुओं की देखभाल और बच्चों तथा महिलाओं के रोगों से संबंधित है।

कश्यप ज्ञानकंद: वैष्णव परंपरा को परिभाषित करने वाली महान ज्ञान की पुस्तक है।

कश्यप धर्मसूत्र: राजाओं, शिष्यों और धार्मिक व्यक्तियों (धर्म गुरुओं) के लिए एक शांतिपूर्ण जीवन जीने के सिद्धांतों का वर्णन करने वाली एक पुस्तक है।

कश्यप संगीत: संगीत पर एक ग्रंथ है। यह पुस्तक संगीत के प्रत्येक रस और भाव के विनियोग की व्याख्या करती है।

कश्यप अलंकार: अलंकार (संगीत स्वर की सजावट) के सिद्धांत को समझाने वाली एक पुस्तक है।

कश्यप शिल्प: वास्तुकला, प्रतिमा विज्ञान और सजावटी कला आदि पर एक संस्कृत ग्रंथ है।

कश्मीर के संस्थापक के रूप में महर्षि कश्यप से जुड़ी कई लोक कथाएँ भी हैं। 'नीलमत पुराण' की एक कथा के अनुसार, एक बार भयंकर बाढ़ के कारण पूरे भारत का क्षेत्र पानी में डूब गया था। समय के साथ जब बाढ़ का पानी पीछे हटा तो भारत का अधिकांश क्षेत्र आवास के लिए उपयुक्त हो गया, यद्यपि भारत के उत्तर में हिमालय की गोद में एक विशाल क्षेत्र अभी भी पानी में था। यह ठहरा हुआ पानी एक बड़े झील का रूप ले चुका था। इस झील में एक प्रकार का भूकम्पित विस्फोट हुआ जिससे झील के किनारे स्थित पहाड़ी चोटियों में दरारें पड़ गईं और पानी का निकास हो गया। इस प्रकार एक खूबसूरत स्थल का निर्माण हुआ। एक बार जब महर्षि कश्यप इस क्षेत्र से जा रहे थे तो वह इस स्थल की सुंदरता से मंत्रमुग्ध हो गए। उन्होंने यहाँ अपना आश्रम बनाने का निर्णय लिया। अपनी दिव्य शक्तियों से उन्होंने पहाड़ों को चीरकर स्थल समतल कर दिया। उन्होंने इस स्थल को रहने योग्य बनाने का काम सफलता पूर्वक पूरा कर लिया लेकिन एक ऐसे जलमार्ग की आवश्यकता थी जो इस ठहरे हुए झील से पानी को स्थायी रूप से बाहर निकाल सके। महर्षि कश्यप ने भगवान शिव की सहायता मांगी। उन्होंने भगवान शिव पर ध्यान लगाया। भगवान शिव प्रकट हुए और महर्षि कश्यप के अनुरोध पर उन्होंने अपने त्रिशूल को धरती में मार कर वहां से एक नदी बहा दी। इस स्थान को 'वितास्ता' कहा गया।

यह नदी सुचारू रूप से बहती थी, निवासियों की प्यास बुझाती थी और कई क्षेत्रों में सिंचाई और खेती योग्य भूमि का निर्माण करती थी। अंत में यह नदी सिंधु नदी से मिल गई। जब यह क्षेत्र पूरी तरह से समतल हो गया तो महर्षि कश्यप ने यहाँ अपना आश्रम स्थापित किया। उन्होंने अपने एक पुत्र, नील को इस आश्रम का प्रबंधन सौंपा। आश्रम और आसपास के क्षेत्रों की मनोरम सुंदरता ने पूरे भारत से कई लोगों को इस स्थान पर आकर्षित किया। वह इस सुन्दर क्षेत्र में रहने के लिए आकर बस गए और इस प्रकार यह आश्रम एक राज्य जैसा बन गया। इस प्रकार कश्मीर राज्य की स्थापना हुई।

भारतीय सनातन धर्म से जुड़े पुराणों और महाकाव्यों में महर्षि कश्यप को पृथ्वी पर प्राणी वंश प्रारम्भ करने वाले के रूप में वर्णित किया गया है। अपने पिता भगवान ब्रह्मा के निर्देश पर दक्ष प्रजापति ने अपनी १३ पुत्रियों का विवाह महर्षि कश्यप से किया और वंश वृद्धि का आदेश दिया। दक्ष की यह तेरह पुत्रियाँ जिनसे महर्षि कश्यप का विवाह हुआ वह थीं, अदिति, दिति, कद्रू, दानु, अरिष्टा, सुरासा, सुरभि, विनता, तम्रा, क्रोधवशा, इरा, विश्व और मुनि।

'विष्णु पुराण' और 'वायुपुराण' के अनुसार महर्षि कश्यप को अपनी १३ पत्नियों से जन्मित देव, दानव, यक्ष, दैत्य और अन्य सभी जीवित प्राणियों के कुल का पिता माना जाता है।

उनकी पहली पत्नी अदिति के पुत्र इंद्र, वरुण, पर्जन्य, मित्र, अंशु, पुषान, धात्री, अग्नि, अर्यमान, सूर्य, भाग और वमन थे, जिन्हें आदित्य (अदिति के पुत्र) कहा जाता है। उनकी दूसरी पत्नी दिति के पुत्र हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु और पुत्री सिंहालिका थी, जिन्हें दैत्य (दिति की संतान) कहा जाता है। उनकी तीसरी पत्नी दानु के पुत्र पुलोमण और विप्रचित्ति थे, जिन्हें दानव (दानु की संतान) कहा जाता है। उनकी चौथी पत्नी अरिष्टा के पुत्र गंधर्व थे जो नृत्य और संगीत की कला में निपुण थे। उनकी पाँचवीं पत्नी सुरसा के पुत्र नाग (सर्प) थे, जिन्हें नाग कहा जाता है। उनकी छठी पत्नी खसा के पुत्र यक्ष थे, जिनमें सबसे बड़े पुत्र कुबेर थे। उनकी सातवीं पत्नी सुरभि की संतान कामधेनु और नंदिनी गायें थीं। उनकी आठवीं पत्नी विनता के पुत्र अरुण और गरुड़ थे। उनकी नौवीं पत्नी तमरा के पुत्र पशु-जगत की देवियाँ थीं। उनकी दसवीं पत्नी क्रोधवशा के पुत्रों ने भी साँपों को जन्म दिया। वे सुरसा के कुल में सम्मिलित हुए और इस प्रकार उन्हें भी नाग कहा जाता है। उनकी ग्यारहवीं पत्नी इला के पुत्र सभी वनस्पतियों (पौधे, पेड़ आदि) की देवियाँ थीं। उनकी बारहवीं पत्नी कद्रू के पुत्र अनंत, वासुकि, तक्षक और नाहुष थे। वह भी सुरसा के कुल में सम्मिलित हुए और उन्हें भी नाग के नाम से ही जाना जाता था। उनकी तेरहवीं पत्नी मुनि से अप्सराएँ उत्पन्न हुईं, जिनमें प्रमुख अप्सराएँ उर्वशी, मेनका, रंभा और थिलोथमा थीं।

इस प्रकार, महर्षि कश्यप पृथ्वी पर वंशज युग की प्रारंभता के एक महान दिव्य व्यक्तित्व थे।

दिति, सिंहालिका की माता, प्रजापति दक्ष की ६६ पुत्रियों में से एक थीं। दिति अपने बचपन से ही अपनी बड़ी बहन सती से अत्यंत स्नेह रखती थीं। जैसा कि हम सभी जानते हैं, सती 'माँ प्रकृति' का अवतार थीं।

जब भगवान ब्रह्मा ने अपने पुत्र दक्ष को 'प्रजापति' (सभी प्राणियों के स्वामी) के पद पर पदोन्नत करने का निर्णय लिया, तो वह जानते थे कि 'माँ प्रकृति' के आशीर्वाद के बिना दक्ष के लिए इस महान उत्तरदायित्व का निर्वहन करना संभव नहीं होगा। उन्होंने दक्ष को निर्देश दिया कि 'प्रजापति' की उपाधि प्रदान किए जाने से पहले उसे 'माँ प्रकृति' का आशीर्वाद लेना चाहिए। उसे अपनी भक्ति से माँ प्रकृति को प्रसन्न कर उनसे अनुरोध करना होगा कि वह उसके गृह में पुत्री के रूप में जन्म लें। तदनुसार, दक्ष और उनकी पत्नी प्रसूति जंगलों में गए और माँ प्रकृति का ध्यान किया। माँ प्रकृति उनकी प्रार्थना और भक्ति से प्रसन्न हुईं और उन्होंने आशीर्वाद दिया कि वह शीघ्र ही उनकी पुत्री के रूप में जन्म लेंगी। उन्होंने यद्यपि एक शर्त रखी। जिस दिन किसी भी प्रकार से दक्ष अथवा उनके किसी भी परिवार के सदस्य ने उनका अपमान किया, तब वह तुरंत उन्हें छोड़ देंगी। (यही कारण था कि जब प्रजापति दक्ष ने एक यज्ञ समारोह के मध्य उनके पति भगवान शिव और उनका अपमान किया, तब सती ने स्वयं को योगाग्नि में जला दिया।) प्रकृति माता द्वारा दक्ष और प्रसूति को यह वचन दिए जाने के बाद ब्रह्मर्षि नारद भी एक और समस्या के साथ प्रकृति माता के पास आए। जय और विजय (भगवान विष्णु के सुरक्षा प्रमुख) को सनतकुमारों ने श्राप दे दिया था कि वह पृथ्वी पर राक्षस के रूप में जन्म लेंगे। जय और विजय दोनों अत्यंत दिव्य और शक्तिशाली व्यक्तित्व थे और भगवान विष्णु के अति प्रिय थे। किसी सामान्य महिला के लिए उन्हें नौ महीने तक अपनी कोख में रखना और जन्म देना संभव नहीं होता। इस समस्या का समाधान खोजने के लिए भगवान विष्णु ने ब्रह्मर्षि नारद को माता प्रकृति के पास भेजा। भगवान विष्णु की ऐसी इच्छा थी कि माता प्रकृति किसी योग्य महिला को ऐसी शक्ति और सामर्थ्य से धन्य करें कि वह इन दो शक्तिशाली व्यक्तित्वों को अपनी कोख में धारण कर सके। माता प्रकृति ने भगवान विष्णु के निर्देशों का पालन किया और अपनी सखी धरा को बुलाया। उन्होंने उनसे दक्ष के कुल में अपनी बहन के रूप में जन्म लेने एवं अंततः महर्षि कश्यप से विवाह करने और इन दो शक्तिशाली व्यक्तित्वों जय और विजय को अपनी कोख में धारण करने का अनुरोध किया। माँ धरा ही एकमात्र ऐसी थीं जिनमें ऐसा कार्य करने की क्षमता और शक्ति थी। माँ धरा ने माँ प्रकृति के निर्देशों को स्वीकार कर लिया और

दक्ष परिवार में माँ प्रकृति की बहन के रूप में जन्म लेने के लिए स्वयं को तैयार कर लिया।

धरा माता की वाहक (वाहक) गाय इन दोनों मित्रों के बीच हो रही इन बातों को सुन रही थी। उन्होंने प्रकृति माता और धरा माता से प्रार्थना की कि वह उन्हें भी अपने साथ ले जाएँ क्योंकि वह उनसे बिछड़ने का दुःख सहन नहीं कर सकती थी। माताओं ने उनकी बात मान ली और उसे आशीर्वाद दिया कि वह भी नए जीवन में धरा की पुत्री के रूप में जन्म लेंगीं।

माँ धरा की वाहक गाय माँ प्रकृति की वाहक सिंहनी की अति अच्छी मित्र थी और उन्हें इस कारण 'सिंहमित्रा' (सिंहनी की मित्र) कहा जाता था।

जब माता प्रकृति ने दक्ष और प्रसूति को आशीर्वाद के कारण उनकी पुत्री के रूप में जन्म लिया तब उनका नाम सती रखा गया। माता धरा ने दक्ष की दूसरे पत्नी पञ्चजनी से उनकी पुत्री के रूप में जन्म लिया और उनका नाम दिति रखा गया (माता धरा का ही एक और नाम)। जब दिति ने महर्षि कश्यप से विवाह किया तो उन्होंने जय और विजय के को हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु के रूप में जन्म दिया। उन्होंने अपनी वाहक गाय सिंहमित्रा को भी अपनी पुत्री के रूप में जन्म दिया और इस नए जीवन में उनका नाम सिंहालिका (सिंहमित्रा /शेरनी की सहेली का एक और नाम) रखा गया। महर्षि कश्यप, सर्वज्ञ (त्रिकालदर्शी) थे। उन्हें दिति और गाय के इन अवतारों की पूर्व कहानियों का पता था अतः उन्होंने अपनी पुत्री को सिंहालिका (सिंहनी की सहेली) नाम से सम्बोधित लिया।

बाल्यकाल

सिंहालिका के जन्म के तुरंत बाद उनके पिता महर्षि कश्यप अपने शिष्यों को अन्य आश्रमों में आध्यात्मिक मार्ग दर्शन देने के लिए चले गए। सुना गया कि वह हिमालय की ओर उत्तर-पश्चिम की यात्रा पर चले गए थे। उन्होंने वहाँ एक नया आश्रम स्थापित करने के लिए कड़ी मेहनत की और इसे कश्मीर का नाम दिया। उनके शिष्यों में से एक, रुद्र, माता गंगा के तट पर सोरों में महर्षि कश्यप के आश्रम की देखभाल और प्रबंधन किया करते थे।

सिंहालिका को महर्षि कश्यप के इस आश्रम में माता दिति द्वारा उनके दो बड़े भाई, हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकश्यपु के साथ पाला जा रहा था। इन दोनों भाइयों में छोटा भाई हिरण्यकश्यपु उनका प्रिय भाई था। बड़ा भाई हिरण्याक्ष अहंकारी और दुर्विनीत था। वह अक्सर उन्हें चिढ़ाया करता था। उन्हें हिरण्याक्ष कभी पसंद नहीं आया। जब भी हिरण्याक्ष उन्हें चिढ़ाता, वह हिरण्यकश्यपु के पास दौड़ जातीं और उसकी परिदेवना करतीं। हिरण्यकश्यपु उन्हें समझाते हुए कहते कि भाई हिरण्याक्ष यद्यपि उन्हें उसे दिल की गहराई से प्रेम करते हैं, लेकिन वह प्रेम और स्नेह व्यक्त करने वाले व्यक्ति नहीं हैं। वह उनकी अनदेखी करने का परामर्श देते थे। वह सोचती थी कि हिरण्यकश्यपु जैसा विनम्र, दयालु और प्रेम करने वाला व्यक्ति अपने बड़े भाई हिरण्याक्ष की प्रशंसा कैसे कर सकता है, जो उनके बिल्कुल विपरीत स्वभाव का है।

इसी प्रकार समय बीतता गया। सिंहालिका ४ वर्ष की हो गईं थीं। एक दिन प्रातः जब वह जागीं तब उन्होंने देखा कि आश्रम में अति हलचल थी। आश्रम को स्वच्छ किया जा रहा था और हर ओर पुष्पों से सजाया जा रहा था। आश्रम के प्रवेश द्वार से अतिथि कक्ष तक लाल कालीन बिछाई गई थी। आश्रम की पाकशाला भी अनेक अतिथियों के लिए भोजन बनाने में व्यस्त थी। वह यह जानने के लिए अति उत्सुक थीं कि क्या हो रहा है? वह अपने भाई हिरण्यकश्यपु के पास गईं और उनसे इसका कारण पूछा। उन्होंने बताया कि उनकी मौसी दानु, जो हमारी माँ दिति की बहन हैं, अपने दो पुत्रों पुलोमण और विप्राचित्ति एवं कई सेवक और सेवकायों के साथ आ रही थीं। मौसी दानु और उनका दल हमसे कोई संदेश पहुँचाने आ रहे थे। सिंहालिका ने अपनी मौसी दानु के बारे में सुना अवश्य था, लेकिन वह उनके बारे में अधिक नहीं जानती थी।

'यह मौसी दानु कौन हैं, भैया', उसने हिरण्यकश्यपु से विनम्रता से पूछा।

‘दानु हमारी मौसी हैं, मेरी प्रिय बहन। मौसी दानु और हमारी माँ दिति सगी बहनें हैं। वह अपने दो पुत्रों, पुलोमण और विप्रचित्ति के साथ हमसे मिलने आ रहीं हैं। मैंने सुना है कि हमारी मौसी अदिति और मौसी दानु के पुत्रों के बीच वैमनस्यता है। हमारी मौसी अदिति, हमारी माँ दिति और मौसी दानु तीनों वैसे तो बहनें हैं, परन्तु मौसी अदिति हमारे नाना प्रजापति दक्ष और उनकी दूसरी पत्नी प्रसूति की पुत्री हैं। मौसी अदिति के पुत्रों को आदित्य (देवता) कहा जाता है और उनके सबसे बड़े पुत्र का नाम इंद्र है। मौसी अदिति के पुत्र (आदित्य) और मौसी दानु के पुत्र (दानव) हमारे मोंसेरे भाई हैं। मुझे बताया गया है कि इंद्र ने पुलोमण को मारने की धमकी दी है,' हिरण्यकश्यपु ने कहा।

'एक भाई दूसरे भाई को मारने की धमकी दे रहा है, यह भाई कितना क्रूर है?' सिंहालिका ने कहा।

'तुम इन बातों को समझने के लिए अति छोटी हो, सिंहालिका। जब तुम बड़ी हो जाओगी, तब भाइयों के बीच इस वैर-भाव को समझ पाओगी। अब जाओ और खेलो। मौसी दानु का पुत्र विप्रचित्ति और तुम एक ही आयु के हो। तुम उससे मिलकर अति प्रसन्न होगी। विप्रचित्ति के साथ बिताने के लिए आने वाले अच्छे और प्रसन्नता भरे दिनों की योजना बनाओ। जब तक वह हमारे साथ है, एक साथ खेलो और आनंद लो', हिरण्यकश्यपु ने कहा और वह चला गया। उन्हें अपनी मौसी दानु और उनके अनुयायियों का स्वागत करने की तैयारी करनी थी।

(नोट: अदिति के पुत्रों को आदित्य (देव) कहा जाता था, दानु के पुत्रों को दानव और दिति के पुत्रों को दैत्य कहा जाता था। इसलिए आदित्य (देव), दानव और दैत्य वंश (कुल) हैं। यह आवश्यक नहीं कि वह देवता या राक्षस हैं। निःसंशय दानवों और दैत्यों के व्यवहार ने उन्हें राक्षसों का पर्याय बना दिया) ।

मौसी दानु अपने दो पुत्रों और कई सेवकों के साथ निर्धारित समय पर पहुँचीं। आश्रम में माँ दिति के नेतृत्व में सभी ने उनके आगमन पर उनका स्वागत किया। माँ दिति और मौसी दानु ने एक दूसरे को गले से लगाया। लंबे समय बाद प्रेम और स्नेह से

मिलकर उनकी आँखें नम हो गईं। पुलोमण और विप्रचित्ति ने माँ दिति के पैर छूए। इसी तरह, हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु और सिंहालिका ने मौसी दानु के पैर छूए। पुलोमण और विप्रचित्ति ने हिरण्यकश्यपु और हिरण्याक्ष से अति स्नेह और प्रेम से भेंट की और उन्हें गले लगाया। सिंहालिका ने भी दोनों का अभिवादन किया।

सिंहालिका विप्रचित्ति से मिलकर अत्यंत प्रसन्न थीं। वह निःसंदेह उनकी आयु के समकक्ष था। वह अत्यंत सुंदर और मित्रवत मुसकुराता हुए चेहरे वाला था। उसका स्वर अत्यंत मधुर और विनम्र था।

'भगवान को धन्यवाद कि विप्रचित्ति मेरे बड़े भाई समान नहीं है। वह मेरे छोटे भाई हिरण्यकश्यपु समान अत्यंत दयालु और प्रिय युवक लगता है। निश्चित रूप से हमारी मित्रता अच्छी रहेगी,' सिंहालिका ने मन ही मन सोचा।

माँ दिति मौसी दानु को अपने निजी कक्ष में ले गईं। हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु पुलोमण को अपने कक्ष में ले गए। हिरण्यकश्यपु ने सिंहालिका से कहा कि वह विप्रचित्ति को अपने साथ ले जाकर आश्रम दिखाए। सिंहालिका आज अत्यंत प्रसन्न थीं क्योंकि उन्हें विप्रचित्ति के रूप में एक अच्छा मित्र मिल गया था। आश्रम में उनकी आयु का कोई नहीं था। उनके दोनों भाई, हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु, उनसे आयु में अति बड़े थे, और पिता की तरह व्यवहार करते थे, न कि प्रेम करने वाले प्रिय भाई या मित्र के समान। यद्यपि भाई हिरण्यकश्यपु उनके प्रति दयालु, प्रेम करने वाले और विनम्र थे, फिर भी वह एक मित्र की तुलना में बड़े भाई की तरह ही व्यवहार करते थे। हिरण्याक्ष अति अनुशासित व्यक्ति थे। अपने व्यवहार में कठोर थे। हिरण्याक्ष ने उनके साथ कभी भी अच्छा व्यवहार नहीं किया था। वह सदैव उसे छोटी आयु का समझ डांटते रहते रहे थे। वह अपनी आयु के समकक्ष सदैव एक भाई या बहन चाहती थीं जिससे अच्छी मित्रता कर सके। अब लगता है विप्रचित्ति में उन्हें एक अच्छा मित्र मिल गया है।

उन्होंने विप्रचित्ति को आश्रम में हर स्थान पर घुमाया और विशेषकर वह सब कुछ दिखाया जो उन्हें सबसे अधिक पसंद था। उन्होंने उसे आश्रम के सुंदर बगीचे दिखाए और फिर उसे माँ गंगा के किनारे ले गईं। सिंहालिका एक अत्यंत अच्छी गायिका थीं। उनका स्वर अत्यंत मधुर था। उन्होंने अपने पिता महर्षि कश्यप द्वारा रचित कुछ गीत

गाए और नाचीं। विप्रचित्ति उनकी सुंदरता, कोमल मधुर स्वर और दिल की पवित्रता से मंत्रमुग्ध हो गया था। दोनों अति प्रसन्न थे और उन्होंने अपने दिन का पूरा आनंद लिया।

मौसी दानु अपने पुत्रों के साथ आश्रम में एक सप्ताह तक रुकीं। इस सप्ताह का हर दिन सिंहालिका के लिए एक यादगार था। वह प्रति दिन प्रातः विप्रचित्ति को आश्रम के बगीचों और माँ गंगा के किनारों पर ले जाती, वहाँ खेलती, गाती और नाचती। जब उन्हें पता चला कि मौसी दिति अपने पुत्रों पुलोमण और विप्रचित्ति के साथ आश्रम से अपने घर लौट रही हैं, तो वह अति दुःखी हो गई। विप्रचित्ति को विदा करने के बाद, वह माँ गंगा के किनारे गईं और अति रोईं।

सिंहालिका ने देखा कि मौसी दानु के आश्रम छोड़ने के बाद आश्रम का वातावरण अति बदल गया था। हर किसी में उदासी का भाव था। माता दिति और उनके भाइयों, हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु के चेहरों पर मुस्कान और प्रसन्नता नहीं थी। वह सोच रही थी कि ऐसा क्या अनर्थ हो गया कि मौसी दानु की यात्रा के बाद परिवार में हर कोई इतना उदास है? वह सभी से पूछना चाहती थी, अपनी माँ, अपने भाइयों और आश्रम के कुछ वरिष्ठ सदस्यों से भी, लेकिन कोई भी उसे कुछ नहीं बताता था। फिर एक दिन उसके भाई हिरण्यकश्यपु ने उसे अपनी गोद में उठा लिया और अति प्रेम और स्नेह से उन्हें गंगा किनारे ले गया।

'सिंहालिका, मैं और भाई हिरण्याक्ष कल प्रातः भगवान ब्रह्मा का ध्यान करने के लिए आश्रम छोड़कर जंगल जा रहे हैं। हमें हम सभी की भलाई के लिए उनकी शरण और आशीर्वाद लेना होगा। हमारे अस्तित्व के लिए यह आवश्यक है। मौसी अदिति के पुत्र उनके बड़े पुत्र इंद्र के नेतृत्व में हमें नष्ट करने की धमकी दे चुके हैं ताकि वह हम सभी पर वर्चस्व स्थापित कर सकें। दुर्भाग्य से हमारे पिता महर्षि कश्यप इस विषय पर मौन और तटस्थ हैं। उन्होंने यह मामला केवल हम पर ही छोड़ दिया है। मौसी दानु हमसे मिलने ऐसी ही सारी घटनाएं सुनाने आई थीं। उनके पुत्र पुलोमण को तो इंद्र ने पहले ही मारने की धमकी दे रखी है। मुझे बताया गया है कि शीघ्र ही इंद्र हम दोनों भाइयों को मारने के लिए हमसे युद्ध करेगा। ऐसा होने से पहले हमें अपनी रक्षा के लिए भगवान ब्रह्मा से दिव्य आशीर्वाद और दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लेने चाहिए। भगवान विष्णु हमारी मदद नहीं करेंगे क्योंकि वह माँ अदिति के पक्ष में हैं। उनके एक पुत्र

वामन को उनकी ऊर्जा का अवतार कहा जाता है। मौसी सती के आत्म-दाह के बाद भगवान शिव भी ध्यान में ही रहते हैं, इसलिए उनसे संपर्क नहीं किया जा सकता। आप जानते ही हैं कि माता दिति और सती अति अच्छी सहेलियाँ थीं। इस आपात और संकट के समय में हमें उनकी अति याद आ रही है। यदि वह जीवित होतीं तो वह हमारी ओर से अवश्य खड़ी होतीं और मौसी अदिति के पुत्रों को हमें कोई हानि पहुँचाने का साहस नहीं होता। लेकिन खेद है कि वह अब जीवित नहीं हैं। अब हमारी एक मात्र आशा भगवान ब्रह्मा ही हैं। इसलिए हम उनकी तपस्या कर उनसे आशीर्वाद पाने के लिए आश्रम छोड़ रहे हैं। अब तुम्हें माँ दिति और आश्रम का ध्यान रखना है', हिरण्यकश्यपु ने कहा।

सिंहालिका स्तब्ध रह गईं। वह अभी तक विप्रचित्ति के जाने के दुःख से उबर नहीं पाई थी और अब उनके भाई हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु भी उन्हें और माँ दिति को छोड़कर जाना चाहते थे। वह रोने लगीं।

'नहीं, नहीं भैया, तुम कहीं नहीं जाओगे। मैं तुम्हारे बिना नहीं जीवित नहीं रह सकती। तुम इस ध्यान के लिए भैया हिरण्याक्ष को वन क्यों नहीं भेज सकते? तुम्हें ही क्यों जाना है?' सिंहालिका चिल्लाई। उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी कि उनका भाई हिरण्याक्ष ध्यान के लिए वन जाए।

'समझने की कोशिश करो सिंहालिका। हिरण्याक्ष अकेले यह नहीं कर सकते। हमें यह साथ में करना है और अपनी रक्षा के लिए भगवान ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करना है। कल्पना करो, जब हम कुछ वर्षों में वापस आएंगे तो हम सभी का जीवन अति अच्छा होगा।मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि मैं तुमसे फिर कभी दूर नहीं जाऊँगा,' हिरण्यकश्यपु ने कहा।

अचानक सिंहालिका को ऐसा लगा मानो वह एक वयस्क महिला बन गई हो। वह कभी नहीं चाहती थी कि उसके परिवार का कोई सदस्य किसी द्वारा मारा जाए। उन्होंने अपने छोटे से मन में सोचा कि शायद कुछ वर्षों के लिए अपने प्रिय भाइयों से बिछड़ना इस बात से अच्छा है कि कोई उन्हें मार दे और वह सदैव के लिए बिछड़ जाएं। उन्होंने यही सोचा, 'उन्हें जंगल जाने दो, ध्यान लगाने दो। हम सभी की रक्षा के लिए भगवान ब्रह्मा से मन चाहे वर प्राप्त करने दो।'

'ठीक है भैया, यदि आपको लगता है कि यह हम सभी के लिए सबसे अच्छा है, तो ऐसा ही करो। आप दोनों भाई वन में जाएं, और भगवान ब्रह्मा का ध्यान करके उनकी शरण और आशीर्वाद प्राप्त करें। कृपया मुझे बताइए कि आपकी अनुपस्थिति में माँ को प्रसन्न रखने के लिए मुझे क्या करना चाहिए?' सिंहालिका ने पूछा।

'माता दिति यह सब समझती हैं और हम उनके आशीर्वाद के साथ वन जा रहे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब तक हम वापस नहीं आते, तब तक वह सभी कठिनाइयों का सामना कर लेंगी। यद्यपि कोई ऐसी कठिनाई उत्पन्न होती है जिसे माता दिति और तुम हल नहीं कर पातीं तो बिना हिचकिचाए माता अदिति के पुत्र वामन को संदेश भेजकर संपर्क कर लेना। वामन अति न्यायप्रिय व्यक्ति हैं। हमारी अनुपस्थिति में वह अपने अन्य भाइयों को हमारे विरुद्ध कोई अनुचित कार्य करने की अनुमति नहीं देंगे। यदि तुम्हारा वामन से संपर्क न हो सके, क्योंकि अधिकतर समय वह ध्यान में वन में घूमते रहते हैं, तो तुम अग्निदेव जो मौसी अदिति के ही पुत्र हैं, उन पर विश्वास कर सकती हो। वह मेरे अच्छे मित्र हैं और जब तक हम वापस नहीं आते तब तक वह अपने अन्य भाइयों को हमारे परिवार से दूर रखने का पूर्ण प्रयास करेंगे। मैंने उन्हें शीघ्र अति शीघ्र यहां आश्रम आने और तुम्हें तथा माता दिति को सांत्वना देने का संदेश भेज दिया है। मुझे विश्वास है कि वह शीघ्र ही आएंगे। तुम उन पर पूर्ण विश्वास कर सकती हो', हिरण्यकश्यपु ने कहा।

बालिका सिंहालिका अपने प्रिय भाई के कंधों पर सिर रखकर अति देर तक सिसकती रही। भाई हिरण्यकश्यपु अपनी प्रिय बहन के प्रति अपना प्रेम और स्नेह दिखाते रहे और उसे रोने दिया। सिंहालिका को पता ही नहीं चला कि वह कब उनकी गोद में सो गई। जब वह प्रातः जागीं तो उन्होंने माँ दिति को रोते हुए देखा। दोनों भाई, हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु, ध्यान के लिए वन चले गए थे।

धीरे धीरे समय बीतता गया। एक दिन प्रातः जब वह जागी, तो उन्होंने एक युवक को अपनी माँ से बात करते देखा। उन्होंने आश्रम में इस व्यक्ति को पहले कभी नहीं देखा था। वह यह जानने के लिए उत्सुक थी कि यह युवक कौन है और वह मेरी माँ से बात क्यों कर रहा है? वह आश्रम के उस कक्ष में गई जहाँ यह दोनों बातों में लगे हुए थे। उस व्यक्ति ने सिंहालिका को देखा और अपने आसन से उठकर उन्हें अपनी गोद में उठा लिया।

'सिंहालिका, तुम मुझे नहीं जानती। मैं तुम्हारा मौसेरा भाई अग्निदेव और तुम्हारे भाई हिरण्यकश्यपु का मित्र हूँ। मुझे क्षमा करना यद्यपि मुझे हिरण्यकश्यपु का संदेश मिल गया था, परन्तु मैं शीघ्र तुमसे और मौसी दिति से मिलने तुरंत नहीं आ सका', उस युवक ने कहा।

'अग्निदेव भैया, हाँ, भैया हिरण्यकश्यपु ने मुझे आपके बारे में बताया था। मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही थी कि आप आकर हमें सांत्वना दें। देखिए, भाइयों हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु के बिना आश्रम कितना सूना सूना सा लग रहा है। पिता महर्षि कश्यप भी हमें अति समय से मिलने नहीं आए हैं। हमने सुना है कि वह उत्तर-पश्चिम में एक नया आश्रम बना रहे हैं, और अति व्यस्त हैं', सिंहालिका ने कहा।

'अब मैं यहाँ आ गया हूँ। मैं तुम्हारी और मौसी दिति की हर संभव सहायता करूँगा। मुझे पता है कि मैं यद्यपि हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु की अनुपस्थिति से पैदा हुई कमी को नहीं भर सकता, लेकिन मैं अपनी बहन को अपना प्रेम और स्नेह अवश्य दूँगा। मैं तब तक यहीं रहूँगा जब तक आप सुरक्षित अनुभव नहीं करते और अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं कर लेते। मैं तुम्हें अपना शिष्य स्वीकार करूँगा और वह समस्त ज्ञान दूंगा जो एक गुरु दे सकता है', अग्निदेव ने कहा।

'मेरे भाई, कोटि कोटि विनम्र प्रणाम। अब आप मेरे भाई ही नहीं, मेरे गुरु भी हैं। मैं शिष्य बनने को तत्पर हूँ। यदि मैं आपकी अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतर सकी, तो छोटी मूर्ख बहन समझ मुझे क्षमा करते रहें,', सिंहालिका ने कहा।

अग्निदेव से दीक्षा

अगले दिन ब्रह्म मुहूर्त में अग्निदेव ने सिंहालिका को जगाया और माँ गंगा के तट पर ले गए। जब सिंहालिका ने अपने दैनिक कार्य (नित्य-कर्म) पूरे कर लिए, तो गुरु अग्निदेव ने शुद्धिकरण और दीक्षा संस्कार संपन्न किए।

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती ।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेअस्मिन्सन्निधिं कुरु ।।

हे सभी माताओं - गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु, कावेरी, मुझे अपने पवित्र जल से पवित्र करो।

ऊँ अपवित्र: पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोअपि वा ।
य: स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्यभ्यंतर शुचि: ।।

चाहे स्थान पवित्रता से परिपूर्ण हों या अपवित्रता से, जो कोई कमल नयन भगवान (विष्णु) का स्मरण करता है, वह आंतरिक और बाह्य शुद्धि प्राप्त करता है।

यानि कानि पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि तानि प्रणश्चन्ति प्रदक्षिणा पदे-पदे ।।

हे प्रभु, मैंने अपने जन्म से लेकर आज तक अपने पूरे जीवन में अनेक पाप किए हैं। मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरी परिक्रमा (भगवान के चारों ओर चक्कर लगाना) के प्रत्येक चरण पर उन्हें नष्ट कर दें।

मंत्र हीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ।।

हे ईश्वर, मेरी पूजा मंत्रों के बिना, अनुष्ठानों के बिना और भक्ति के बिना है। कृपया इन गुणों के बिना मेरी पूजा स्वीकार करें।

ॐ असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्मा अमृतं गमय । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ, (हे प्रभु) मुझे (भ्रामक संसार में) अवास्तविकता में न रखो बल्कि मुझे (शाश्वत आत्मा की) वास्तविकता की ओर ले चलो। मुझे (अज्ञान के) अंधकार में न रखो बल्कि मुझे (आध्यात्मिक ज्ञान के) प्रकाश की ओर ले चलो। मुझे मृत्यु के संसार में न रखो बल्कि मुझे अमरत्व (आत्म-साक्षात्कार) के संसार की ओर ले चलो।

ॐ, शांति, शांति, शांति।

सिंहालिका ने तब प्रार्थना की:

ऊँ महाज्वालाय विद्महे अग्नि मध्याय धीमहि ।
तन्नोः अग्नि प्रचोदयात ।।

ॐ, मैं महान ज्वाला का ध्यान करती हूँ। हे अग्निदेव, मुझे उच्च बुद्धि प्रदान करें। हे, दीप्तिमान अग्निदेव, मेरे मन को प्रकाशित करें।

सिंहालिका अति अनुशासित और आज्ञाकारी शिष्या थी। वह प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठती थी और अपने दैनिक कर्म (नित्य-कर्म) पूरा करने के बाद, माँ गंगा में डुबकी लगाकर स्वयं को पवित्र करती थी।तब अपने गुरु अग्निदेव से पाठ ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाती थी। वह अग्निदेव से अपनी शिक्षा की पूरी अवधि के दौरान केवल फल आहार करती थी।

वह गुरु अग्नि देव से यह जानना चाहती थी कि भाई इंद्र (मौसी अदिति के पुत्र) का भाई पुलोमण (मौसी दानु के पुत्र) से वैर क्यों है? अपने गुरु से ऐसा प्रश्न पूछने के लिए साहस जुटाना उनके लिए सरल नहीं था, लेकिन एक दिन जब उन्होंने अग्निदेव को प्रसन्न मुद्रा में देखा तो उन्होंने साहस दिखाकर यह प्रश्न पूछ ही लिया।

गुरु अग्नि देव बोले, ‘हे प्रिय सिंहलिका, तुम्हारे इस प्रश्न के उत्तर में कि पुलोमण (तुम्हारी मौसी दानु का पुत्र) और इंद्र (तुम्हारी मौसी अदिति का पुत्र) के बीच शत्रुता क्यों है, मैं बस इतना कह सकता हूँ कि यह ब्रह्मांड पर शासन करने की उनकी महत्वाकांक्षाओं के कारण है। इंद्र और पुलोमण दोनों ही ब्रह्मांड का स्वामी बनना चाहते हैं। इस कथा को ध्यान से सुनो। दैत्य वृत्र (एक विशाल कोबरा समान दैत्य) संसार की समृद्धि और प्रसन्नता में एक बड़ी बाधा था। उसने वर्षा के स्वामी और सूर्य के स्वामी को बंदी बना लिया और पृथ्वी पर वर्षा और सूर्य के प्रकाश को नहीं आने दिया। इंद्र ने वृत्रासुर से युद्ध कर उसे मार डाला और युद्ध में उसकी शक्तियों (माया) का नाश कर दिया। परिणाम स्वरुप ब्रह्मांड में वर्षा और सूर्य का प्रकाश आ गया। ब्रह्मा जी उनकी वीरता से अति प्रसन्न हुए और उन्होंने उन्हें मानवता का मित्र घोषित कर दिया। उन्होंने उन्हें स्वर्ग का राजा भी बना दिया और उन्हें राजधानी के रूप में अमरावती नगर प्रदान किया। राक्षस वृत्र पुलोमण का अति बड़ा मित्र था। राक्षस वृत्र और पुलोमण वास्तव में ब्रह्मांड पर विजय प्राप्त करके साथ में शासन करने की योजना बना रहे थे। इंद्र द्वारा वृत्र का वध पुलोमण की योजनाओं को विफल कर गया और वह इंद्र का कट्टर शत्रु बन गया। अपने सबसे अच्छे मित्र वृत्र की हत्या का बदला लेने के लिए वह कटिबद्ध हो गया। इंद्र उसकी पुत्री सुचि से भी प्रेम करने लगे और उससे विवाह करना चाहते थे। चूँकि पुलोमण ने इस गठबंधन से मना कर दिया, अतः इंद्र ने भागकर सुचि से गांधर्व विवाह कर लिया। इंद्र के इस कार्य से पुलोमण और भी क्रोधित हो गया और वह इंद्र का कट्टर शत्रु बन गया। उसका एकमात्र उद्देश्य इंद्र का मारना है।संक्षेप में, मैंने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया है। तुम इन कई विषयों को समझने के लिए अभी छोटी हो, अतः तुम्हें इनकी कदापि भी चिंता नहीं करनी चाहिए। तुम्हारे सभी भाई अपनी और अपनी भलाई का ध्यान रखने में सक्षम हैं। अब तुम अपनी पढ़ाई पर पूर्ण ध्यान दो और तब तक अपनी माँ की देखभाल करो जब तक कि हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु ब्रह्मा जी की तपस्या से सफल होकर वापस नहीं आ जाते', अग्निदेव ने कहा।‘

अग्निदेव कुछ समय के लिए अपनी मौसी दिति के आश्रम में रुके और सिंहालिका को वेद, युद्ध, राजनीति और प्रबंधन की शिक्षा देते रहे।

सिंहालिका अति आज्ञाकारी, विश्वसनीय और अनुशासित शिष्या थीं। उन्होंने अपने गुरु अग्निदेव की तन मन से सेवा की। अग्निदेव उनकी भक्ति से अत्यंत प्रसन्न हुए। जब उनकी शिक्षा पूर्ण हो गई, तो अग्निदेव ने आश्रम छोड़ने का निर्णय लिया और अपनी मौसी दिति से इसकी अनुमति ली। आश्रम से प्रस्थान करने से पहले अग्निदेव ने सिंहालिका को आशीर्वाद दिया और उसे एक कंबल दिया जो अग्नि से अभेद था।

सिंहालिका अपने गुरु अग्निदेव की संगति में अत्यंत प्रसन्न थीं। इस मध्य अपने भाइयों, हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु के बारे में सब कुछ भूल गई थीं। जब अग्निदेव ने आश्रम छोड़ दिया तो वह फिर से अकेली हो गईं और गंगा के किनारे आकर कई घंटों तक माँ गंगा से बातें करती रहतीं थीं।

माँ गंगा की कृपा

सिंहालिका प्रति दिन प्रातः माँ गंगा के किनारे जाती थीं और स्नान करने के बाद, उनकी महिमा गाती थीं।

तव चेन्मातः स्रोतःस्नातः पुनरपि जठरे सोऽपि न जातः ।
नरकनिवारिणि जाह्नवि गङ्गे कलुषविनाशिनि महिमोत्तुङ्गे ॥

(देवी माँ गंगा को प्रणाम) हे माता, जो कोई भी आपके शुद्ध जल के प्रवाह में स्नान करता है, वह पुनर्जन्म नहीं लेता। हे जान्हवी गंगा, आप लोगों को नर्क में गिरने से बचाती रहती हैं और उनके पापों का नाश करती हैं। हे माता गंगा, मैं आपकी महानता जानते हुए प्रार्थना करती हूँ।

माँ गंगा उनकी भक्ति से अति प्रसन्न हो एक दिन स्वयं उनके सामने प्रकट हुईं।

'हे मेरी पुण्यवती पुत्री, मैं तुझे आशीर्वाद देती हूँ कि तेरा पुनर्जन्म नहीं होगा। एक दिन भगवान विष्णु की सेवा में तेरा जीवन त्याग उन्हें अत्यंत प्रसन्न करेगा और तुझे मोक्ष प्राप्त होगा', माँ गंगा ने आशीर्वाद दिया।

सिंहालिका माँ गंगा के गूढ़ शब्दों को समझ नहीं सकी और उनके चरणों में लोट गईं।

'माँ, मैं अति अकेली हूँ। मुझे अपने भाइयों, हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु की अत्यंत याद आती है। कृपया मुझे आशीर्वाद दें कि वह शीघ्र ही लौट आएँ', सिंहालिका ने माँ गंगा से निवेदन किया।

'अवश्य, सिंहालिका। तुम्हारा भाई हिरण्यकश्यपु भगवान ब्रह्मा से अपना इच्छित वरदान प्राप्त करने के बाद शीघ्र ही लौट आएगा। हिरण्याक्ष ने दूसरा भाग्य चुना है। समय आने पर तुम्हें यह पता चल जाएगा। तुम्हारे भाई हिरण्यकश्यपु के लौटने और तुम्हारे उसे देखने से पहले तुम्हें एक और शुभ

समाचार मिलेगा। तुम शीघ्र ही अपने बचपन के प्रेमी विप्रचित्ति से मिलोगी और उससे तुम्हारा विवाह होगा। तुम्हारा वैवाहिक जीवन उसके साथ तब तक सुखद रहेगा जब तक कि तुम भगवान विष्णु की सेवा में अपना जीवन बलिदान नहीं कर देतीं। मैं तुम्हें अब और कुछ नहीं बता सकती। अब घर जाओ और विप्रचित्ति से मिलने की प्रतीक्षा करो। तुम्हारा उससे शीघ्र ही विवाह होगा,' माँ गंगा ने उत्तर दिया।

सिंहालिका को आशीर्वाद देने के बाद, माँ गंगा पवित्र जल में अदृश्य हो गईं।

'मेरे भाई हिरण्याक्ष ने दूसरी नियति चुनी है', सिंहालिका ने फुसफुसाया। वह इसे समझ नहीं सकी। यद्यपि माँ गंगा से यह जानकर कि उसका भाई हिरण्यकश्यपु शीघ्र ही लौट रहा है, वह अति प्रसन्न हो गई। उसे अपने दिल में यह अनुभव हुआ कि यदि भाई हिरण्याक्ष वापस नहीं आया और उसने कोई दूसरा रास्ता चुन लिया है तो इससे उसको कोई अंतर नहीं पड़ता। उसे अपने प्रिय भाई हिरण्यकश्यपु की अति याद आती थी। विप्रचित्ति से मिलने औरउससे विवाह करने के विचार ने उसे और भी प्रसन्न कर दिया। विप्रचित्ति के साथ उसकी अच्छी मित्रता थी जब वह अपने बड़े भाई पुलोमण और मौसी दानु के साथ उसके आश्रम में आया था। वह अक्सर उसे याद करती थी।

सिंहालिका मुसकुराते हुए अपने आश्रम लौटी और सीधे अपनी माँ दिति के कमरे में चली गई। सिंहालिका लंबे समय के बाद प्रसन्न थी, अतः उसके चेहरे पर सुखद मुस्कान देखकर माँ दिति ने उसे गले लगा लिया और सिंहालिका से इतनी प्रसन्नता का कारण पूछा।

'माँ, आज माँ गंगा स्वयं मेरे सामने प्रकट हुईं और मुझे आशीर्वाद दिया कि मेरा भाई हिरण्यकश्यपु भगवान ब्रह्मा से आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद शीघ्र ही लौट आएगा। माँ, यह शुभ समाचार सुनकर मैं अति प्रसन्न हूँ। गंगा माँ ने मुझे बताया कि मेरे भाई हिरण्याक्ष ने दूसरी नियति चुनी है और वह भाई हिरण्यकश्यपु के साथ वापस नहीं आएगा। माँ, मुझे यह बात समझ नहीं

आई। उन्होंने यह भी कहा कि अपनी बचपन के मित्र विप्रचित्ति से विवाह के लिए तैयार हो जाओ', सिंहालिका ने यह सब एक ही साँस में शीघ्रता से कह डाला।

'हाँ, मुझे पुलोमण का संदेश मिला है कि वह अपने छोटे भाई विप्रचित्ति के लिए तुम्हारा हाथ चाहता है। मैं सिद्धांत रूप में इस 'प्रस्ताव' से सहमत हूँ, और मैंने सहमति के लिए तुम्हारे पिता महर्षि कश्यप को उत्तर पश्चिम में संदेश भेजा है। जैसे ही मुझे उनकी सहमति मिल जाएगी, मैं पुलोमण को उत्तर दे दूँगी। क्या तुम इस गठबंधन से प्रसन्न हो?' माता दिति ने पूछा।

'हिरण्याक्ष ने दूसरी नियति चुनी है, मुझे भी यह समझ नहीं आ रहा है। मुझे विश्वास है कि भगवान उसके लिए वही करेंगे जो सबसे अच्छा होगा', दिति ने आगे कहा।

'माँ, आप और पिताजी जो मेरे लिए उचित समझते हैं, वही करें', सिंहालिका ने उत्तर दिया। अपने बचपन के प्रेमी विप्रचित्ति का नाम सुनकर उसके चेहरे पर शर्म की लालिमा साफ झलक रही थी। वह दिल से इस प्रस्ताव से अति प्रसन्न थीं।

यह सिंहालिका के लिए एक अद्भुत दिन था। उन्हें उस दिन दो शुभ समाचार मिले थे; उनके प्रिय भाई हिरण्यकश्यपु का शीघ्र ही लौटना और उनके बचपन के प्रेमी विप्रचित्ति से विवाह का प्रस्ताव। वह अपनी माँ दिति के कमरे से बाहर आईं और आश्रम के बगीचों में चली गईं जहाँ कोई उन्हें देख न सके। उन्होंने मन भरकर गाया और नाचा।

विप्रचित्ति के साथ विवाह

इसी प्रकार समय बीतता गया। दिति को महर्षि कश्यप से अपनी पुत्री सिंहालिका का विवाह विप्रचित्ति से करने की सहमति मिल गई। उन्होंने पुलोमण को संदेश भेज दिया कि वह सिंहालिका का विवाह विप्रचित्ति से करने के लिए तैयार हैं। उनके विवाह के लिए एक दिनांक तय कर दिया गया। दुर्भाग्यवश, विवाह होने से पहले एक घटना घटित हुई।

दानु के पुत्र पुलोमण और अदिति के पुत्र इंद्र के बीच शत्रुता दिन प्रति दिन बढ़ती चली जा रही थी। भगवान ब्रह्मा उन्हें यथासंभव पृथक रखकर दोनों की रक्षा करना चाहते थे। उन्होंने इंद्र को स्वर्ग का राज्य और पुलोमण को पाताल लोक का राज्य सौंपा जो ब्रह्मांड के दो कोनों में स्थित थे। लेकिन इतनी दूरी पर पृथक राज्य होने पर भी उनकी शत्रुता कम नहीं हो पाई।

पुलोमण की सुचि नाम की एक सुंदर पुत्री थी। उसकी सुंदरता और आकर्षण के कारण उस युग का हर सम्राट उसे चाहता था। इंद्रदेव सुचि के पिता पुलोमण से अपनी शत्रुता जानते हुए भी वह उससे विवाह करना चाहते थे। इंद्र ने अपने गुरु बृहस्पति के माध्यम से पुलोमण से इस गठबंधन को स्वीकार करने और इस पर सहमत होने का अनुरोध किया। परन्तु पुलोमण ने मना कर दिया। तब इंद्र ने सुचि के साथ पलायन की योजना बनाई और वह सफल रहा। जब पुलोमण को यह पता चला, तो वह अपनी सेना के साथ इंद्र से लड़ने, उसे हराने, मारने तथा अपनी पुत्री सुचि को वापस पाने के लिए स्वर्ग गया। उनके बीच एक भयंकर युद्ध हुआ। पुलोमण के लिए यह अति दुर्भाग्यपूर्ण था कि वह इंद्र से हार गया और मारा गया।

जब पुलोमण की मृत्यु का दुःखद समाचार पाताल लोक में पहुँचा, तो उसकी माँ दानु अति दुःखी हुईं और पाताल लोक में शोक घोषित कर दिया गया। यह दुःखद समाचार दिति को भी पहुँचाया गया और विप्रचित्ति का सिंहालिका के साथ विवाह तब तक के लिए स्थगित कर दिया गया जब तक शोक की अवधि समाप्त नहीं हो जाए। सिंहालिका और उसकी माँ दिति ने भी अपने प्रिय पुलोमण की मृत्यु पर शोक मनाया।

चूँकि सम्राट के बिना राज्य नहीं चल सकता, इसलिए दानु ने विप्रचित्ति को पाताल लोक का नया सम्राट घोषित कर दिया।

शोक की अवधि समाप्त होने के बाद पाताल लोक का राज्य धीरे धीरे सामान्य होने लगा। दानु ने अपनी बहन दिति को विप्रचित्ति और सिंहालिका के विवाह की एक नई दिनांक बताई। दिति ने विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। महर्षि कश्यप को सिंहालिका और विप्रचित्ति के विवाह का दिनांक सूचित कर दिया गया ताकि वह कन्यादान करने के लिए उपस्थित हो जाएं।

एक महान योद्धा के रूप में विप्रचित्ति की ख्याति ब्रह्मांड के हर कोने में फैल गई थी। पिछली बार जब सिंहालिका ने उसे देखा था, तब वह दोनों ही बाल्य अवस्था में थे। अब सब कहते हैं कि विप्रचित्ति में अद्वितीय शक्ति है। सिंहालिका के मन में प्रश्न उठा। क्या वह अब भी सिंहालिका से उतना ही प्रेम करता है जितना बचपन में?

विवाह से पहले विप्रचित्ति को पूरी तरह से समझने के लिए सिंहालिका उसके बारे में और जानना चाहती थीं। इस लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जाए, इन्हीं विचारों में वह डूबी रहतीं। इस मध्य उन्हें पता चला कि पाताल लोक का एक दूत उनकी माँ दिति से विवाह समारोह पर चर्चा करने के लिए आया है। उन्होंने इस दूत से मिलने का निर्णय लिया ताकि वह विप्रचित्ति के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर सकें। उन्होंने अपनी माँ दिति से इस दूत से मिलने की अनुमति देने का अनुरोध किया। माँ दिति ने सिंहालिका की बात मान ली और दूत का उनसे परिचय कराया।

दूत ने सिंहालिका का सम्मानपूर्वक अभिवादन किया। सिंहालिका ने उससे विश्वास पूर्वक विप्रचित्ति के निजी जीवन के बारे में बताने को कहा। उनकी पहले से कितनी रानियाँ हैं और वह किससे अधिक प्रेम करते हैं, आदि आदि?

'अति मान्या, सम्राट विप्रचित्ति ने केवल एक और राजकुमारी सम्राज्ञी सुहासिनी से विवाह किया है। यह गठबंधन माता दानु और स्वर्गीय सम्राट पुलोमण द्वारा पाताल लोक के राज्य और भूलोक (पृथ्वी) के बीच संबंधों को सुदृढ़ करने के लिए तय किया गया था। जहाँ तक मुझे पता है सम्राट विप्रचित्ति कभी भी राजकुमारी सुहासिनी से विवाह नहीं करना चाहते थे क्योंकि उन्होंने अपना हृदय परम पूज्य मान्या आपको

दे रखा था। लेकिन स्वर्गीय राजा पुलोमण ने उनको वचन दिया कि राजकुमारी सुहासिनी के साथ विवाह आपके दोनों के बीच पवित्र गठबंधन में बाधा नहीं बनेगा। चूँकि राजकुमारी सुहासिनी के साथ यह गठबंधन राजनैतिक कारणों से महत्वपूर्ण था, अतः राजकुमार विप्रचित्ति के पास इसे स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। चूँकि सम्राट विप्रचित्ति अति दयालु व्यक्ति हैं, वह महारानी सुहासिनी को पूरा सम्मान और आदर देते हैं लेकिन उनका दिल तो आपके साथ है। कृपया मेरे सम्राट विप्रचित्ति को आप अपना पति स्वीकार करें और पाताल लोक पर शासन करें,' संदेशवाहक ने विनम्रता से उत्तर दिया।

'वह कैसे दिखते हैं?' सिंहालिका ने संदेशवाहक से पूछा।

'अति पूज्य मान्या, पाताल लोक के लोग कहते हैं कि वह ब्रह्मांड के सबसे सुन्दर पुरुषों में से एक हैं,' संदेशवाहक ने उत्तर दिया।

सिंहालिका सन्देश वाहक के उत्तरों से कुछ अधिक प्रभावित नहीं थीं। माता दिति ने इसे भांप लिया। उन्होंने संदेशवाहक को विदा किया और सिंहालिका की ओर मुड़ीं।

'तुम्हें क्या हो गया है, पुत्री? सुंदरता के कोई मापदंड नहीं होते। मुझे लगा तुम अत्यंत बुद्धिमान हो और सब अपना भला बुरा समझ सकती हो,' माता दिति ने कहा।

'तुम कहना क्या चाहती हो माँ? क्या मुझे यह प्रश्न संदेह वाहक से नहीं पूछने चाहिए थे?' सिंहालिका ने माँ से पूछा।

'यह बात नहीं है, पुत्री। तुम्हारे चेहरे पर विप्रचित्ति को लेकर संदेह की रेखाएं उचित नहीं हैं। तुम अत्यंत सुंदर होने के साथ साथ अग्निदेव की शिष्या हो। इस ब्रह्मांड में कोई भी महिला तुम्हारी बुद्धि, ज्ञान और युद्ध सहित सभी मामलों में विशेषज्ञता की उपमा नहीं है। विप्रचित्ति तुम्हें दिल की गहराई से प्रेम करता है। जैसा कि तुमने सुना कि वह कभी भी इस राजकुमारी से विवाह नहीं करना चाहता था। तुम स्वयं सम्राज्ञी होने के पश्चात शीघ्र ही समझ जाओगी कि एक स्थिर राज्य के लिए राजनैतिक गठबंधन अति महत्वपूर्ण होते हैं। भले ही कोई सम्राट ऐसा न करना चाहे लेकिन उसे कभी कभी राज्य और अपनी प्रजा के भले के लिए ऐसे गठबंधन करने के लिए

विवश होना पड़ता है। इसलिए नकारात्मक विचारों को त्यागो और इस गठबंधन को दिल से स्वीकार करो। विप्रचित्ति अवश्य ही एक योग्य और प्रेम करने वाला पति होगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है,' माता दिति ने कहा।

माता दिति के शब्दों ने सिंहालिका के दिल को छू लिया और वह अब पाताल लोक की सम्राज्ञी बनने के लिए तैयार हो गई।

विवाह का दिनांक शीघ्रता से समीप आ रहा था। महर्षि कश्यप विवाह से कुछ दिन पहले सोरों आश्रम में आ गए जहाँ उनकी पत्नी दिति और बेटी सिंहालिका उनके कई शिष्यों के साथ रह रही थीं। सिंहालिका लंबे समय बाद अपने पिता को देखकर अति प्रसन्न हुईं। सिंहालिका ने अपने पिता के पैर छूए और महर्षि से आशीर्वाद प्राप्त किया।

'सिंहालिका, इस विवाह के माध्यम से तुम्हारे ऊपर एक बड़ा उत्तरदायित्व आने वाला है। इंद्र द्वारा पुलोमण की हत्या के बाद दानु और अदिति के पुत्रों के बीच वैमनस्य कई गुना बढ़ गया है। मैं जानता हूँ कि विप्रचित्ति का हृदय अपने प्रिय बड़े भाई पुलोमण की हत्या का इंद्र से बदला लेने की इच्छा से जल रहा है। यद्यपि विप्रचित्ति निःसंदेह एक महान योद्धा है, परन्तु वह इंद्र की शक्ति के समक्ष कुछ भी नहीं है। इसके अतिरिक्त इंद्र को अपने भाई वामन, जो स्वयं भगवान विष्णु के अवतार हैं, का समर्थन भी प्राप्त है। साथ ही, यह कभी मत भूलना कि तुम्हारे गुरु अग्निदेव भी इंद्र के भाई हैं और वह भी कभी उनके विपरीत नहीं जाएंगे। पुत्री, तुम्हें सदैव विप्रचित्ति को इंद्र के विरुद्ध युद्ध लड़ने से हतोत्साहित करते रहना है। तुम्हें उसे अदिति के पुत्रों से सुरक्षित रखना है। हम सभी इस पृथ्वी पर एक उद्देश्य के लिए पैदा हुए हैं। तुम भी भगवान की सेवा के उद्देश्य से पैदा हुई हो। जब समय आएगा तो तुम अपनी भूमिका निभाओगी, लेकिन तब तक भाइयों के बीच शांति और सद्भाव बनाए रखने का प्रयास करते रहना है। तुम एक विदुषी युवती हो जिसके पास किसी भी युवक को मंत्रमुग्ध करने का आकर्षण है और विप्रचित्ति भी इसका अपवाद नहीं है,' उनके पिता महर्षि कश्यप ने कहा। उन्होंने अपने दाहिने हाथ को उनके सिर पर रखकर उन्हें आशीर्वाद दिया।

'मैं यह बात पूरी तरह समझती हूँ, पिताजी। मैं इस दिशा में पूर्ण प्रयास करूँगी और आपकी आज्ञा का पालन करूँगी। कृपया सदैव हमें इसी प्रकार आशीर्वाद देते रहें।

मुझे आशा है कि आप अपने किसी भी पुत्र के पक्ष में नहीं रहेंगे,' सिंहालिका ने विनम्रता से कहा।

'सिंहालिका, यही तो कारण है कि मैं अपने किसी भी पुत्र की किसी भी गतिविधि में हस्तक्षेप नहीं करता। निश्चिंत रहो, मैं हमेशा तटस्थ रहूँगा,' महर्षि कश्यप ने वचन दिया।

जैसे जैसे विवाह का समय समीप आता गया, विवाह की भव्य तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं।

उचित समय पर वर पक्ष माता दानु और पाताल लोक के योद्धाओं के साथ महर्षि कश्यप के सोरों आश्रम पहुँचा। महर्षि कश्यप और उनके सभी शिष्यों ने वर पक्ष का स्वागत किया।

सिंहालिका ने एक अधिक समय के बाद विप्रचित्ति को देखा था। वह हाथी के समान शक्ति वाला एक अति ही सुंदर व्यक्ति था। उसके सुनहरे बाल थे जो पूरी तरह से संवारे हुए थे। उसकी आँखों में एक पहाड़ी झरने जैसी आश्चर्यजनक स्पष्टता थी और उसके चेहरे की बनावट एक दूसरे के बिल्कुल अनुपात में थी। वह एक अलग ही ढंग का लग रहा था क्योंकि उसका रूप अत्यंत सुन्दर था। उसमें ऊर्जा और उत्साह की किरणें बिखर रही थीं। उसकी पहाड़ी चोटी जैसी गालों की हड्डियाँ किसी निपुण कारीगर द्वारा तराशी गई प्रतीत हो रही थीं। वह इतनी तीखी बनावट वाला था कि ऐसा लग रहा था मानो उन्हें पूर्णता के साथ प्रभु ने तराशा हो। लोह सितारों की तरह चमकीली और मंत्रमुग्ध कर देने वाली आँखों से वह उपस्थित सभी को मंत्रमुग्ध कर रहा था। वह अति ही सौम्य स्वभाव का और एक भद्र पुरुष प्रतीत होता था।

विप्रचित्ति भी सिंहालिका की सुंदरता को देखकर दंग रह गया। वह कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि एक भोली भाली लड़की सिंहालिका जिससे वह कई वर्ष पहले मिला था, एक अत्यंत सुन्दर देवी रूप में बदल गई है। सिंहालिका के नेत्र काले और कमल की पंखुड़ियों समान थे। उनका रंग थोड़ा सांवला अवश्य था परन्तु उनके घुंघराले नीले बाल उनकी सुंदरता कई गुना बढ़ा रहे थे। उनके नख सुंदर वक्राकार और चमकीले तांबे की तरह दमक रहे थे। उनकी गोरी भौहें और छाती किसी अप्सरा

की सुंदरता से कम नहीं थी। उनके शरीर से नीलकमल जैसी सुगंध आ रही थी। उनकी सुंदरता की उपमा ब्रह्मांड में कोई नहीं थी।

सिंहालिका और विप्रचित्ति दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो गए। सिंहालिका ने विप्रचित्ति से विवाह करने के उचित निर्णय लेने के लिए ईश्वर का धन्यवाद किया।

सिंहालिका का विवाह विप्रचित्ति से उनकी माता, पिता महर्षि कश्यप सभी के आशीर्वाद से संपन्न हुआ। इस अवसर पर सिंहालिका को अपने भाइयों हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु की शुभकामनाओं की कमी खल रही थी।

विवाह संपन्न होने के पश्चात अपने पति और सास मौसी दानु के साथ पाताल लोक के लिए प्रस्थान करने से पहले वह माँ गंगा के तट पर गई। उनकी कृपा की कामना करते हुए उनकी आँखों से आँसू बह निकले।

'हे माँ, मुझे अपने भाइयों की अति याद आती है। कृपया उन्हें जहाँ भी हों, सुरक्षित रखें। हे माँ गंगा, कृपया मेरे भाइयों तक मेरा संदेश पहुँचा दें कि वह मेरे अति दिव्य प्रिय मित्र और सबसे भरोसेमंद वरिष्ठ हैं। मुझे उनकी मुस्कान, चेहरा और परामर्श की सदैव आवश्यकता रहेगी। मेरे प्रति किए उनके हर उपकार के लिए मैं उनका धन्यवाद देती हूँ। मैं उनके प्रेम की सदैव सराहना करती हूँ। कृपया उनसे कहिए कि वह अब शीघ्र ही वापस आ जाएँ और मुझे देखने तथा आशीर्वाद देने के लिए पाताल लोक पधारें,' सिंहालिका ने आँखों में आँसू लिए माँ गंगा से निवेदन किया।

अगले दिन वह अपने पति और पूरी बारात के साथ पाताल लोक चली गईं।

पाताल लोक के महल में पहुँचने पर उन्होंने विप्रचित्ति से अनुरोध किया कि वह उनकी पहली पत्नी सुहासिनी से उनके महल में मिलने जाना चाहती हैं। यह विप्रचित्ति के लिए आश्चर्य की बात थी। वह उनकी विनती को ठुकरा नहीं सका। विप्रचित्ति सुहासिनी के महल तक उसके साथ जाना चाहता था, लेकिन सिंहालिका ने उनसे अकेले जाने की अनुमति देने का अनुरोध किया।

सिंहालिका अपने दिल में जानती थीं कि सुहासिनी के लिए अपने पति की सह-पत्नी को स्वीकार करना अति दर्दनाक होगा, विशेषकर जब यह सह-पत्नी उनकी अपनी मौसी की पुत्री हो और सास दानु की अति प्रिय हो। उस क्षण उन्हें वास्तव में सुहासिनी के प्रति दया की भावना उत्पन्न हुई क्योंकि उन्हें अनुभव हुआ कि वह दोनों एक ही पुरुष विप्रचित्ति से प्रेम करती थीं। शांति और सौहार्द के लिए सिंहालिका ने सुहासिनी को मनाने और उन्हें यह आश्वासन देने का प्रयास करना आवश्यक समझा कि वह केवल विप्रचित्ति का अकेले प्रेम पाने के लिए नहीं, बल्कि दोनों के बीच उनका प्रेम बांटने के लिए आई हैं।

विप्रचित्ति की आज्ञा लेकर उन्होंने सम्राज्ञी सुहासिनी के महल में प्रवेश किया। वह धीरे से महल के उस कमरे में चली गईं जहाँ सम्राज्ञी सुहासिनी अभी भी सो रहीं थीं। यद्यपि सुहासिनी को पहले ही पता चल चुका था कि विप्रचित्ति अपनी नई पत्नी सिंहालिका के साथ अपने महल में प्रवेश कर चुके हैं, लेकिन वह इतनी उदास थीं कि अपने बिस्तर से उठना ही नहीं चाहती थीं। सिंहालिका करबद्ध उनके सामने खड़ी हो गईं। सुहासिनी का चेहरा आँसुओं से भीगा हुआ था। वह सिंहालिका को पहचान नहीं सकीं। सिंहालिका ने धीरे से कहा, 'हे पाताल लोक की रानी, कृपया मेरा विनम्र अभिनंदन स्वीकार करें।'

सुहासिनी ने अपने आँसू पोंछे और पूछा, 'तुम कौन हो, सुंदर युवती? यद्यपि तुम एक ऋषि कन्या समान दिखती हो, लेकिन तुममें राजसी आभा है। तुम कहाँ से आई हो?'

सिंहालिका ने विनम्रता से कहा, 'हे रानी, मैं मातृभूमि गंगा की धरती सोरों से आई हूँ। मैं महर्षि कश्यप और उनकी पत्नी दिति की पुत्री हूँ। मेरा नाम सिंहालिका है। मेरा विवाह विप्रचित्ति से हो गया है। मैं यहाँ अपनी बड़ी बहन सुहासिनी और पाताल लोक की रानी का अभिवादन करने और उनसे पाताल लोक के महल में प्रवेश करने की अनुमति लेने आई हूँ। कृपया मुझे अपनी छोटी बहन के रूप में आशीर्वाद दें।'

सिंहालिका के स्नेहपूर्ण और दयालु शब्दों ने सुहासिनी के दिल को छू लिया। वह तुरंत अपने बिस्तर से उठी, अपने आँसू पोंछे और उन्हें गले से लगा लिया। सिंहालिका ने सुहासिनी के पैर छूए।

सुहासिनी ने अपने सपनों में भी कभी यह कल्पना नहीं की थी कि सिंहालिका इतनी विनम्रता से उनके महल में आकर उनका अभिवादन करेंगी और पाताल लोक के महल में प्रवेश करने की अनुमति मांगेंगी। वह अति भावुक हो गईं। तत्पश्चात उन्होंने अपने और अपने जीवन के बारे में घंटों बातें कीं। अब सुहासिनी को विश्वास हो गया था कि सिंहालिका पाताल लोक में उनकी छोटी बहन के रूप में आईं थीं, न कि अपने पति की एक अहंकारी सह-पत्नी के रूप में।

सुहासिनी ने कहा, 'हे मेरी छोटी बहन सिंहालिका, मुझे तुम्हारी संगत अति अच्छी लगी और तुमने मेरा दुःख दूर कर दिया। मुझे तुम्हारी जैसी छोटी बहन चाहिए थी। चलो सास दानु के महल में चलते हैं जहाँ मैं स्वयं तुम्हारा स्वागत करूँगी।'

तब सुहासिनी और सिंहालिका दोनों रानी माता दानु के महल के लिए चल दीं। वहां सिंहालिका का दानव वंश के एक सदस्य के रूप में आधिकारिक स्वागत किया गया।

इसी प्रकार समय बीतता गया। सुहासिनी और सिंहालिका अति अच्छी सहेलियाँ बन गईं थीं और उन्होंने अपने पति का प्रेम साझा किया। दोनों ने मिलकर प्रजा के कल्याण के लिए राज्य के प्रशासनिक मामलों में विप्रचित्ति का मार्गदर्शन किया। उस समय पाताल लोक का राज्य अति शांतिपूर्ण था। न तो उन्होंने किसी अन्य राज्य पर आक्रमण किया था और न ही किसी अन्य राज्य ने उन पर आक्रमण किया। जीवन शांति और आनंद से चल रहा था।

फिर अचानक एक दिन सुहासिनी गंभीर रूप से बीमार पड़ गईं। राजवैद्य (शाही चिकित्सक) उनकी बीमारी का पता नहीं लगा सके। वह दिन प्रति दिन दुर्बल होती चली जा रही थीं और दुर्भाग्य से एक दिन उन्होंने अपने पति विप्रचित्ति की बांहों में जीवन की लड़ाई हार दी।

अपनी प्रिय रानी सुहासिनी को खोने पर राज्य में हर कोई अति दुःखी था। सिंहालिका ने साहस जुटाया और इस कठिन समय में अपने पति को सांत्वना दी। अब रानी के रूप में अपने पति और प्रजा के प्रति उनका उत्तरदायित्व और भी बढ़ गया था।

एक दिन जब वह अपने पति के साथ राजदरबार में थीं, तो एक दूत यह समाचार लेकर आया कि उनके भाई हिरण्यकश्यपु भगवान ब्रह्मा से मन चाहा वरदान प्राप्त कर वापस लौट आए हैं और शीघ्र ही पाताल लोक में उनसे मिलने आएंगे। यह समाचार सुनकर सिंहालिका अति उत्साहित हुईं और अपने प्रिय भाई हिरण्यकश्यपु के आने की प्रतीक्षा करने लगीं। वह भाई हिरण्याक्ष के बारे में भी जानना चाहती थीं, लेकिन दूत ने कुछ नहीं बताया।

हिरण्यकश्यपु की वापसी

सिंहालिका ने सुना कि ब्रह्मा जी ने उनके भाइयों हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु के तप से प्रसन्न हो कर उनको उन्होंने पृथ्वी का राज्य दे दिया। बड़े भाई होने हेतु हिरण्याक्ष पृथ्वी के सम्राट के रूप में राज्याभिषित हुए। अदिति के पुत्र (देवता) हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु को ब्रह्मा जी द्वारा दिए वरदान से प्रसन्न नहीं थे। देवता पृथ्वी को भी अपने राज्य का भाग बनाना चाहते थे। इस डर से कि इंद्र शीघ्र ही पृथ्वी का राज्य उनसे जीतने हेतु उन पर युद्ध की घोषणा कर देंगे, हिरण्याक्ष ने पाताल लोक के दानव वंश के अपने मौसेरे भाइयों की मदद लेने का निर्णय किया।

अदिति के पुत्रों (देवताओं) ने हिरण्याक्ष को चुनौती दी। हिरण्याक्ष एवं पाताल लोक की सेना देवताओं के समक्ष शीघ्र ही हार गई। लेकिन दुर्भाग्य से हिरण्याक्ष धरती माँ को लेकर महासागर में छुप गया। धरती माँ हिरण्याक्ष के इस कृत्य से अत्यंत दुःखी थीं। तब धरती माता ने ब्रह्मा से अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मा ने अदिति के पुत्रों (देवताओं) और कुछ ऋषियों के साथ मिलकर संसार के रक्षक भगवान विष्णु से उनकी रक्षा करने और पृथ्वी को मुक्त करने की प्रार्थना की।

भगवान विष्णु ब्रह्मा एवं देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न हुए। वह ब्रह्मा के नासिका छिद्रों से एक अति सूक्ष्म प्राणी के रूप में प्रकट हुए। यह नन्हा जीव देखने में एक जूँ जैसा लग रहा था। वह अति शीघ्रता से आकाश में उड़ गया और आकार में बढ़ते हुए धीरे धीरे ब्रह्मा की परिक्रमा करने लगा। अब वह एक जूँ नहीं था बल्कि उसने एक सूअर (वराह) का रूप धारण कर लिया था। वह सूअर आकार में तब तक बढ़ता गया जब तक कि वह एक विशालकाय जंतु नहीं हो गया, यहाँ तक कि एक पूर्ण वयस्क हाथी से भी बड़ा हो गया। इस ज्ञान से कि भगवान विष्णु माँ पृथ्वी को बचाने के लिए इस रूप में प्रकट हुए थे, ब्रह्मा ने उस सूअर की पूजा की। उन्होंने सूअर (वराह) के रूप में भगवान विष्णु के सामने अपना सिर झुकाया। वराह ने गर्जना की और उन्हें आशीर्वाद दिया। उनका स्वर उनके कष्टमय मन के लिए मरहम के समान था।

वराह आकाश में कूद पड़े। उन्होंने अपनी पूंछ से सभी बादलों को हटाकर आकाश को स्वच्छ कर दिया। अब सूर्य की किरणें बड़ी चमक और गर्मी के साथ स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थीं।

वह सूकर उस महासागर के तल में पहुँच गया, जहां पृथ्वी माता को लेकर हिरण्याक्ष छुपा हुआ था।

हिरण्याक्ष ऐसे शक्तिशाली प्राणी को देखकर डर गया। वह मदद के लिए सागर की ओर मुड़ा। सागर जानते थे कि यह सूअर स्वयं भगवान विष्णु हैं, अतः उन्होंने उत्तर दिया, 'हे हिरण्याक्ष, मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ और युद्ध के लिए बिल्कुल अयोग्य हूँ। तुम तो स्वयं भगवान ब्रह्मा द्वारा वरदान प्राप्त किए एक महान योद्धा हो। मुझे विश्वास है कि तुम इस प्राणी को परास्त कर दोगे। जाओ और इस वराह प्राणी को द्वंद्व युद्ध के लिए चुनौती दो।

इस प्रकार सागर द्वारा हिरण्याक्ष के अहंकार को भड़काया गया। हिरण्याक्ष गर्जा, हँसा और सागर से बोला, 'हे सागर, चिंता मत करो। मैं शीघ्र ही इस वराह को द्वंद्व युद्ध में मार डालूँगा। यह तो बस एक सूअर है। यह प्राणी मेरी शक्ति का सामना करने के समर्थ नहीं है।'

समुद्र ने हिरण्याक्ष को चेतावनी दी और कहा, 'हे हिरण्याक्ष, यह कोई साधारण सूअर नहीं है। भगवान विष्णु स्वयं इस रूप में अवतार लिए हैं। सावधान रहो। उन्होंने यह अवतार माता पृथ्वी को बचाने के लिए लिया है। उन्हें कम मत समझना और उनसे पूर्ण शक्ति से लड़ना।'

भगवान वराह ने शीघ्र ही माता पृथ्वी को ढूंढ लिया जो धैर्यपूर्वक बचाए जाने की प्रतीक्षा कर रही थीं। भगवान वराह ने माता पृथ्वी को अपने विशाल और भव्य दांतों के बीच पकड़ लिया और उन्हें समुद्र के ऊपर उठा लिया। ब्रह्मदेव ने तब धरती का विवाह भगवान् विष्णु से कर दिया।

हिरण्याक्ष ने यह देखा और क्रोध से चीख उठा। उसने वराह पर अपशब्दों की बौछार कर दी और उनसे द्वंद्व युद्ध की चुनौती दी। वराह ने हिरण्याक्ष के गर्जन पर कोई ध्यान नहीं दिया और वह पृथ्वी माता को ब्रह्मांड में उनके निर्धारित स्थान पर वापस ले जाने लगे।

अपमान से आहत हिरण्याक्ष उन्हें मारने के लिए दौड़ पड़ा। उसे अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी जब वराह उसके सामने आए और उन्होंने द्वंद्व युद्ध की उसकी चुनौती स्वीकार कर ली।

अब वराह ने मानव रूप धारण कर लिया था जिनके चार हाथों में उनका घातक कौमोदकी गदा था। उनके कंठ में पुष्पों का हार था।

उन्होंने तुरंत घोषणा की, 'हे हिरण्याक्ष, मैंने पृथ्वी से विवाह कर लिया है। वह अब मेरी पत्नी है और एक पति के रूप में उसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। तुम्हें इस परंपरा और पति-पत्नी के प्रेम का सम्मान करना चाहिए और यहाँ से चले जाना चाहिए। मेरा तुमसे कोई व्यक्तिगत वैर नहीं है। मैं तुम्हें जीवन दान दे दूंगा। एक बात और सुनो। चूंकि मैं अब पृथ्वी का पति हूँ, मैं पृथ्वी का शासक हूँ। तुम अब पृथ्वी के शासक नहीं हो।'

हिरण्याक्ष यह अपमान सहन नहीं कर सका। राक्षसी गर्जना करते हुए वह अपनी पूरी शक्ति से भगवान् पर टूट पड़ा और पृथ्वी के पति (भू-पति) पर अपनी भारी गदा बेरहमी से चलाने लगा। भगवान् ने उसके हमले से बचते हुए एक ऐसा प्रहार किया कि हिरण्याक्ष के पैर समुद्र से ऊपर उठ गए। दोनों ने फिर आकाश में, धरती पर और अंत में समुद्र में लड़ाई लड़ी। यह लड़ाई लंबे समय तक चलती रही। एक समय ऐसा लगने लगा कि हिरण्याक्ष भारी पड़ रहा है और भगवान् हार की कगार पर हैं। तब भगवान् ने हिरण्याक्ष के अस्त्रों को नष्ट कर दिया। भगवान् ने शीघ्र ही हिरण्याक्ष को वश में कर लिया और उसके मुख पर एक घातक प्रहार किया। इस प्रहार को न सह सकने के कारण हिरण्याक्ष का विशाल शरीर समुद्र के तल में डूब गया। तब भगवान् ने विजय की गर्जन की। उन्होंने पृथ्वी को सुरक्षित रूप से उनके निर्धारित स्थल पर वापस पहुँचाया और अपने साकेत धाम लौट गए।

अपने बड़े भाई हिरण्याक्ष की मृत्यु का समाचार सुनकर हिरण्यकश्यपु अति दुःखी हुआ और अपने जीवन के लिए भी चिंतित हो गया। उसके हृदय में भाई हिरण्याक्ष को मारने के लिए भगवान विष्णु से वैर भाव विकसित हो गया और उसने उन्हें मारने का संकल्प ले लिया। एक बुद्धिमान और विद्वान व्यक्ति होने के कारण उसने सोचा कि भगवान विष्णु ने उसके शक्तिशाली भाई हिरण्याक्ष को मार डाला। उसकी

शक्तियाँ तो उसके बड़े भाई की उपमा में अति कम हैं। उसके पास वर्तमान में जो शक्तियाँ हैं जिनमें भगवान ब्रह्मा द्वारा दी गई शक्तियाँ भी सम्मिलित हैं, उनसे वह भगवान विष्णु को चुनौती नहीं दे सकता। उसने मन में ठान लिया कि उचित समय आने पर वह भगवान विष्णु को मारने के लिए ब्रह्मा से और अधिक शक्तियाँ मांगेगा। लेकिन यह धैर्य रखने का समय है और वह भगवान विष्णु को चुनौती देने और उन पर हमला करने के लिए उचित समय की प्रतीक्षा करेगा।

अपने प्राणों के भय से हिरण्यकश्यपु ने ब्रह्मा जी के पास जाकर उनकी शरण ली। ब्रह्मा जी ने उसे निडरता का आश्वासन दिया और विष्णु जी की अनुमति से उसे पृथ्वी के एक छोटे से भाग का राजा बना दिया। उसने भारत के वर्तमान राजस्थान राज्य में 'हिरण्यकश्यपु की खेड़' (हिंडौन) नामक एक नया नगर बसाया और इस नगर को अपनी राजधानी बनाया। हिरण्यकश्यपु ने दानव कुल के सेनापति जांभ की पुत्री कयाधु से विवाह कर लिया।

ब्रह्मा जी की कृपा से अपने नव-स्थापित राज्य में अच्छी तरह से बस जाने के बाद हिरण्यकश्यपु ने अपनी प्रिय बहन सिंहालिका और पाताल लोक के शासक विप्रचित्ति से मिलने का निर्णय लिया और पाताल लोक को कूच किया।

जब सिंहालिका को समाचार मिला कि उसका भाई हिरण्यकश्यपु उससे मिलने आ रहा है तो वह अपने भाई हिरण्यकश्यपु और भाभी कयाधु से शीघ्र मिलने की आशा में अति प्रसन्न और उत्साहित हुई। निःसंदेह अपने बड़े भाई हिरण्याक्ष की मृत्यु का समाचार सुनकर उनके हृदय में कुछ दुःख हुआ लेकिन चूंकि वह उससे कभी विशेष समीप नहीं थी, इसलिए वह आँसू बहाने तक नहीं पहुंचीं।

हिरण्यकश्यपु अपनी पत्नी कयाधु और अपने अनुचरों के साथ पाताल लोक की राजधानी में पहुँचे। सिंहालिका और विप्रचित्ति, दोनों ने द्वार पर आकर उनके पैर छूकर उनका स्वागत किया और अति सम्मानपूर्वक उन्हें रानी माता दानु के महल में ले गए। मौसी दानु के पैर छूकर और उनसे आशीर्वाद लेकर हिरण्यकश्यपु और उनकी पत्नी कयाधु सिंहालिका के निजी महल में लौट आए, जहाँ उनका ठहराव था।

भाई-बहन का मिलन अत्यंत प्रेम और स्नेह से हुआ। सिंहालिका की आँखों में आँसू थे। उन्होंने एक दूसरे को लम्बे समय तक गले से लगाया और अपने पुराने दिनों की यादों को नूतन किया। कयाधु भी दानव कुल से ही थीं अतः विप्रचित्ति की वह सम्बन्धी थीं। जब एक ओर हिरण्यकश्यपु और सिंहालिका भावुक भाई-बहन के मिलन में व्यस्त थे, तो दूसरी ओर विप्रचित्ति और कयाधु अपने बीते समय की बातों को स्मरण कर रहे थे।

सिंहालिका और विप्रचित्ति के विवाह को कई वर्ष हो चुके थे लेकिन दुर्भाग्यवश सिंहालिका अभी तक किसी संतान की माँ नहीं बन सकीं थी। हिरण्यकश्यपु यह जानने के लिए अति उत्सुक था कि पाताल लोक के सम्राट विप्रचित्ति और सिंहालिका को संतान क्यों नहीं हुई है? तब विप्रचित्ति ने स्वयं उसे अपने बचपन की एक अति ही दुर्भाग्यपूर्ण कहानी बताई कि कैसे मौसी तमारा ने उसे श्राप दिया है कि वह कभी पिता नहीं बन सकता।

विप्रचित्ति कहने लगा, 'जब मैं छोटा बालक था तब मुझे पक्षियों के अंडे एकत्रित करने में अति रुचि थी। मैं विभिन्न पक्षियों के अंडों की तलाश में वन में दूर दूर तक जाता था और उनके घोंसलों से अंडे चुरा लेता था। पक्षी मेरे इस व्यवहार से अति निराश थे क्योंकि मैंने उनके माता-पिता होने के अधिकार छीन लिए थे। वह हमारी मौसी तमारा (गरुड़ की माँ) के पास गए। यह सुनकर, मौसी तमारा मुझ पर क्रोधित हो गईं और श्राप दिया कि चूंकि मुझे माता-पिता की पीड़ा का सम्मान नहीं है, मैं पक्षियों के अंडों को उनके माता-पिता से छीनकर माता-पिता और बच्चों के बीच के बंधन को नहीं समझता हूँ, मैंने उन्हें अति दुःख और पीड़ा पहुँचाई है, अतः मैं कभी पिता नहीं बनूँगा।‘

"विप्रिचित्ति, यह सुनकर मुझे अति दुःख हुआ, लेकिन चिंता मत करो। मैं वचन देता हूँ कि मैं अपने एक पुत्र को तुम्हें और सिंहालिका को दत्तक बनाने के लिए दूँगा,' हिरण्यकश्यपु ने सांत्वना भरे स्वर में विप्रचित्ति से कहा। विप्रचित्ति अति उत्साहित हो गया और उसने हिरण्यकश्यपु को गले लगा लिया।

'भाई हिरण्यकश्यपु, मैं इस ऋण को कभी नहीं चुका सकता, लेकिन मैं वचन देता हूँ कि मैं सदैव तुम्हारा निष्ठावान रहूँगा। मैं अपना जीवन तुम्हारी आज्ञाओं पर न्योछावर कर दूँगा,' विप्रचित्ति ने वचन दिया।

'हाँ, भाई विप्रचित्ति, एक दिन मैं बड़े भाई हिरण्याक्ष की मृत्यु का बदला लेने के लिए विष्णु को मारने में तुम्हारी मदद लूंगा। मैं अभी ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए तपस्या करने जा रहा हूँ ताकि उनसे अमरत्व का वरदान प्राप्त कर सकूँ। एक बार जब मुझे वह वरदान मिल जाएगा तो मैं विष्णु को चुनौती दूँगा और उन्हें मार डालूँगा। जब मैं इसके लिए तैयार हो जाऊँगा तो मैं तुम्हें संदेश भेजूँगा और हम मिलकर विष्णु को मारेंगे और फिर अदिति के सभी पुत्रों को। हम स्वर्ग का राज्य जीत लेंगे और मिलकर पूरे ब्रह्मांड पर सदैव शासन करेंगे,' हिरण्यकश्यपु ने विप्रचित्ति से अति स्नेहपूर्ण, लेकिन अधिकारपूर्ण स्वर में कहा।

'बिल्कुल भाई, कभी भी,' विप्रचित्ति ने हिरण्यकश्यपु को आश्वासन दिया।

पाताल लोक में कुछ दिनों तक रहने के बाद हिरण्यकश्यपु ने अपनी मौसी दानु, सिंहालिका और विप्रचित्ति से विदा ली और अपने राज्य लौट आया। भारी मन से हिरण्यकश्यपु, उसकी पत्नी कयाधु और अनुचर दल पाताल लोक से प्रस्थान कर गए।

धीरे धीरे समय बीतता चला गया। हिरण्यकश्यपु की पत्नी रानी कयाधु अपने प्रथम संतान के साथ गर्भवती हो गईं। भगवान विष्णु के प्रति प्रतिशोध की आग हिरण्यकश्यपु के हृदय में लगातार जल रही थी। अब वह और सहन नहीं कर सकता था और उसने भगवान विष्णु पर हमला करने और उन्हें मारने हेतु ब्रह्मा से अमरत्व का वरदान पाने के लिए तपस्या करने का निर्णय लिया। उसने अपनी गर्भवती पत्नी कयाधु को अपने सेनापतियों की देखभाल में छोड़ दिया।

अदिति के पुत्र देवराज इंद्र ने अपने सबसे बड़े शत्रु का सदैव के लिए नाश करना का यह एक सुअवसर सोचा। उसने हिरण्यकश्यपु की राजधानी को घेर लिया और विजय प्राप्त कर उसकी पत्नी कयाधु का अपहरण कर लिया।

देवराज ने बलात सम्राज्ञी कयाधु को अपने रथ पर बिठा लिया और इंद्रलोक (स्वर्ग) की ओर चल पड़ा। अत्यंत करुण स्वर में देवराज इंद्र को फटकारते हुए पवित्र स्त्री कयाधु बोलीं, 'हे देवराज इंद्र, मेरा अपहरण कर तुम्हारा क्या उद्देश्य सिद्ध होगा? हे सुरेंद्र, क्या तुम यह पाप नहीं देख रहे हो जो तुम मेरे जैसी एक असहाय महिला का अपहरण करके कर रहे हो?'

संयोग से, उसी समय ब्रह्मर्षि नारद उसी मार्ग से जा रहे थे। उन्होंने रानी कयाधु के यह दयनीय शब्द सुने और देवराज इंद्र के सामने प्रकट हुए। उन्होंने रथ को रोक दिया।

ब्रह्मर्षि ने देवराज इंद्र से कहा, 'हे महेंद्र, आप स्वर्ग के राजा, महर्षि कश्यप और अदिति के पुत्र और महान देवताओं के बड़े भाई हैं। एक असहाय महिला का अपहरण करना आपकी गरिमा के अनुरूप नहीं है। इस शालीन महिला को तुरंत मुक्त करें।'

देवराज इंद्र ने उत्तर दिया, 'ब्रह्मर्षि, यह स्त्री राक्षस के बीज को पाल रही है। मैं इस बीज को अंकुरित होने से पहले ही नष्ट कर दूँगा और तब इस पवित्र स्त्री को मुक्त कर दूँगा। मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि उसे कोई पीड़ा नहीं होगी।'

ब्रह्मर्षि नारद ने कहा, 'हे देवराज इंद्र, क्या आपको पता नहीं कि इस अजन्मे शिशु को मारना आपके वश में नहीं है। आप और आपके भाइयों को इस अजन्मे बच्चे से डरना नहीं चाहिए। वह तो आपकी भलाई का कारण बनने वाला है। रानी कयाधु के गर्भ में भगवान विष्णु का एक परम भक्त पल रहा है।'

यह जानकर कि रानी कयाधु के गर्भ में भगवान विष्णु का एक परम भक्त पल रहा है, देवराज इंद्र ने सम्मानपूर्वक कयाधु की परिक्रमा की, उन्हें प्रणाम किया और क्षमा याचना की। उन्होंने सम्मानपूर्वक उन्हें रथ से उतारा और ब्रह्मर्षि नारद को सौंप दिया। तब इंद्र इंद्रलोक लौट गए।

ब्रह्मर्षि नारद ने रानी कयाधु से कहा, 'हे पुत्री, तुम्हारा राज्य अब खंडहर बन चुका है। मैं तुम्हें अपने शिष्य महर्षि आनंद के आश्रम में ले जाऊँगा जहाँ तुम तब तक सुरक्षित रहोगी जब तक तुम्हारे पति हिरण्यकश्यपु अपनी तपस्या से वापस नहीं आ जाते।'

इस प्रकार, रानी कयाधु महर्षि आनंद के आश्रम में रहने आ गईं।

महर्षि आनंद के आश्रम में उन्होंने महर्षि और आश्रमवासियों की बड़ी श्रद्धा से सेवा की। वह आश्रम की सफाई करतीं, गोबर से लीपतीं और निवासियों के लिए नदी से पानी लातीं। उन्होंने आश्रम में अन्य ऋषियों और ऋषि-पत्नियों का अनुसरण करते हुए भगवान विष्णु की पूजा भी प्रारम्भ कर दी। उन्होंने एक प्रकार से संन्यासी जीवन अपनाया, छाल के वस्त्र पहने, कुशा बिस्तर पर सोई, कठिन उपवास रखे और अपनी भूख मिटाने के लिए जड़ें और कंदमूल खाए। इस प्रकार, वह पूरी तरह से प्रभु की एक महान भक्त बन गईं। देवर्षि नारद भी समय समय पर आश्रम में उनसे मिलने आते थे।

उनके गर्भस्थ शिशु को संबोधित करते हुए महर्षि आनंद ने उन्हें योग, भक्ति और मंत्रों के गूढ़ ज्ञान का उपदेश दिया। उन्होंने दुनिया को निरर्थक घोषित करते हुए उन्हें वैराग्य (संयम) का उपदेश दिया।

यह दिव्य ज्ञान अजन्मे बच्चे के मस्तिष्क में प्रवेश कर गया। समय आने पर रानी कयाधु ने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया। ब्रह्मऋषि नारद इस सुंदर बच्चे के जन्म का समाचार सुन अपने शिष्य महर्षि आनंद के आश्रम में आए और उसका नाम प्रह्लाद (एक अत्यंत आनंदित व्यक्ति) रखा।

धर्मग्रंथों में वर्णित है कि हिरण्यकश्यपु ने अपने तप से ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया था। ब्रह्मा हिरण्यकश्यपु के सामने प्रकट हुए और उन्हें अपनी रुचि का वरदान देने को कहा। हिरण्यकश्यपु ने तब अमरत्व की मांग की। ब्रह्मा ने उन्हें यह वरदान देने से मना कर दिया क्योंकि यह उनकी शक्ति से परे था। हिरण्यकश्यपु ने ब्रह्मा से तब एक अनोखा वरदान देने का अनुरोध किया।

हिरण्यकश्यपु ने कहा, 'हे मेरे प्रभु, हे वरदान देने वालों में श्रेष्ठ, कृपा करके मुझे वरदान दें कि मैं किसी भी आवास के अंदर या बाहर, दिन के समय या रात में, न तो जमीन पर और न ही आकाश में मरूँ। मेरी मृत्यु किसी भी हथियार से न हो, न ही किसी देवता, दानव या पशु द्वारा। मैं किसी भी अर्ध-देव या राक्षस या सर्प द्वारा मारा

न जाऊँ। चूंकि युद्ध के मैदान में कोई भी मुझे मार नहीं सके, अतः मेरा कोई प्रतिद्वंद्वी न हो। सभी अधिष्ठात्री देवताओं पर मेरा एकमात्र स्वामित्व हो। मुझे इस स्वामित्व पद से प्राप्त सभी कीर्ति प्रदान हों। इसके अतिरिक्त मुझे दीर्घकालिक तपस्या और योग अभ्यास से प्राप्त सभी दिव्य शक्तियाँ प्रदान हों और वह कभी भी नष्ट न हों।'
ब्रह्मा ने उन्हें यह वरदान देकर आशीर्वाद दिया।

अमरत्व के समान इन वरदानों को प्राप्त करने के बाद हिरण्यकश्यपु अपने राज्य में लौट आया। उसने पाया कि उसका राज्य पूरी तरह से नष्ट हो गया था। यह सुनकर कि देवराज इंद्र ने उसकी अनुपस्थिति में उसके राज्य पर हमला किया, उसे नष्ट कर दिया और उसकी प्रिय पत्नी रानी कयाधु का अपहरण कर लिया, वह अति क्रोधित हुआ और तुरंत देवराज इंद्र पर हमला कर दिया। अपने जीवन को बचाने हेतु देवराज इंद्र और उसके सभी भाई स्वर्ग से भाग गए और एक सुरक्षित स्थान पर छिप गए। हिरण्यकश्यपु ने स्वर्ग के राज्य को तब अपने राज्य में विलय करने की घोषणा की, और वह दोनों लोकों का सम्राट बन गया।

स्वर्ग के राज्य पर अधिकार करने के बाद हिरण्यकश्यपु ने अपना रथ महर्षि आनंद के आश्रम की ओर बढ़ाया। उस समय महर्षि आनंद महर्षि अत्रि द्वारा आयोजित यज्ञ की अध्यक्षता करने गए हुए थे। उसने आश्रमवासियों को चुनौती दी, उन्हें मार डालने और आश्रम को जला देने की धमकी दी। गुरु माता ने उसकी चुनौती का सामना किया। दुर्भाग्यवश, उसने गुरु माता और आश्रम के कई निवासियों को मार डाला। अपनी ही पत्नी कयाधु की आश्रम में किसी को हानि न पहुँचाने की विनती के विपरीत उसने आश्रम को पूरी तरह जलाकर नष्ट कर दिया। फिर वह अपनी पत्नी कयाधु और पुत्र प्रह्लाद को लेकर अपने महल में आया।

समय बीतने के साथ हिरण्यकश्यपु और कयाधु को पाँच और संतानों का आशीर्वाद मिला। उनके चार पुत्र, सह्लाद , अह्लाद, शिवि, वाष्कल और एक पुत्री सिंहिका हुईं। निःसंदेह उसने विप्रचित्ति और सिंहालिका को दिया अपना वचन निभाया और अपने एक पुत्र अह्लाद को उन्हें दत्तक पुत्र के रूप में दे दिया। सिंहालिका के लिए तो मानो उसे संसार ही मिल गया हो। अब उसका सारा समय अह्लाद के लालन पालन में बीतने लगा।

अह्लाद को दत्तक पुत्र बनाने के बाद सिंहालिका और विप्रचित्ति मौसी तमारा से मिलने गए। विप्रचित्ति ने अपने दत्तक पुत्र अह्लाद को उनके चरणों में रख दिया और अपने बचपन के कृत्य के लिए क्षमा माँगी। मौसी तमारा का हृदय पिघल गया। उन्होंने विप्रचित्ति को क्षमा कर दिया और अपने श्राप से मुक्ति दे दी। मौसी तमारा का आशीर्वाद पा तब दोनों सिंहालिका और विप्रचित्ति अपनी राजधानी पाताल लोक वापस आ गए।

अभी कुछ वर्ष ही बीते होंगे कि सिंहालिका की स्वयं की गोद भी हरी हो गई। उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम उन्होंने स्वर्भानु रखा। स्वर्भानु के जन्म का पूर्ण श्रेय उन्होंने अह्लाद के गृह में शुभ चरण पड़ने हेतु दिया। अह्लाद और स्वर्भानु, दोनों राजकुमारों का लालन पालन बड़े प्रेम और सम्मान से होने लगा। स्वर्भानु अह्लाद को अपने बड़े भाई ही नहीं संरक्षक के रूप में देख उनका माता पिता समान ही आदर करने लगे। इसी प्रकार सुखद समय बीतता चला जा रहा था कि ब्रह्मऋषि नारद की आज्ञा पर राजकुमार स्वर्भानु को अमरत्व प्राप्त करने हेतु गुरुदेव शुक्राचार्य के आश्रम में भेज दिया गया।

हिरण्यकश्यपु का उत्पात

ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करने के बाद हिरण्यकश्यपु अब स्वयं को अमर मानने लगा। वह अब पृथ्वी के साथ स्वर्ग का भी शासक था। उसका पाताल लोक के राजा विप्रचित्ति पर भी सीधा प्रभाव था। उसने सभी राज्यों (पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल लोक) को आदेश दिया कि वह ही ईश्वर है और उसकी पूजा की जाए। जो कोई भी उसके आदेश का पालन नहीं करेगा, उसे तुरंत मार दिया जाएगा।

पाताल लोक के राजा विप्रचित्ति हिरण्यकश्यपु के एक महान अनुयायी थे। वह हिरण्यकश्यपु के ऋणी भी थे क्योंकि उन्होंने अपने एक पुत्र अह्लाद को उन्हें दत्तक दे दिया था। उन्होंने अपने राज्य में हिरण्यकश्यपु के आदेश का समर्थन किया और अपने सभी नागरिकों को हिरण्यकश्यपु की देवता के रूप में पूजा करने का आदेश दिया। सिंहालिका इस विचार के विपरीत थीं लेकिन अपने भाई हिरण्यकश्यपु के प्रति प्रेम और इस भय से कि यदि वह हिरण्यकश्यपु के आदेश का समर्थन नहीं करेंगी तो वह अह्लाद को उससे छीन लेगा जो अब उनकी आत्मा है, उन्होंने भी इस आदेश का विरोध नहीं किया।

हिरण्यकश्यपु के सैनिकों ने अपने स्वामी का आदेश सुनते ही संतों और सनातन धर्म के अनुयायियों को प्रताड़ित करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने सभी संतों द्वारा आयोजित पवित्र यज्ञों और बलिदान अनुष्ठानों को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। यह राक्षस भगवान विष्णु का नाम जपने वाले किसी भी पवित्र व्यक्ति को मार देते थे और उन्हें भगवान के रूप में हिरण्यकश्यपु को स्वीकार करने के लिए बाध्य करते थे।

हिरण्यकश्यपु के स्वयं के महल में उसके अपने प्रथम पुत्र प्रह्लाद ने इस आदेश के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उन्होंने अपने बाल्यकाल में महर्षि आनंद के आश्रम में यह सीखा था कि ईश्वर तो स्वयं केवल भगवान विष्णु या उनके अवतार हैं। उन्होंने यह संदेश हिरण्यकश्यपु तक पहुँचाने का प्रयास किया। हिरण्यकश्यपु अपने पुत्र के इस व्यवहार पर अति क्रोधित हो गया।

उसने प्रह्लाद को संस्कृत आचार्यों (प्राध्यापकों) शंड और अमर्क के पास भेज दिया। उसने इन संस्कृत आचार्यों को यह सिखाने का आदेश दिया कि वह प्रह्लाद को भली भांति शिक्षा दें कि हिरण्यकश्यपु ही ईश्वर है, विष्णु नहीं।

यह संस्कृत आचार्य हिरण्यकश्यपु के अनुयायी थे और पहले ही उसे ईश्वर के रूप में स्वीकार कर चुके थे। वे कड़े अनुशासन प्रिय थे और उन्होंने प्रह्लाद को आदेश दिया कि वह उनके गुरुकुल में विष्णु का नाम भी न ले। प्रह्लाद ने उनकी शिक्षाओं पर ध्यान न देते हुए भगवान विष्णु की पूजा करना संलग्न रखा और गुरुकुल के अन्य शिष्यों को भी ऐसा करने के लिए सिखाया। जब आचार्यों को यह पता चला तो वह शक्तिशाली राजा हिरण्यकश्यपु के प्रताप से डर गए। उन्होंने प्रह्लाद को ऐसा करने से रोकने का पूर्ण प्रयास किया। जब प्रह्लाद ने उनकी बात नहीं मानी, तो उनके पास हिरण्यकश्यपु को सूचित करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं बचा।

यह सुनकर हिरण्यकश्यपु अति क्रोधित हो गया और उसने प्रह्लाद को अपने दरबार में बुलाया। उसने सौम्य अनुनय विनय से प्रह्लाद को विष्णु की पूजा रोकने का प्रयास किया और उसे यह सिखाने का प्रयास किया कि वही एक मात्र ईश्वर है, अतः प्रह्लाद को उसकी ही पूजा करनी चाहिए। हिरण्यकश्यपु के ऐसे सभी निर्देश और आदेश व्यर्थ गए। प्रह्लाद बार बार यह घोषणा करते रहे कि सर्वव्यापी विष्णु ही ब्रह्मांड के स्वामी, एक मात्र परमेश्वर हैं और उनकी ही पूजा होनी चाहिए। राजा हिरण्यकश्यपु को भी उन्हीं की पूजा करनी चाहिए।

अब हिरण्यकश्यपु का क्रोध सीमा से बाहर हो गया और उसने उस बालक को तुरंत मार डालने का आदेश दिया। उसे मारने के प्रयासों में दैत्यों ने उस पर नुकीले हथियारों से वार किया। प्रह्लाद का मन भगवान विष्णु में इतना तल्लीन था कि उन्हें उनसे कोई पीड़ा नहीं हुई।

जब हिरण्यकश्यपु ने देखा कि इस तरह प्रह्लाद को यातना देने का कोई प्रभाव नहीं हो रहा है तो उसने उसे हाथी के पैरों तले कुचलने का आदेश दिया। क्रोधित हाथी भी प्रह्लाद को कुचल नहीं सका।

हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद को मारने के कई प्रयास किए। उसने प्रह्लाद को एक ऊँचे पहाड़ से फेंकने का आदेश दिया। इस घात के बाद भी प्रह्लाद अपने प्रिय भगवान विष्णु का पवित्र नाम जपते रहे। आश्चर्यजनक रूप से वह पर्वत से पृथ्वी के समतल स्थान पर वैसे ही कोमलता से उतरे जैसे पुष्प घास पर गिरता है। प्रह्लाद को मारने के लिए उन्हें विष देने, भूखा रखने, कुएँ में फेंकने आदि जैसे सभी संभावित माध्यमों को भी प्रयोग में लाया गया, लेकिन हर बार वे मृत्यु से बच निकले।

तब हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद को शक्तिशाली अत्यधिक विषैले साँपों से बाँधकर समुद्र के तल में फेंकने का आदेश दिया। प्रह्लाद अपने प्रिय भगवान विष्णु की प्रार्थना करते रहे, 'हे ब्रह्मांड के स्वामी, आपको प्रणाम।'

इस प्रकार, भगवान विष्णु का ध्यान करते हुए उन्हें ऐसा आभास होने लगा कि भगवान विष्णु उनके समीप हर स्थान पर हैं। जैसे ही उन्हें यह अनुभव हुआ, सभी साँपों के बंधन टूट गए। पहाड़ चूर चूर हो गए। समुद्र उथल पुथल हो गया। उन्हें समुद्र देव ने लहरों के ऊपर धीरे से उठा लिया और सुरक्षित रूप से किनारे पर रख दिया। प्रह्लाद यह भूल गए कि वह दैत्य वंश की संतान हैं, उनका शरीर नश्वर हो गया। उन्होंने अनुभव किया कि भगवान विष्णु ही ब्रह्मांड हैं और ब्रह्मांड की सभी शक्तियाँ उनसे ही उत्पन्न होती हैं। जब प्रकृति के शासक भगवान विष्णु उनके साथ हैं तो प्रकृति में ऐसा कुछ भी नहीं था जो उन्हें चोट पहुँचा सके।

जब हिरण्यकश्यपु को यह पता चला कि प्रह्लाद उसके शत्रु विष्णु के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं और उससे छुटकारा पाने के सभी सांसारिक उपाय निष्फल हो गए हैं तो वह अति निराश हो गया। उसने फिर से सौम्य माध्यमों से प्रह्लाद को अपनी परामर्श मानने के लिए मनाने का प्रयास किया। लेकिन प्रह्लाद ने उसकी परामर्श नहीं मानी। फिर उसने सोचा कि संभवतः प्रह्लाद अभी बालक है, आयु के साथ आगे के प्रशिक्षण से वह मेरी बात मान लेगा। यह सोचकर उसने आचार्य शंड और अमर्क से एक बार फिर से उसे राजा के कर्तव्य सिखाने के लिए कहा। इन आचार्यों के सभी प्रयास कि वह हिरण्यकश्यपु को भगवान मानने के लिए प्रह्लाद को विवश कर सकें, व्यर्थ गए। इसके विपरीत, प्रहलाद ने फिर से गुरु कुलीन अन्य शिष्यों को भगवान श्री हरि विष्णु की प्रार्थना करना सिखाना प्रारम्भ कर दिया।

तब उसके सेनापतियों ने परामर्श दी कि उसकी बहन सिंहालिका को अग्निदेव से एक वरदान मिला है जिसके अनुसार वह एक कंबल के रूप में आग से अभेद हैं। प्रह्लाद को उनकी मदद से आग में जलाकर मार डाला जा सकता है। यह जानकर, हिरण्यकश्यपु ने तुरंत अपनी बहन सिंहालिका को अपने राज दरबार में बुलाया।

होलिका

पाताल लोक में विप्रचित्ति को संदेश भेजा गया कि हिरण्यकश्यपु शीघ्र अपनी राजधानी में विप्रचित्ति और सिंहालिका दोनों से मिलना चाहता है। यह संदेश सुनकर सिंहालिका लंबे समय बाद अपने प्रिय बड़े भाई और उसके परिवार से मिलने की संभावना से रोमांचित हो उठी। उसने अपने मन में यह भी सोचा कि यह उसके लिए अपने भाई हिरण्यकश्यपु को अपने ही पुत्र प्रह्लाद को मारने से रोकने का एक अच्छा अवसर हो सकता है।

सिंहालिका को प्रह्लाद से अत्यंत प्रेम था। प्रह्लाद उसके दत्तक पुत्र अह्लाद का बड़ा भाई था। वह सदैव स्वप्न देखती थी कि एक दिन जब प्रह्लाद दैत्यों का और अह्लाद दानवों का सम्राट बनेगा, तो यह दोनों भाई आपस में अति प्रेम से ब्रह्मांड पर शासन करेंगे। ब्रह्मांड में शांति छा जाएगी। वह जानती थी कि उसका भाई हिरण्यकश्यपु प्रह्लाद को पसंद नहीं करता, लेकिन वह आशावादी थी। समय सब घाव भर देता है। एक दिन मेरा भाई हिरण्यकश्यपु अपने पुत्र प्रह्लाद को क्षमा कर देगा, और उसे 'युवराज' की उपाधि से विभूषित करेगा।

हृदय में प्रसन्नता भरे विप्रचित्ति, सिंहालिका और उनका दल हिरण्यकश्यपु की राजधानी पहुँचा। महल के द्वार पर हिरण्यकश्यपु और रानी कयाधु ने उनका स्वागत किया। फिर सिंहालिका रानी कयाधु के साथ उनके महल में चली गईं और विप्रचित्ति राजा हिरण्यकश्यपु के साथ राजदरबार में चले गए।

सिंहालिका अपने प्रिय भतीजे प्रह्लाद को देखना, उससे मिलना और उसे गले लगाना चाहती थीं। उसे रानी कयाधु के महल में प्रह्लाद नहीं दिखाई दिया। उसने विनम्रता से अपनी भाभी कयाधु से पूछा, 'भाभी, प्रह्लाद कहाँ है? वह मुझे स्वागत करने और मेरा आशीर्वाद लेने नहीं आया। मेरे प्रिय भतीजे प्रह्लाद के लिए यह उचित नहीं है। वह तो सदैव अपने बड़ों के प्रति अति विनम्र, आज्ञाकारी और सम्मानजनक रहता है।'

हिराण्यकशिपु की बहन के मुख से अपने प्रिय भतीजे के लिए इतने स्नेहपूर्ण शब्द सुनकर रानी कयाधु को आश्चर्य हुआ। उसे तो लगा था कि उसके पति के समान

सिंहालिका भी उसके प्रिय और दयालु पुत्र प्रह्लाद के बारे में बुरा भला ही बोलेगी। वह अपना सिर सिंहालिका के कंधे पर रखकर फूट फूट कर रोने लगीं।

'मेरी प्रिय नन्द, तुम्हारे भाई ने अपने ही प्रिय पुत्र प्रह्लाद को मारने के लिए हर संभव प्रयास किया है। प्रह्लाद का एकमात्र दोष यह है कि वह तुम्हारे भाई को भगवान नहीं मानता। वह निरंतर भगवान विष्णु की पूजा करता है और यह प्रचार करता है कि विष्णु ही परम पुरुषोत्तम भगवान हैं। अब तुम्हारा प्रिय भतीजा कारागार में है। वह अपने कंठ और शरीर पर बेड़ियाँ पहनकर कारागार में कष्ट सह रहा है। तुम्हें तुम्हारे भाई ने मेरे प्रिय मासूम बच्चे प्रह्लाद को मारने में उसकी मदद करने के लिए बुलाया है। मैं तुमसे विनती करती हूँ और सदैव तुम्हारी ऋणी रहूँगी यदि तुम कृपया मेरे पुत्र को क्षमा कर दो। प्रह्लाद को मारने के षड्यंत्र में सम्मिलित न हो', रानी कयाधु ने आँखों में आँसू लिए लगातार सिसकते हुए सिंहालिका के पैरों में गिरकर विनती की।

'भाभी, यह आप क्या कह रही हैं? मैं अपने भाई हिरण्यकश्यपु को अपने ही प्रिय भतीजे प्रह्लाद, मेरे पुत्र अह्लाद के भाई को मारने में मदद करूँ, असंभव! असंभव! मैं इसके बारे में स्वप्न में भी नहीं सोच सकती। आप जानती हैं कि मैं प्रह्लाद से कितना प्रेम करती हूँ। वह मेरे लिए अह्लाद समान है। मैं तो यह सोचती थी कि एक दिन यह दोनों भाई सौहार्द और शांति से पूरे ब्रह्मांड पर शासन करेंगे', अपनी नन्द से यह सुनकर सिंहालिका स्तब्ध हो कर बोलीं।

सिंहालिका आगे बोलीं, 'भाभी, मुझे यह भी समझ नहीं आ रहा कि भाई हिरण्यकश्यपु यह कैसे सोच सकते हैं कि मैं उन्हें प्रह्लाद को मारने में उनकी मदद करूँगी। इस काम के लिए उनकी क्या योजना है? कृपया मुझे विस्तार से बताएं ताकि मैं उन्हें एक उचित उत्तर देने के लिए तैयार हो सकूँ। भाभी, कृपया आप निश्चिंत रहें। मैं आपको वचन देती हूँ कि मैं प्रह्लाद की उसी प्रकार रक्षा करूँगी जैसे मैं अपने प्राण गंवा कर भी अह्लाद की रक्षा करूँगी'।

'सिंहालिका, मेरी प्रिय नन्द, तुम्हारे गुरु अग्निदेव ने तुम्हें आग से प्रतिरक्षा प्रदान करने के लिए एक कंबल के रूप में वरदान दिया है। तुम्हारा भाई चाहता है कि तुम इस दिव्य कंबल से स्वयं को ढककर प्रह्लाद के साथ चिता पर बैठो ताकि प्रह्लाद जलकर मर जाए और तुम बच जाओ', रानी कयाधु ने सिंहालिका से कहा।

'हूँ, तो यह मेरे दुष्ट भाई की योजना है। भाभी, अब इसे मुझ पर छोड़ दें,' सिंहालिका ने यह बताए बिना कि यदि उसके भाई हिरण्यकश्यपु ने उससे ऐसा करने को कहा तो वह क्या करेगी, कहा।

अगले दिन प्रातः हिरण्यकश्यपु अपनी रानी कयाधु के महल में आया जहाँ सिंहालिका ठहरी हुईं थीं। उसकी पत्नी रानी कयाधु ने उसे बड़े सम्मान से बैठाया। उसने सिंहालिका को महल में नहीं देखा तो अपनी पत्नी से पूछा कि उसकी प्रिय बहन कहाँ है? कयादु ने बताया की सिंहालिका अपने गुरु अग्निदेव की पूजा करने में व्यस्त थी। हिरण्यकश्यपु अपनी बहन सिंहालिका के अग्निदेव की पूजा करने पर क्रोधित नहीं हुआ जब कि अग्निदेव अदिति के पुत्र उसके शत्रु थे। वह मुसकुराया और सोचने लगा, 'लगता है मेरी प्रिय बहन मुझे पहले से ही समझ चुकी है और अब वह प्रह्लाद को अपने साथ चिता में जलाने की तैयारी कर रही है। संभवतः प्रह्लाद को जलाने के लिए अपने गुरुदेव का आशीर्वाद ले रही है। वह तब तक धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करता रहा जब तक सिंहालिका ने अपनी प्रार्थना के अनुष्ठान पूरे नहीं कर लिए।

जब सिंहालिका ने अपनी प्रार्थनाएँ पूरी कर लीं तो एक दासी ने उन्हें समाचार दिया कि उनके भाई राजा हिरण्यकश्यपु महल के मुख्य सभागार में उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह तुरंत मुख्य सभागार की ओर दौड़ीं। जब वह अपने भाई के पैर छूने के लिए झुकी, तो हिरण्यकश्यपु ने तुरंत उन्हें अपनी बाँहों में भर लिया और गले लगा लिया।

'सिंहालिका, मैंने तुम्हें कितना याद किया। इतने लंबे समय बाद तुम्हें और विप्रचित्ति को देखकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। अह्लाद कैसा है? मैंने सुना है कि वह अति सुंदर, आज्ञाकारी और विद्वान राजकुमार बन गया है। मुझे यह भी पता चला है कि वह अपने पिता विप्रचित्ति के साथ राज्य के प्रशासन में भाग ले रहा है। तुम कितनी भाग्यशाली हो। मुझे देखो। मेरा बड़ा और अति प्रिय पुत्र प्रह्लाद तो मुझ से बिल्कुल विपरीत चल रहा है। इस युवक के भविष्य को लेकर मैंने लाखों सपने देखे हैं। मैंने अदिति के पुत्रों को हराया और इसके लिए स्वर्ग पर आधिपत्य किया। मैंने सदैव सोचा था कि यह दोनों भाई, प्रह्लाद और अह्लाद, पूरे ब्रह्मांड पर राज करेंगे। लेकिन प्रह्लाद हर कदम पर मेरे विपरीत व्यवहार कर रहा है। मैंने उसे सुधारने के लिए हर संभव प्रयास किया, उसे समझाया, युवराज बनाया आदि, लेकिन वह जब भी उचित मार्ग पर नहीं आया तो दंड भी दिया। साम, दाम, दंड, भेद , सभी माध्यम अपनाए।

उसने कभी मेरी, अपने आचार्यों और वरिष्ठ दरबारी परामर्शकारों की नहीं सुनी। एक गर्वित और स्वाभिमानी व्यक्ति होने के नाते, मैं और सहन नहीं कर सकता था। मैं तो बस अब उसका चेहरा भी नहीं देखना चाहता। मैं उसे मृत देखना चाहता हूँ। मेरी राजसभा ने उसे मृत्यु दंड दिया है। यद्यपि मैंने उसे मृत्यु दंड देने के सभी माध्यम अपनाए, लेकिन सब व्यर्थ हुए। मैं जानता हूँ कि तुम अपने प्रिय बड़े भाई के स्वाभिमान और आत्म-सम्मान का आदर करती हो। मैंने सदैव तुम्हारी भलाई ही सोची है। मैंने तुम्हें अपना लाड़ला पुत्र अह्लाद भी गोद के लिए दे दिया क्योंकि उस समय तुम माँ नहीं बन सकती थीं। मैं तुमसे निवेदन करता हूँ कि प्रह्लाद पर मृत्यु दंड देने में मेरी मदद करो।'

सिंहालिका अपने अभिमानी भाई को इतनी कोमल और स्नेहपूर्ण स्वर में बोलते देखकर हैरान हो गईं। वह आशा कर रही थीं कि वह बस उसे अपने आदेशों का पालन करने का आदेश देगा, न कि विनती। उसने साहस जुटाया और अपने भाई को उत्तर दिया।

'भैया, आप जानते हैं कि मैं आपकी प्रिय आज्ञाकारी बहन हूँ। मैं और विप्रचित्ति अह्लाद को देने के लिए आपके अति आभारी हैं। अवश्य, मैं अपनी शक्ति के अंदर आपका कोई भी आदेश पूरा करूँगी,' सिंहालिका ने कहा।

हिरण्यकश्यपु सिंहालिका के यह मधुर शब्द सुनकर अति प्रसन्न हुआ।

'मेरी छोटी प्रिय बहन, मुझे तुम से यही आशा थी कि तुम अपने भाई के आदेश का सम्मान करोगी। मैं अति प्रसन्न हूँ। यदि मेरे आदेश का पालन हुआ तो मैंने पहले ही सोच लिया है कि मैं अह्लाद को अपने दोनों राज्यों (पृथ्वी और स्वर्ग) का युवराज बना दूँगा। अब अह्लाद पूरे ब्रह्मांड पर शासन करेगा,' हिरण्यकश्यपु ने कहा।

'भाई, मैं आपको प्रसन्न करने के लिए क्या करूँ,' सिंहालिका ने ऐसे पूछा मानो वह अपने भाई हिरण्यकश्यपु की किसी योजना के बारे में नहीं जानती हो।

'यह तुम्हारे लिए अति सरल है, सिंहालिका। मुझे पता है कि तुम्हारे गुरु अग्निदेव ने तुम्हें एक कंबल वरदान स्वरुप दिया है जो तुम्हें आग से अभेद्य बनाता है। उस कंबल

से अपना शरीर ढक लो और प्रह्लाद के साथ चिता पर बैठ जाओ। तुम्हें कुछ नहीं होगा लेकिन प्रह्लाद जलकर मर जाएगा। इस तरह 'राज दरबार' के आदेश का पालन होगा और तुम्हारा भाई गर्व और आत्म-सम्मान से सिर ऊँचा कर सकेगा,' हिरण्यकश्यपु ने अति ही शांत स्वर में कहा।

'क्या? आप मुझ से, उसकी प्रिय बुआ से अपने ही भतीजे को मारने के लिए कह रहे हो, भाई। आप जानते हैं कि प्रह्लाद मुझे उतना ही प्यारा है जितना कि अह्लाद। प्रह्लाद को मारने का आपका आदेश पूरा करने का साहस मुझ में कैसे आ सकता है? अह्लाद को अपने बड़े भाई प्रह्लाद के प्रति गहरी श्रद्धा, प्रेम और स्नेह है। जब वह यह सुनता था कि आप उसके प्रिय भाई प्रह्लाद को मारने के लिए हर संभव प्रयास कर रहे हो तो वह अति क्रोधित हो जाता है। मैं और विप्रचित्ति उसे समझाते हैं और शांत करने का प्रयास करते हैं। यदि उसे अब पता चलेगा कि मैंने उसके प्रिय भाई को मार डाला है तो वह मुझसे अत्यन्त घृणा करेगा और मुझे कभी क्षमा नहीं करेगा। मैं अह्लाद के प्रेम और स्नेह के बिना नहीं रह सकती। भैया, कृपया मुझे क्षमा कर दें। मैं आपसे विनती करता हूँ कि मुझे यह घृणित कार्य करने के लिए न कहें। मैं आपके लिए अपना जीवन दे सकती हूँ, लेकिन यह कार्य नहीं कर सकती,' सिंहालिका ने अत्यंत विनम्र स्वर में हिरण्यकश्यपु से कहा।

'मेरी आज्ञा न मानने का तुम में साहस कैसे हुआ? मैंने तुम्हें सब कुछ दिया है, यहाँ तक कि अपने पुत्र को भी तुम्हारे गोद में डाल दिया। मैंने कभी यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि तुम मेरे साथ कभी ऐसा अवज्ञाकारी व्यवहार करोगी। मैं तुम्हारे प्रति विनम्र और दयालु होने का प्रयास कर रहा था। तुम मेरी दया की पात्र नहीं हो। मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि जैसा मैंने कहा है, प्रह्लाद को प्राण दंड दो,' हिरण्यकश्यपु ने क्रोध में कहा।

'नहीं भैया, कृपया, कृपया, मेरी बात सुनें। मुझसे यह घृणित कार्य न करवाएं। यह मुझ से सब कुछ छीन लेगा जो आपने मुझे दिया है। मैं आपसे विनम्रता पूर्वक निवेदन करती हूँ कि मुझे यह घृणित कार्य करने के लिए विवश न करें,' सिंहालिका ने फिर से विनती की।

'मैंने सुना तुमने कहा कि अह्लाद मुझ से प्रह्लाद को मृत्यु दंड देने के निर्णय पर अप्रसन्न और क्रोध में है। यही प्रशिक्षण तुमने मेरे दूसरे प्रिय पुत्र को दिया है! तुमने उसका हृदय भी मेरे विरुद्ध कर दिया है, अपने बड़े प्रिय भाई के विरुद्ध! कुछ शर्म करो। अब तो ऐसा लगता है कि अह्लाद भी मेरे काम का नहीं रहा। यदि तुम मेरे आदेशों का पालन नहीं करोगी तो मैं विप्रचित्ति और अह्लाद, दोनों को तुरंत मार डालूँगा। तुम मेरी बहन हो, इसलिए मैं तुम्हारा जीवन नहीं लूँगा। लेकिन मैं तुम से सबसे अमूल्य वस्तुएं, तुम्हारे पति और तुम्हारे पुत्र को छीनकर तुम्हें जीवित ही मृत समान जीवन जीने के लिए छोड़ दूँगा,' हिरण्यकश्यपु ने क्रोध में कहा।

'नहीं, नहीं, भाई, आप ऐसा नहीं कर सकते। मैं आपसे विनती करती हूँ। कृपया मेरे प्रिय पति विप्रचित्ति और मेरे प्रिय पुत्र अह्लाद को हाथ न लगाएं। मैं इन दोनों से अपने जीवन से भी अधिक प्रेम करती हूँ। मैं आपके आदेशों का पालन करूँगी,' सिंहालिका ने अपने पति और पुत्र की मौत के डर से कहा।

'अति उत्तम कल मेरे आदेशों का पालन करने के लिए तैयार रहना,' हिरण्यकश्यपु ने अधिकारपूर्वक कहा और कयादु के महल से बाहर चला गया।

यह रानी कयादु के लिए एक झटका था। उसने कल ही सिंहालिका से बात की थी और उसने उसके प्रिय पुत्र प्रह्लाद को जीवन दान देने का वचन भी दिया था। अब वह अपने प्रिय भतीजे प्रह्लाद को मारने के लिए उसके भाई के आदेशों का पालन करने को तैयार हो गई है। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। आँखों में आँसू लिए वह सिंहालिका के पास गई और एक बार फिर सिंहालिका से अपना निर्णय बदलने की विनती करने लगी।

'भाभी, आप निश्चिंत रहें, मैं वही करूँगी जो प्रह्लाद, अह्लाद, आपके और विप्रचित्ति के लिए उचित होगा। मैं अभी बस इतना ही कह सकती हूँ। कृपया उचित समय की प्रतीक्षा करें और अभी मुझे अकेला छोड़ दें,' सिंहालिका ने अपनी भाभी कयादु से कहा और सभागृह से अपने निजी कक्ष में चली गईं। उन्होंने अंदर से कक्ष का द्वार बंद कर लिया और अपने गुरुदेव अग्निदेव का ध्यान करने लगीं।

वह समाधि में चली गई। भगवान अग्निदेव स्वप्न में उनके सामने प्रकट हुए और उन्हें आशीर्वाद दिया, 'मेरी पुत्री, मैं प्रार्थना करता हूँ कि सर्वशक्तिमान तुम्हें तुम्हारी इच्छाओं को पूरा करने के लिए हर शक्ति दें।'

उन्हें पता ही नहीं चला कि वह कब सो गईं। उन्हें अपने कमरे के द्वार पर किसी के दस्तक देने का स्वर सुनाई दिया तब वह जागीं। एक सेविका चिल्ला रही थी कि राजा हिरण्यकश्यपु उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। चिता लगा दी गई है और प्रह्लाद भी वहाँ उपस्थित हैं।

वह शीघ्रता से जागीं। उन्होंने कक्ष के द्वार पर दस्तक देने वाली सेविका से कहा कि वह राजा हिरण्यकश्यपु को समाचार दे दे कि वह शीघ्र वहां पहुँचती हैं।

उन्होंने तुरंत स्नान किया और स्वच्छ हो कर अपने गुरुदेव अग्निदेव को स्मरण करते हुए अपनी अग्नि-प्रतिरोधी कम्बल को उठाया और चिता स्थल की ओर चल पड़ीं। उन्होंने अधिक समय बाद आज प्रह्लाद को वहां देखा। वह छोटा बालक मंत्र मुग्ध कर देने वाली मुस्कान के साथ उनके सामने खड़ा था। वह बिल्कुल अह्लाद जैसा दिख रहा था। एक पल के लिए वह भूल गईं कि वह हिरण्यकश्यपु के महल में थी और उनके सामने प्रह्लाद खड़ा है। उन्हें लगा कि अह्लाद ही वहां खड़ा है और अपनी माँ को अपनी बांहों में लेने का आमंत्रण देते हुए मुसकुरा रहा है। सिंहालिका प्रह्लाद की ओर दौड़ीं और तुरंत उसे अपनी बांहों में ले लिया। उन्होंने माँ भांति उसके गालों और माथे पर चुम्बन लेना प्रारम्भ कर दिया। तभी उन्हें अपने भाई हिरण्यकश्यपु का कर्कश स्वर सुनाई दिया।

'बस करो प्रेम का दिखावा, सिंहालिका। अब मेरे आदेश का तुरंत पालन करो,' हिरण्यकश्यपु ने आदेश दिया।

'हाँ, भैया। अवश्य। मैं आपके आदेश का तुरंत पालन करूँगी, लेकिन मेरी एक विनती है। मैं नहीं चाहती कि दुनिया मेरी क्रूरता देखे कि मैं अपने प्रिय छोटे मुसकुराते भतीजे को चिता पर ले जा रही हूँ। इसलिए जब मैं चिता की ओर जाऊँ तो आप सहित कोई भी मेरी ओर न देखे', सिंहालिका ने अपने भाई हिरण्यकश्यपु से निवेदन किया।

'बस इतना ही। कोई बात नहीं। मैं वैसे भी अपने महल में जा रहा हूँ और अपने सभी सैनिकों को भी आदेश देता हूँ कि वह तुम दोनों को अकेला छोड़ दें। मैं अपने निजी

कक्ष में तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। तुम शीघ्र ही स्वयं को जीवित और प्रह्लाद को मृत्यु दंड दिए जाने का समाचार मुझे सुनाओ,' यह कहकर हिरण्यकश्यपु अपने महल में चला गया। धीरे धीरे सभी सैनिक भी अपने स्वामी के आदेश का पालन करते हुए चिता के स्थल से चले गए।

सिंहालिका ने प्रह्लाद को अपनी गोद में उठा लिया और धीरे चिता की ओर चल पड़ीं। वह चारों ओर देख रहीं थीं कि कहीं कोई उन्हें और प्रह्लाद को चिता में कूदते हुए न देख ले। एक बार फिर उन्होंने प्रह्लाद को ध्यान से देखा।

'मेरे प्रिय भतीजे प्रह्लाद, कृपया मेरे पुत्र और अपने भाई अह्लाद का ध्यान रखना। वह अति अच्छा, दयालु और प्रेम करने वाला बालक है। वह सदैव तुमसे अत्यंत प्रेम करता है। कृपया मुझे वचन दो कि तुम उसे सदैव क्षमा करते रहोगे चाहे वह कभी भूल से असत्य मार्ग पर चला जाए। तुम उसे सदैव उचित मार्ग पर चलने का निर्देश देते रहोगे,' यह कहकर सिंहालिका ने प्रह्लाद को अग्नि-प्रतिरोधी कंबल से ढक दिया और चिता में कूद गईं।

सिंहालिका जलकर भस्म हो गईं। इस प्रकार उन्होंने अपना बलिदान दे दिया और प्रह्लाद को बचा लिया। तभी ब्रह्मर्षि नारद वहां प्रकट हुए और उन्होंने सिंहालिका की महिमा का गुणगान प्रारम्भ कर दिया।

'हे सिंहालिका, भगवान विष्णु तुम्हारे बलिदान को कभी नहीं भूलेंगे। तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं होगा। भगवान विष्णु साकेत धाम में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम्हारे महान बलिदान की स्मृति में तुम्हें आज से 'होलिका' कहा जाएगा। जो कोई भी फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा के इस दिन आपकी पूजा करेगा, उसे स्वयं भगवान विष्णु का आशीर्वाद प्राप्त होगा और उसे इस संसार में शांति, समृद्धि, नाम, कीर्ति और सफलता मिलेगी और मृत्यु के बाद वह भगवान विष्णु के साकेत धाम को प्राप्त करेगा,' आशीर्वाद देते हुए ब्रह्मऋषि नारद ने कहा। उन्होंने अग्नि प्रतिरोधी कंबल को अपने साथ ले लिया और होलिका की महिमा गाते हुए चिता स्थल से चले गए।

ब्रह्मर्षि ने सिंहालिका को 'होलिका' नाम दिया। संस्कृत में, होलिका दो शब्दों – होल + इका से मिलकर बना है। होल का अर्थ है चिता और इका का अर्थ है देवी। होलिका का अर्थ है चिता की देवी।

जब कई घड़ियाँ (घंटे) बीत गईं और सिंहालिका चिता से वापस नहीं आईं तो हिरण्यकश्यपु चिंतित हो गया और चिता की ओर दौड़ा। वह यह देखकर हैरान हो गया कि प्रह्लाद मुसकुराते हुए चेहरे के साथ चिता के सामने जीवित खड़ा था। उसने देखा कि उसकी बहन जलकर मर गई थी। कहीं कोई कंबल भी नहीं था।

'ओह, इस तथाकथित मेरी बहन के गुरु अग्नि देव ने अंततः यह सिद्ध कर ही दिया कि वह अदिति का ही पुत्र है। उसने मेरी बहन से उसका वरदान छीन लिया और उसे जला दिया। यह कितना नीच व्यक्ति है। मुझे यह अनुभव क्यों नहीं हुआ और मैंने अग्नि देव पर विश्वास किया कि वह अपने वर पर दृढ़ रहेगा। अदिति के पुत्र वैसे भी विश्वास के योग्य नहीं हैं, मेरी बेचारी बहन ने उसके विश्वास पर अपना जीवन दे दिया। मुझे अति खेद है। कृपया मुझे क्षमा कर दो, बहन,' हिरण्यकश्यपु ने अपनी प्रिय बहन की मृत्यु पर विलाप किया। उसने अपनी प्रिय बहन के मरने पर अपने राज्य में एक महीने का शोक का समय घोषित किया। उसने प्रह्लाद को एक बार फिर से आचार्यों के पास ले जाने का आदेश दिया ताकि वह उसमें सुधार लेन का प्रयास करें।

सम्राज्ञी कयादु अब सिंहालिका के शब्दों को समझ गईं। उन्होंने पुत्र प्रह्लाद को जीवन दान देने के लिए मन ही मन उनका धन्यवाद दिया और उनके मोक्ष के लिए प्रभु से प्रार्थना करने लगीं।

होलिका की पूजा

ब्रह्मर्षि नारद ने सिंहालिका को होलिका (चिता की देवी) नाम दिया और आशीर्वाद दिया। ब्रह्मऋषि नारद ने आगे कहा कि जो भी फाल्गुन पूर्णिमा पर होलिका की पूजा करेंगे, उन्हें स्वास्थ्य, सुख, समृद्धि, नाम और प्रसिद्धि प्राप्त होगी। ब्रह्मर्षि नारद ने भगवान नरसिंह अवतार, भगवान ब्रह्मदेव और भगवान अग्निदेव के निर्देशों पर 'माता होलिका' की पूजा के लिए अनुष्ठान भी स्थापित किए।

होलिका स्थापना

शास्त्रों में निर्देश दिया गया है कि होलिका की स्थापना के लिए एक उचित स्थान चुना जाना चाहिए। जिस स्थान पर होलिका की स्थापना की जाती है, उसे प्राथमिकता से गोबर और गंगा जल से धोना चाहिए। गोबर या गंगा जल की अनुपस्थिति में तुलसी के पत्तों वाले पानी का छिड़काव किया जा सकता है। उस स्थान के केंद्र में एक लकड़ी का खंभा रखना चाहिए जिसे गोबर से बने मनकों या मालाओं से सुशोभित करना चाहिए, जिन्हें साधारणतः गुलारी, भरभोलिये या बड़कुला के नाम से जाना जाता है। गोबर की उपलब्धता न होने यह गुलारी मिट्टी से भी बनाई जा सकती हैं। होलिका और प्रह्लाद की मूर्तियाँ जो साधारणतः गोबर या मिट्टी से बनाई जाती हैं, उन्हें इस ढेर के ऊपर रख देना चाहिए। होलिका के ढेर को ढालों, तलवारों, सूर्य, चंद्रमा, सितारों और गोबर या मिट्टी से बने अन्य खिलौनों से भी सजाया जा सकता है।

होलिका दहन के समय प्रह्लाद की मूर्ति को ढेर से बाहर निकाल लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त अलाव जलाने से पहले गोबर या मिट्टी के चार मोती एक तरफ सुरक्षित रख लेने चाहिए। एक मोती पूर्वजों के नाम पर, दूसरा भगवान हनुमान के नाम पर, तीसरा परिवार के नाम पर और चौथा माता होलिका के नाम पर सुरक्षित रखा जाना चाहिए।

पूजा की विधि

पूजा के लिए निम्नलिखित सामग्री का उपयोग किया जा सकता है। इन सामग्रियों की अनुपस्थिति में होलिका को प्रसन्न करने के लिए मन में संकल्प ही पर्याप्त है। एक कटोरी पानी, गोबर या मिट्टी की माटी की माला, रोली, अखंड चावल (अक्षत), यदिबत्ती और/या धूप जैसी सुगंध, पुष्प, कच्चा सूती धागा, हल्दी के टुकड़े, अखंड मूंग की दाल, बताशा/चीनी/गुड़, गुलाल और नारियल। साथ ही, यदि उपलब्ध हो तो गेहूँ, चना या किसी अन्य नवीन उगाई गई फसल के पके दाने पूजा की वस्तुओं में शामिल किए जा सकते हैं।

सभी पूजा सामग्री को एक थाली में रखा जा सकता है। पूजा सामग्री के साथ पूजा की थाली में एक छोटा जल का पात्र भी होना चाहिए। फिर, यदि संभव हो तो पूजा स्थल पर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठें।

पूजा प्रारम्भ करने से पहले, पूजा की थाली, स्वयं और वहाँ उपस्थित सभी लोगों पर कुछ पानी (जिसमें तुलसी के पत्ते हों) छिड़कना चाहिए।

पूजा का प्रारम्भ पहले भगवान विष्णु की पूजा करके और उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए की जानी चाहिए।

ऊँ पुण्डरीकाक्ष: पुनातु ।
ऊँ नृसिंहाय नम: पंचोपचारार्थे गंधाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि ।

हे कमलनयन भगवान विष्णु मुझे पवित्र करें। मैं भगवान नृसिंह को नमस्कार करता हूँ। मैं पंचोपचार पूजा के लिए चंदन/रोली, अक्षत (चावल) और पुष्प अर्पित करता हूँ।

फिर भक्त प्रह्लाद की पूजा की जाती है और हम उनकी कृपा प्राप्त करते हैं।

ऊँ प्रह्लादाय नम: पंचोपचारार्थे गंधाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि ।

हे प्रह्लाद, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।।पंचोपचार पूजा (गंध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप) के लिए, मैं गंध (चंदन/रोली), अक्षत (चावल) और पुष्प आपको अर्पित करता हूँ।

और अंत में, होलिका की पूजा की जाती है।

असृक्पाभयसंत्रस्तै: कृता त्वं होलि बालिशै: ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव:॥

हे माता होलिका, कुछ मूर्ख और अपरिपक्व लोगों ने तुम्हें जलाने के लिए होली बनाई है, लेकिन तुम देवी हो। हम तुम्हारी पूजा करते हैं और स्वयं तथा यहाँ उपस्थित सभी के लिए शक्ति, धन और समृद्धि की कामना में तुम्हारा आशीर्वाद मांगते हैं।

हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान नरसिंह, भक्त प्रह्लाद और माता होलिका (दहन की देवी), हम सभी पर अपनी कृपा बनाए रखें।

ॐ शांतिः, शांतिः, शांतिः।

आचार्य स्वर्भानु (राहु एवं केतु)

प्रार्थना

एक रूढ़िवादी सनातन धार्मिक परिवार में जन्म लेने एवं सौभाग्य से ज्ञानी पितामह के चरणों में बचपन व्यतीत करने के कारण लेखक की अभिरुचि सदैव सनातन धर्म के महान देवियों, देवताओं, ऋषियों, महर्षियों, महात्माओं, माताओं, आदि के बारे में ज्ञान अर्जित करने की रही है। बचपन की एक स्मृति लेखक के मानस पटल पर अभी भी कुछ इस तरह छाई हुई है जैसे कि यह घटना कल की ही हो। जब लेखक कोई ५ वर्ष का रहा होगा तो उसने पितामह को नवग्रह शान्ति पूजा करते देखा। उसकी छुद्र बुद्धि में यह समझ में नहीं आया कि नवग्रहों में राक्षस कहे जाने वाले राहु और केतु की स्तुति क्यों की जाती है? उसने पितामह से यह प्रश्न पूछ ही लिया। तब पितामह ने उसे विस्तार से समझाया कि राहु, केतु कोई राक्षस नहीं, अपितु महादेव एवं स्वयं हरि विष्णु के महान भक्त आचार्य स्वर्भानु हैं। दानव वंश में जन्मे महर्षि कश्यप के पौत्र, गुरु शुक्राचार्य के परम शिष्य आचार्य स्वर्भानु ने महादेव की घोर तपस्या से अमरत्व पाने का मार्ग ढूंढ़ा। यह कोई संयोग नहीं था कि समुद्र मंथन काल में आचार्य स्वर्भानु विष्णु अवतार विश्वमोहिनी के देवताओं को सुधा वितरण करते समय उनकी कतार में सूर्यदेव और चंद्रदेव के मध्य बैठ गए थे, बल्कि महादेव द्वारा बनाई एक योजना का भाग था। सूर्यदेव एवं चंद्रदेव के संकेत पर यद्यपि हरि विष्णु ने आचार्य स्वर्भानु का शीश धड़ से पृथक अवश्य कर दिया था, लेकिन उन्होंने उनका अमृत नहीं सुखाया था। सुदर्शन चक्र में अग्नि वाण समाहित है जो अमृत सुखाने में सक्षम है। अमृत न सुखाने का कारण हरि विष्णु का आचार्य स्वर्भानु के प्रति अत्यंत प्रेम था। शीश को धड़ से पृथक करने के पश्चात स्वयं हरि विष्णु ने महादेव का आवाह्न किया। महादेव ने शल्य चिकित्सा द्वारा आचार्य स्वर्भानु के शीश पर अपने प्रिय नागराज का धड़ लगाया और उसे राहु नाम से सम्बोधित किया। राहु संस्कृत का एक शब्द है जिसका अर्थ है ‘दिव्य परामर्श दाता’। आचार्य स्वर्भानु के धड़ को महादेव ने नागराज के शीश से जोड़ दिया और उसको नाम दिया, केतु। केतु भी एक संस्कृत का ही शब्द है, जिसका अर्थ है, ‘दिव्य पताका’। यह शल्य चिकित्सा महादेव ने उसी प्रकार की जिस प्रकार गणेश जी के शीश पर गजराज का शीश लगाया और माँ सती के योगाग्नि में भस्म होने के पश्चात प्रजापति दक्ष के शीश पर बकरे का शीश लगाया था। राहु और केतु को इसके पश्चात स्वयं हरि विष्णु के निर्देशानुसार अति सम्मान देते हुए महादेव ने उन्हें नवग्रहों में स्थापित कर दिया। उन्हें मुख्य न्यायाधीश शनिदेव

के शनि लोक में जाकर उनके कार्य में हाथ बटाने का महादेव ने आदेश दिया, जिसका उन्होंने पूर्ण श्रद्धा के साथ तत्काल पालन किया।

लेखक की यहां एक और जिज्ञासा हुई। शल्य चिकित्सा से महादेव ने आचार्य स्वर्भानु के शीश को उनके ही धड़ से क्यों नहीं जोड़ दिया था? नागराज के धड़ को आचार्य स्वर्भानु के शीश पर एवं नागराज के शीश को आचार्य स्वर्भानु के धड़ पर लगाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? लेखक की छुद्र बुद्धि पर पितामह मुसकुराए और बोले, 'पुत्र, सुदर्शन चक्र के दांतों और तपन ने आचार्य स्वर्भानु के शीश और धड़ को पृथक करते समय इतना क्षत-विक्षिप्त एवं विकृत कर दिया था कि उसी शीश को धड़ से जोड़ना असंभव था। अतः महादेव ने यह प्रक्रिया अपनाई।'

लेखक ने पितामह से फिर प्रश्न पूछा, 'पितामह, यदि आचार्य स्वर्भानु एक महान पंडित, महादेव एवं हरि विष्णु के अनन्य भक्त थे तो फिर जन साधारण उन्हें राक्षस एवं दुष्ट ग्रहों के रूप में क्यों सम्बोधित करते हैं?'

पितामह ने बड़ी धैर्यता के साथ इसका उत्तर दिया, 'पुत्र, यह मनुष्य बड़ा ही स्वार्थी प्राणी है। कुछ तथाकथित पंडितों ने जान बूझकर राहु और केतु को ही नहीं, शनि एवं मंगल जैसे नवग्रहों को भी दुष्ट गृह बतलाकर उनकी शान्ति कराने के नाम पर भोली भाली जनता को लूटना प्रारम्भ कर दिया। 'नानक दुखिया सब संसार'। इस दुनिया में प्रत्येक को कोई न कोई कष्ट तो अवश्य है। इन कष्टों का कारण कुछ और नहीं, वास्तव में हमारे ही दुष्कर्म हैं। अब यह तो प्राणी स्वीकार नहीं करता, बस इन स्वार्थी पंडितों के बहकावे में आकर ग्रहों को दोष देने लगता है। शनिदेव हरि विष्णु और महादेव द्वारा नियुक्त इस ब्रह्माण्ड के मुख्य न्यायाधीश हैं। उनको यह पद उनकी निष्पक्षता के कारण ही प्रभु ने दिया है। वह किसी को बिना कारण कष्ट क्यों देने लगे? अन्य नवग्रह उनके निर्देशानुसार ही चलते हैं। फिर गृह जैसे राहु, केतु, मंगल इत्यादि किसी को बिना कारण दंड क्यों देने लगे? कष्ट निवारण का एक ही उपाय है, अपना जीवन धर्म के साथ बिताना एवं जाने अनजाने में किए अपने दुष्कर्मों के लिए क्षमा याचना करते रहना। इन नवग्रहों की स्तुति या शान्ति कष्ट निवारण के लिए नहीं, अपितु जाने अनजाने में किए दुष्कर्मों की क्षमा याचना के लिए करते रहना चाहिए। इन नवग्रहों की क्षमा याचना से कष्ट संभवतः पूर्णतः समाप्त तो नहीं हो सकते, जो कर्म किया है उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा, परन्तु उन कष्टों को कम करने की अथवा सहने की क्षमता देने की शक्ति इनमें अवश्य है।'

पितामह से सुने इन शब्दों ने लेखक की जिज्ञासा राहु, केतु का जीवन परिचय जानने की बढ़ा दी। पितामह ने तब लेखक को 'वामन पुराण', 'श्री विष्णु पुराण', 'नारद पुराण', अनगिनत ऋषियों की संहिताएं, इत्यादि का ज्ञान दिया और आचार्य स्वर्भानु के जीवन का परिचय दिया। इस प्रकार राहु केतु से जुड़ी लेखक की समस्त भ्रांतियां दूर हुईं।

पिछले ६० वर्षों से लेखक यह प्रयास करता रहा है कि अपने सनातन साथियों को इस तथ्य से अवगत करा सके। कुछ वर्ष पूर्व कुछ मित्रों ने लेखक से अनुरोध किया कि राहु केतु के जीवन परिचय को वह एक पुस्तक के रूप में लिखे और प्रकाशित करे। यह पुस्तक उसी प्रयास का एक भाग है।

आप सब से विनम्र निवेदन है कि अपने व्यस्त जीवन से कुछ समय निकाल कर इस पुस्तक का अध्ययन करें और लाभान्वित हों। श्रुति कहती है कि नवग्रहों की शान्ति का एक उपाय उनके जीवन चरित्र का पठन एवं श्रवण भी है। आचार्य स्वर्भानु की यह कथा आपको नवग्रहों में स्थित राहु और केतु के साथ हरि विष्णु एवं महादेव की कृपा का पात्र भी अवश्य बनाएगी।

जन्म

महर्षि कश्यप एवं दिति की पुत्री सिंहालिका के गर्भ से उत्पन्न पुत्र राहु देव (स्वर्भानु) की विचित्र कथा है। जैसा इस पुस्तक के सिंहालिका (होलिका) भाग में वर्णित है, सिंहालिका (सिंह मित्र) का विवाह महर्षि कश्यप की पत्नी दानु के पुत्र विप्रचित्ति से हुआ था। विवाह पश्चात एक लम्बे समय तक उन्हें कोई संतति प्रदान नहीं हुई। सिंहालिका के भाई हिरण्यकश्यपु को अपनी बहन सिंहालिका से अत्यंत प्रेम था। सिंहालिका का निःसंतान दुःख उनसे नहीं देखा गया तथा अपने पुत्र अह्लाद को उन्हें गोद दे दिया। अह्लाद को पुत्र रूप में पा सिंहालिका एवं विप्रचित्ति फूले नहीं समाए। राजकुमार अह्लाद का लालन पालन पाताल लोक सम्राट विप्रचित्ति एवं महारानी सिंहालिका के महल में बड़े ही चाव से होने लगा। अह्लाद अपने दत्तक माता पिता सिंहालिका एवं विप्रचित्ति के लिए अत्यंत भाग्यशाली सिद्ध हुए। सम्राट हिरण्यकश्यपु के बहनोई विप्रचित्ति की पाताल लोक में ही नहीं, भूलोक एवं स्वर्गलोक में भी तूती बोलती थी। अह्लाद को गोद लिए अभी कुछ वर्ष ही बीते होंगे कि स्वयं सिंहालिका भी गर्भवती हो गईं। उन्होंने अपने इस गर्भ धारण का पूर्ण श्रेय अह्लाद जैसे सौभाग्यवान का अपने गृह में आने को ही दिया। समय आने पर सिंहालिका ने एक पुत्र को जन्म दिया। नवजात पुत्र का चेहरा जन्म के समय ही सूर्य की भांति दमक रहा था। जन्म लेने के कुछ क्षण पश्चात् ही सूर्यदेव जैसे आधिकारिक स्वर में उसने अपने माता पिता एवं भाई अह्लाद को नमन किया। अग्निदेव एवं सूर्य देव की शिष्या सिंहालिका ने तब उसका नाम रखा, 'स्वर्भानु' (सूर्य समान स्वर)।

राजकुमार अह्लाद एवं राजकुमार स्वर्भानु दोनों ही महल में एक साथ बड़े होने लगे। स्वर्भानु कोई पांच वर्ष के रहे होंगे कि एक दिन अचानक ब्रह्मऋषि नारद जी का महारानी सिंहालिका के महल में आगमन हुआ। महारानी सिंहालिका ने उनका उचित आदर सत्कार किया और एक ऊंचे आसन पर बैठाया। ब्रह्मऋषि नारद महारानी सिंहालिका एवं सम्राट विप्रचित्ति के पिता महर्षि कश्यप के पिता महर्षि मारीचि के भाई, अतः महारानी सिंहालिका के नाना एवं सम्राट विप्रचित्ति के दादा थे।

महारानी सिंहालिका ने अपने दोनों पुत्रों, अह्लाद एवं स्वर्भानु, को ब्रह्मऋषि के चरणों में डाल दिया। ब्रह्मऋषि ने अह्लाद को पाताल लोक का चक्रवर्ती सम्राट होने का आशीष दिया और अपने पास बिठा लिया। स्वर्भानु को उन्होंने अपनी गोद में ले लिया।

उसके केशों से खेलते हुए वह महारानी सिंहालिका की ओर मुख कर बोले, 'हे प्रिय सिंहालिका, तेरे इस पुत्र में अमरत्व पाने के समस्त गुण उपस्थित हैं। यदि यह मेरे बताए हुए मार्ग पर चलेगा तो अमरत्व पाने के साथ इसका स्थान देवों की कतार में स्थित होगा। यह गुरु शुक्राचार्य के समान विद्वान होगा तथा समय आने पर शुक्राचार्य के साथ दैत्य एवं दानव वंश का नेतृत्व भी करेगा। लेकिन यह सब प्राप्त करने के लिए इसको कठिन संघर्ष एवं तप करना होगा।'

ब्रह्मऋषि के शब्द सुनकर महारानी सिंहालिका स्तब्ध रह गईं। वह जानती थीं कि उनके भाई हिरण्यकश्यपु की भी यही इच्छा है, और इसकी पूर्ति के लिए वह भगवान् विष्णु के भी शत्रु हो गए हैं। महारानी सिंहालिका अच्छी तरह से जानती थीं कि भगवान् विष्णु से शत्रुता मृत्यु का आवाहन है। कहीं यह अभिलाषा मेरे प्रिय पुत्र स्वर्भानु को भी मृत्यु द्वार पर न ले जाए?

अन्तर्यामी ब्रह्मऋषि ने सिंहालिका के मनोभाव जानकर प्रेम से उसका हाथ पकड़ा और बोले, 'प्रिय सिंहालिका, हिरण्यकश्यपु ने अवश्य नारायण से शत्रुता लेकर अपनी मृत्यु का आवाहन कर रखा है, लेकिन मेरे वचनों को स्मरण रख। तेरा यह पुत्र ऐसा कुछ नहीं करेगा। जिसकी बुद्धिमता आचार्य शुक्र के समान हो, वह ऐसा कृत्य कैसे कर सकता है? अब जैसा मैं कहता हूँ, तू वही कर। इस पुत्र को तू मुझे सौंप दे। मैं इसे आचार्य शुक्र के आश्रम ले जाकर उनसे अनुरोध करूंगा कि वह इसे अपना शिष्य स्वीकार करें। मेरे आग्रह को शुक्राचार्य कभी नहीं टालेंगे। उनका शिष्य बन यह समस्त ब्रह्माण्ड के ज्ञान को प्राप्त करेगा, और समय आने पर महादेव शिव की कृपा से इसे अमरत्व की प्राप्ति होगी। अभी कुछ समय मैं तेरे महल में ही बिताऊंगा, अतः सोच विचार कर एवं अपने पति विप्रचित्ति से परामर्श ले मेरे सुझाव पर विचार कर। यदि तुम सब को मेरा सुझाव अच्छा लगे, तो मैं अभी अपने साथ इसको आचार्य शुक्र के आश्रम में ले जाऊंगा।'

ऐसा कहकर ब्रह्मऋषि नारद 'नारायण, नारायण' का जाप करते हुए महारानी सिंहालिका के महल से निकल साथ में लगे उद्यान में भ्रमण करने के लिए चले गए।

अह्लाद का हाथ पकड़ एवं पांच वर्षीय पुत्र स्वर्भानु को गोद में लेकर सिंहालिका तब अपने शयन कक्ष की ओर चल दीं। ब्रह्मऋषि का परामर्श मानकर स्वर्भानु को इतनी छोटी, केवल पांच वर्ष की, आयु में आचार्य शुक्र के आश्रम भेजने में उन्हें अत्यंत

हिचकिचाहट हो रही थी। वर्षों बाद उनकी कोख भरी थी। जहां अह्लाद का पाताल लोक में दानव वंश का चक्रवर्ती सम्राट बनने की भविष्यवाणी से वह अत्यंत प्रसन्न थीं, वहीं छोटे पुत्र स्वर्भानु से वियोग का विचार आते ही वह अत्यंत व्यथित हो गईं। उन्होंने अपने कक्ष में पहुंचने के पश्चात एक सेविका द्वारा सम्राट विप्रचित्ति को सन्देश भेजा कि वह उनके दर्शन करना चाहती हैं।

सम्राट विप्रचित्ति को जब महारानी सिंहालिका का सन्देश मिला तब वह अपनी राज्य सभा में मंत्रियों के साथ मंत्रणा कर रहे थे। उन्हें यह समाचार भी मिल चुका था कि उनके दादा श्री ब्रह्मऋषि नारद भी महारानी सिंहालिका के महल में पधार चुके हैं। दादा श्री से मिलने की भी उन्हें तीव्र उत्सुकता थी। अतः महारानी का सन्देश मिलते ही उन्होंने सभा विसर्जन की घोषणा की, और तुरंत महारानी सिंहालिका के महल की ओर प्रस्थान किया।

महारानी सिंहालिका को जब समाचार प्राप्त हुआ कि सम्राट विप्रचित्ति उनके महल की ओर प्रस्थान कर चुके हैं, तो हाथ में आरती का थाल सजा उनकी स्तुति के लिए द्वार पर आईं। सम्राट के द्वार पर पहुंचने पर विधिवत उनकी स्तुति एवं आरती कर वह उन्हें अपने कक्ष में ले गईं जहां अह्लाद एवं स्वर्भानु पहले से ही उपस्थित थे। पिता सम्राट विप्रचित्ति को समक्ष देख दोनों ही राजकुमारों ने उनके चरण स्पर्श कर अभिवादन किया और पिता से सौभाग्यशाली एवं दीर्घ आयु का आशीष प्राप्त किया।

सम्राट विप्रचित्ति ने अनुभव किया कि सम्राज्ञी सिंहालिका के चहरे पर चिंता के भाव हैं। कुछ क्षण के लिए सम्राट विप्रचित्ति भी विचलित हो गए। दादा श्री ब्रह्मऋषि नारद जी कोई अशुभ समाचार ले कर तो नहीं आए? वह जानते थे कि एक तो ब्रह्मऋषि नारद जी ब्रह्माण्ड में घूमते रहते हैं, फिर त्रिकालदर्शी भी हैं। सभी ब्रह्माण्ड के समाचार और होने वाली प्रत्याशित अथवा अप्रत्याशित घटनाओं के बारे में उन्हें ज्ञान रहता है। वह देव, दैत्य एवं दानव, तीनों वंशों के ही हितैषी हैं, अतः समय समय पर वह एक वंश के द्वारा दूसरे वंश द्वारा रचित षड्यंत्रों की जानकारी दूसरे वंशों को देते रहते हैं ताकि दूसरा वंश उस प्रत्याशित अथवा अप्रत्याशित आपातकालीन स्थिति के लिए तत्पर रहे। उन्हें पता चला है कि दादा श्री ब्रह्मऋषि नारद जी इस समय देवलोक से पधार रहे हैं। कहीं कुचाली देवराज इन्द्र ने उनके प्रति कोई षड्यंत्र तो नहीं रचा

जिसकी सूचना देने वह पाताल लोक में पधारे हैं। संभवतः महारानी सिंहालिका को उसकी जानकारी दे दी है। इसी कारण महारानी अति चिंतित हैं।

सम्राट विप्रचित्ति ने सम्राज्ञी सिंहालिका का प्रेम से हाथ पकड़ लिया और अति प्रिय वाणी में बोले, 'हे सम्राज्ञी, सब कुशल मंगल तो है। क्या दादा श्री ब्रह्मऋषि नारद जी कोई अशुभ समाचार लेकर आए हैं जिसके कारण तुम्हारे चेहरे का रंग उड़ा हुआ है? वह यहां दिखाई भी नहीं दे रहे। वह इस समय कहाँ हैं? मैं उनसे मिलने को अति उत्सुक हूँ। मेरा हृदय बैठा जा रहा है। कृपया तुरंत मुझे अपनी व्यथा का कारण बताओ।'

सम्राज्ञी सिंहालिका ने तब सम्राट की ओर मुस्कराकर देखा और बोलीं, 'प्रिये, नाना श्री ब्रह्मऋषि ने ऐसा कोई भी समाचार नहीं दिया। आप इतने व्याकुल नहीं होईए। आपकी वीरता देवराज इन्द्र भली भांति जानते हैं। इतनी सरलता से वह आपके विरुद्ध कोई षड्यंत्र करने का साहस नहीं करेंगे। फिर पूज्य गुरु अग्निदेव भी ऐसा करने के लिए देवराज इन्द्र को निरुत्साहित ही करेंगे। नाना श्री उद्यान में शुद्ध वायु ले रहे हैं। शीघ्र ही यहां पधारेंगे। उनके स्वर्भानु के हित में एक सुझाव ने मुझे विचलित कर दिया है। उन्हें स्वर्भानु में अमरत्व प्राप्त होने के गुण दिखाई दे रहे हैं, लेकिन इस के लिए उसे घोर तप करना होगा। ब्रह्मऋषि के वचन असत्य नहीं हो सकते। उनके अनुसार यह गुरुदेव शुक्राचार्य के आशीर्वाद से ही संभव हो सकता है। अतः उन्होंने प्रस्ताव रखा है कि वह अभी अपने साथ स्वर्भानु को गुरुदेव शुक्राचार्य के आश्रम में ले जाएं। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि गुरुदेव शुक्राचार्य उनकी विनय को अस्वीकार नहीं करेंगे और स्वर्भानु को अपना शिष्य बना लेंगे। गुरुदेव शुक्राचार्य के निर्देश में स्वर्भानु तप करें और ईश्वर को प्रसन्न कर उनसे अमरत्व प्राप्त करने के मार्ग निर्देश करने का वरदान मांगे। ईश्वर उन्हें अवश्य ही यह वरदान देंगे। स्वर्भानु तो अभी केवल पांच वर्ष के हैं। उन्होंने राजमहल में सभी सुख, विलास एवं हम दोनों का वात्सल्य ही देखा है। इस अल्प आयु में वह तप के घोर कष्ट को कैसे सहन कर सकेंगे? फिर इतने वर्षों बाद, अह्लाद के सौभाग्यपूर्ण कदम इस महल में पड़ने के पश्चात, मुझे अपनी स्वयं की कोख से भी माँ बनने का सौभाग्य अभी प्राप्त हुआ है। मैं स्वर्भानु की अनुपस्थिति को कैसे सहन कर पाऊँगी? यही विषय मेरी व्यथा का कारण है। जहाँ एक ओर स्वर्भानु के अमरत्व प्राप्त होने की संभावनाओं की सुखद अनुभूति है, वहीं दूसरी ओर उसके

वियोग का अत्यंत दुःख भी। मैं क्या करूँ? मुझे तो कुछ भी समझ नहीं आ रहा। अब आप ही मेरा मार्ग दर्शन कीजिए।'

यह सुन सम्राट विप्रचित्ति के मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। वह प्रेम भरे शब्दों में बोले, 'सम्राज्ञी, हम दानव वंश सदैव ही देवराज इन्द्र के भय में जीते चले आ रहे हैं। न जाने कब देवराज इन्द्र कोई कुचाल अथवा षड्यंत्र हमारे विरुद्ध रचें और पराजित कर हमें वीरगति को प्राप्त कराएं। यदि हमारे कुल में किसी को अमरत्व प्राप्त हो जाए, तो यह दुःसाहस देवराज इन्द्र फिर कभी नहीं कर सकते। हमारा कुल अजेय हो जाएगा। इसमें व्यथा की बात ही क्या है? तुम सम्राज्ञी हो। राज हित में कोई बड़ी प्राप्ति के लिए कुछ छोटा बलिदान भी देना पड़े, तो वह तुरंत देना चाहिए। आप सहर्ष आज्ञा दें कि राजकुमार स्वर्भानु पूज्य गुरुदेव शुक्राचार्य के निर्देश में यह अजेय तप करें। गुरुदेव शुक्राचार्य हमारे वंश के अति हितैषी हैं। वह हमारे पुत्र की हर प्रकार से सहायता ही नहीं करेंगे, सुरक्षा भी प्रदान करेंगे। राजकुमार स्वर्भानु अत्यंत सौभाग्यशाली हैं कि एक पिता की अनुपस्थिति में उन्हें दूसरे ईश्वर रूपी पिता का आशीर्वाद प्राप्त होगा। जानता हूँ, आप माँ हैं। आपका पुत्र के प्रति वात्सल्य स्वाभाविक है। लेकिन तनिक इससे होने वाले बड़े लाभ को सोचिए, और व्यथा त्यागिए।'

अभी तक शांत बैठे राजकुमार स्वर्भानु भी तब माँ को सम्बोधित कर यह वचन बोले, 'माँ, तुम मेरे प्राण हो। तुम्हारी आज्ञा मेरे लिए अटल है। जैसा आप मुझे आज्ञा देंगी, मैं वैसा ही करूंगा। पिता श्री के वचन एवं उनका परामर्श विचारणीय है। माँ तप का प्रभाव अवर्णीय है। तप के बल से ही ब्रह्मदेव इस ब्रह्माण्ड को निर्देशित करते हैं। तप के बल से ही विष्णुदेव इस ब्रह्माण्ड का पालन एवं तप के बल से ही महादेव इस का संहार करते हैं। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तप पर ही आधारित है। माँ, यदि आप मुझे गुरुदेव शुक्राचार्य जी के निर्देशानुसार तप की आज्ञा देंगी तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूंगा। तप से होने वाले कष्टों की आप चिंता न करें, माँ। आपका यह पुत्र सभी व्यथा और बाधाओं का सामना करने में सक्षम है। आपकी आज्ञा हो तो मैं अपने वंश के लिए यह सभी कष्ट स्वीकार करने को तत्पर हूँ।'

पति एवं पुत्र दोनों के वचनों को सुन सम्राज्ञी सिंहालिका कुछ क्षण के लिए तो भावना में डूब गईं, फिर अपने को सम्हाल उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि वह अपने पुत्र

स्वर्भानु को ब्रह्मऋषि नारद को सौंप देंगी। जो वंश के लिए उचित हो, वही आशीर्वाद नाना श्री ब्रह्मऋषि नारद जी उन्हें दें।

पति, पत्नी और पुत्रों में यह चर्चा हो ही रही थी कि तभी महारानी सिंहालिका को एक सेविका द्वारा सन्देश मिला कि ब्रह्मऋषि उद्यान से वापस आ गए हैं, और अतिथि गृह में विश्राम कर रहें हैं। समाचार सुन सम्राट विप्रचित्ति तुरंत अतिथि कक्ष की और दौड़े, और दंडवत कर दादा श्री ब्रह्मऋषि को प्रणाम किया। उनसे आशीर्वाद पा उनके चरणों में बैठ गए। तभी महारानी सिंहालिका, अह्लाद एवं स्वर्भानु भी वहीं ब्रह्मऋषि के समीप अतिथि गृह में पहुँच गए। अभिवादन के बाद सम्राज्ञी सिंहालिका ने राजकुमार स्वर्भानु को ब्रह्मऋषि के चरणों में डाल दिया, और करबद्ध नैनों में अश्रु लिए बोलीं, 'नाना श्री, आप हमारे कुल के अति हितैषी हैं। जैसा आपको उचित लगे, वही कीजिए। राजकुमार स्वर्भानु आपकी सेवा में समर्पित हैं।'

ब्रह्मऋषि ने तब अपने कर कमलों से राजकुमार स्वर्भानु को उठा अपनी गोद में ले लिया और अति मधुर वाणी में बोले, 'प्रिय सिंहालिका, विप्रचित्ति एवं राजकुमार अह्लाद, तुम्हारे इस निर्णय का एक दिवस सभी दैत्य एवं दानव वंश तुम्हारे प्रति आभार व्यक्त करेंगे। तुम्हारा पुत्र स्वर्भानु एक दिन अमरत्व पा उच्च ग्रहों की कतार में जब बैठेगा तो समस्त ब्रह्मांड उस पर गर्व करेगा। नेक कार्य में देरी क्यों? शीघ्र अति शीघ्र अब मुझे गुरु शुक्राचार्य के आश्रम में राजकुमार स्वर्भानु को लेकर पहुँचना चाहिए, अतः अपने इस पुत्र को विदा करो।'

सम्राट विप्रचित्ति ने एक अत्यंत सुन्दर रथ का प्रबंध किया जिसमें जुते अश्व वायु से भी अधिक तीव्र गति से दौड़ते थे। सम्राज्ञी सिंहालिका, सम्राट विप्रचित्ति एवं राजकुमार अह्लाद ने तब राजकुमार स्वर्भानु को ब्रह्मऋषि के हाथों सौंप उसे विदाई दी। तत्पश्चात ब्रह्मऋषि नारद जी ने स्वर्भानु के साथ गुरु शुक्राचार्य के आश्रम की ओर प्रस्थान किया।

गुरु शुक्राचार्य

ब्रह्मऋषि नारद ने योग शक्ति से जान लिया कि उस समय गुरु शुक्राचार्य अपनी तपोस्थली कोपरगाँव में निवास कर रहे हैं, अतः उन्होंने स्वर्भानु के साथ कोपरगाँव को प्रस्थान किया।

पांच वर्षीय स्वर्भानु तब ब्रह्मऋषि नारद से कर बद्ध विनम्र भाव से बोले, 'हे प्रभु, मैंने आचार्य शुक्रदेव के बारे में माता श्री एवं पिता श्री से कुछ कुछ तो अवश्य सुन रखा है और मैं यह भी जानता हूँ कि दैत्य एवं दानव वंशों की सुरक्षा का दायित्व लेकर इन्होंने इन दोनों ही कुलों का आचार्य पद ग्रहण किया है। मैं आपके मुखारविंद से इनके बारे में विस्तृत ज्ञान जानना चाहता हूँ।'

स्वर्भानु की प्रेम एवं विनम्र वाणी सुन ब्रह्मऋषि नारद ने उन्हें आचार्य शुक्रदेव के बारे में विस्तृत जानकारी देना प्रारम्भ किया।

पुत्र, आचार्य शुक्रदेव महर्षि भृगु के पुत्र हैं। महर्षि भृगु, मेरे भ्राता, ब्रह्मदेव के मानस पुत्र हैं। महर्षि भृगु तुम्हारे दादा श्री महर्षि कश्यप के ताऊ श्री हैं। संभवतः तुम जानते ही हो कि महर्षि कश्यप के पिता श्री महर्षि मारीचि एवं महर्षि भृगु, दोनों ही, ब्रह्मदेव के मानस पुत्र हैं। इस कारण आचार्य शुक्रदेव तुम्हारे दादा श्री हैं।

भगवान् शिव शंकर के अति प्रिय शिष्य महर्षि भृगु की तपस्या एवं ज्ञान से प्रभावित हो पिता ब्रह्मदेव ने इन्हें प्रजापति की उपाधि से विभूषित किया है। महर्षि भृगु की गणना सप्तऋषियों में होती है। इनकी पुत्री 'श्री' का विवाह भगवान् विष्णु के साथ हुआ है, अतः यह भगवान् विष्णु के श्वसुर भी हैं। इन्होंने अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'भृगु संहिता' की रचना की है।

पुत्र, महर्षि भृगु ने 'भृगु संहिता' की रचना स्वयं भगवान् विष्णु के आदेश पर की थी। एक बार देवताओं में भीषण विवाद प्रारम्भ हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव, इन तीनों में कौन श्रेष्ठ देव हैं। इस बात का निर्णय करना कोई सहज कार्य नहीं था। अंततः इन्द्रादि सभी देवतागण महर्षि भृगु के पास गए। उनकी समस्या सुन महर्षि भृगु बोले, 'हे इंद्र एवं समस्त देवताओं, इस विषय पर किसी भी प्रकार का मत उचित नहीं। यह

तीनों ही देव, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश, अति श्रेष्ठ की श्रेणी में आते हैं। यह तीनों एक ही हैं। कार्य विभाजन के कारण इन्हें तीन नामों से अवश्य सम्बोधित किया जाता है। जहां ब्रह्माण्ड उत्पत्ति ब्रह्मदेव का कार्य क्षेत्र हैं, वहीं उसका पालन विष्णु देव का और संहार महादेव का।'

उनके इस कथन पर इंद्रदेव और अन्य देवतागण संतुष्ट नहीं हुए। वह तो इसी हठ पर अड़े रहे कि महर्षि भृगु उन्हें सर्वश्रेष्ठ देव के बारे में ज्ञान दें।

देवताओं के हठ को देखते हुए तब महर्षि भृगु बोले, 'हे देवगणों, यदि आप सभी का यही हठ है तो मैं अवश्य इस विषय पर मनन करूंगा। यदि किसी निष्कर्ष पर पहुंच सका तो आपको इनमें से किसी एक की श्रेष्ठता का परिचय दूंगा।'

महर्षि भृगु ने एक युक्ति सोची। जिस देव ने क्रोध को जीत लिया हो, वही सर्वश्रेष्ठ देव है। उन्होंने संकल्प किया कि वह ऐसा कृत्य करेंगे जिससे इन देवों को क्रोध आए।

महर्षि भृगु सबसे पहले ब्रह्मलोक में ब्रह्मदेव के पास पहुंचे। पुत्र होते हुए भी उन्होंने अपने पिताश्री ब्रह्मदेव को न तो प्रणाम किया, और न ही उनकी स्तुति। यह देख ब्रह्मदेव महर्षि भृगु पर क्रोधित हो गए। उनका क्रोध इतना अधिक बढ़ गया कि मुख की आभा लाल हो गई। अग्नि की तरह ब्रह्मदेव का क्रोध अंगारों में बदल गया। श्राप देने का विचार हृदय में आया ही था कि फिर सोचा, भृगु हैं तो उनके पुत्र ही। इस प्रकार श्राप देना ठीक नहीं। किसी प्रकार विवेक बुद्धि से उन्होंने क्रोध को दबाने का प्रयास किया। ब्रह्मदेव के अंतर्मन की स्थिति तो महर्षि भृगु समझ ही गए थे। उन्होंने भ्रम का नाट्य-अभिनय किया, और फिर अपने पिता श्री ब्रह्मदेव की स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न हो ब्रह्मदेव का क्रोध शांत हो गया। उनका आशीर्वाद प्राप्त कर, वहां से वह भगवान शिव से मिलने कैलाश पर्वत जा पहुंचे। भगवान शिव ने जैसे ही महर्षि भृगु को आते देखा, वह प्रसन्न हो उठे और उनका आलिंगन करने के लिए अपनी भुजाएं खोलीं। परन्तु महर्षि भृगु ने उनका आलिंगन अस्वीकार कर दिया और कहने लगे, ‘हे महादेव आपने सदैव ही धर्म और वेदों की मर्यादा का उल्लंघन किया है। आप इन दुष्ट राक्षसों व असुरों को जो वरदान देते हैं उनके कारण सृष्टि को कई प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ता है। आपकी इन त्रुटियों के कारण मैं आपका आलिंगन कदापि स्वीकार नहीं करूँगा।‘

महर्षि भृगु के मुख से यह सब अपवचन सुन महादेव को क्रोध आ गया। उनका क्रोध इतना अधिक बढ़ गया कि वह त्रिशूल उठाकर महर्षि भृगु पर प्रहार करने ही वाले थे कि तुरंत बीच में देवी सती आ गईं। उन्होंने अनुनय विनय कर किसी प्रकार महादेव का क्रोध शांत किया। महादेव के क्रोध शांत होने पर महर्षि भृगु ने अपने अपराध की क्षमा माँगी और उनकी स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न महादेव का आशीर्वाद प्राप्त कर, तब उन्होंने भगवान् विष्णु के वैकुंठ धाम को प्रस्थान किया। जब महर्षि भृगु भगवान् विष्णु के वैकुंठ धाम पहुंचे तब भगवान विष्णु देवी श्री की गोद में सिर रखकर विश्राम कर रहे थे। महर्षि भृगु ने जाते ही भगवान विष्णु के वक्ष स्थल पर लात मारी। भगवान विष्णु तुरंत उठ खड़े हुए और बोले, 'हे महर्षि, कहीं आपके पैर को चोट तो नहीं लगी? मुझे आपके आने का ज्ञान नहीं था। मेरी इस धृष्टता को क्षमा करें। आइए, यहीं मेरे आसन पर ही विश्राम कीजिये। मैं आपके चरण के स्पर्श से धन्य हो गया।'

भगवान विष्णु का अपने प्रति इतना प्रेम देख महर्षि भृगु की आँखों में आंसू आ गए। उन्होंने प्रभु से क्षमा माँगी। उनकी स्तुति करने के पश्चात उनका आशीर्वाद प्राप्त किया, और तत्पश्चात देवलोक पहुंचे। सारी कथा विस्तार से इंद्रदेव एवं अन्य देवताओं को कह सुनाई। उनकी कहानी सुनकर सभी देवता आश्चर्यचकित हो गए। साथ ही सभी के संदेह भी दूर हो गए। इस घटना के बाद वह सभी इस निष्कर्ष पर पहुँच गए कि त्रिदेवों में भगवान विष्णु ही सर्वश्रेष्ठ हैं।

जिस समय महर्षि भृगु ने भगवान् विष्णु की छाती पर लात मारी थी तब एक घटना और घटी। महर्षि भृगु के पाद प्रहार को भगवान श्री विष्णु तो हंसते हुए झेल गए, परंतु माता श्री से अपने पति का यह अपमान सहन न हुआ। क्षुब्ध होकर माता श्री ने अपने ही पिता महर्षि भृगु को श्राप दे दिया, 'पिता श्री यद्यपि आप एक उच्च ब्राह्मण हैं, लेकिन मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आपने अभिमानवस मेरे निरपराध पूज्य पति का अपमान किया है। मैं श्राप देती हूँ कि भविष्य में सभी ब्राह्मण समृद्धि से वंचित रहेंगे, स्वयं आप भी।'

श्री के श्राप से क्षुब्ध व क्रुद्ध होकर महर्षि भृगु अपनी पुत्री श्री को श्राप देने ही वाले थे कि भगवान श्री हरि विष्णु ने हँसते हुए महर्षि भृगु से कहा, 'हे महर्षि, आप दुःखी और क्रुद्ध न हों। मैं आपको दिव्य दृष्टि देता हूं। आप एक संहिता ग्रंथ की रचना करें। मेरा वरदान है कि उसका फल कभी निष्फल नहीं होगा।'

भगवान् विष्णु के वरदान के फलस्वरूप महर्षि भृगु ने 'भृगु संहिता' की रचना की। उनके द्वारा रचित "भृगु संहिता' एक असाधारण ग्रंथ है। इसमें विचित्र शब्दावली का प्रयोग किया गया है। 'भृगु संहिता' त्रिकाल, अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनों का समान रूप से प्रामाणिक विवरण देती है। 'भृगु संहिता' महर्षि भृगु एवं उनके पुत्र शुक्राचार्य के बीच संपन्न हुए वार्तालाप के रूप में एक दुर्लभ ग्रंथ है। उसकी भाषा शैली स्वयं भगवान् की वाणी दर्शाती है।

महर्षि भृगु की दो पत्नियों थीं। उनकी प्रथम पत्नी तुम्हारी ममेरी बहन, तुम्हारे मामा हिरण्यकश्यपु की पुत्री दिव्या थीं। राजकुमारी दिव्या से उन्हें दो पुत्रों की प्राप्ति हुई, शुक्र एवं विश्वकर्मा। शुक्र गुरु आचार्य शुक्र हुए, एवं राजकुमारी दिव्या के दूसरे पुत्र विश्वकर्मा देवों के वास्तु निपुण प्रधान शिल्पकार हुए।

महर्षि भृगु की दूसरी पत्नी का नाम पौलमी था जो दानवों के अधिपति महर्षि पुलोमण की पुत्री थीं। ऋषिपुत्री पौलमी से भी महर्षि भृगु को दो महान पुत्रों की प्राप्ति हुई, च्यवन और ऋचीक। आगे चलकर महर्षि च्यवन आयुर्वेदिक औषधियों के महान अन्वेषक हुए। ऋचीक वेद, वेदान्तों के ज्ञाता अति श्रेष्ठ पूजनीय महर्षि ऋचीक बने। महर्षि ऋचीक का विवाह गाधि नरेश की पुत्री सत्यवती से हुआ। राजकुमारी सत्यवती से महर्षि ऋचीक को पुत्र के रूप में जमदाग्नि प्राप्त हुए, जिनके पुत्र भगवान परशुराम हुए।

महर्षि भृगु ने बाल शुक्र को अपने गुरु महर्षि अंगिरा के पास शिक्षा ग्रहण करने भेज दिया। मेरे भ्राता, ब्रह्मदेव के मानस पुत्रों में से एक ब्रह्मऋषि अंगिरा की गिनती उन महान ब्रह्मऋषियों में की जाती है जिन्होंने ब्रह्मदेव को वेदों की रचना में सहायता की है। महर्षि अंगिरा, महर्षि भृगु ही नहीं, महर्षि अत्रि समक्ष अन्य महान ऋषियों के भी गुरु हैं। महर्षि अंगिरा के पुत्र वृहस्पति हैं जो बाद में देवगणों के पुरोहित देवगुरू के रूप में जाने जाते हैं। बालक शुक्र बालक वृहस्पति से कहीं अधिक तीव्र बुद्धि के थे, लेकिन ब्रह्मऋषि अंगिरा ने पुत्र मोह में सदैव बालक शुक्र का तिरस्कार किया। अपने पुत्र वृहस्पति को ही श्रेष्ठ ज्ञानी बनाने का संकल्प लिया। इससे बालक शुक्र क्षुब्ध और निराश हो गए। लेकिन उन्होंने साहस नहीं त्यागा। एक दिन ब्रह्मऋषि अंगिरा का आश्रम छोड़ दिया। वन में जाकर महादेव के घोर तप में लग गए। उनकी तपस्या से प्रसन्न हो महादेव ने उन्हें दर्शन दिए और वर माँगने को कहा। शुक्र उनके चरणों में

पड़ गए और करबद्ध विनम्र प्रार्थना करने लगे, 'हे स्वामी, यदि आप मुझ से प्रसन्न हैं, तो मुझे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कीजिए। गुरु का दायित्व निभाइए और मुझे समस्त ब्रह्माण्ड का ज्ञान दीजिए।'

महादेव ने प्रसन्न हो कर कहा, 'तथास्तु', और शुक्र को अपना शिष्य बना लिया। महादेव ने तब उन्हें सभी शास्त्र, नृत्य, गायन, अस्त्र-शस्त्र इत्यादि विद्याएं दे उन्हें आचार्य के पद से विभूषित किया और आदेश दिया कि वह अब अपना स्वयं का आश्रम बनाएं।

महादेव का आशीर्वाद पा तब उन्होंने अपना आश्रम कोपरगाँव में बनाया। जब तुम्हारे मामा सम्राट हिरण्यकश्यपु को पता चला कि शुक्राचार्य महादेव को प्रसन्न कर वापस आ गए हैं, तो उन्होंने उनके पास जाकर उन्हें दैत्य वंश का गुरु भार सम्हालने की विनती की। शुक्राचार्य जानते थे कि हिरण्यकश्यपु हरि विष्णु के घोर विरोधी हैं। हरि विष्णु उनके गुरु महादेव के आराध्य हैं। अतः उस समय सम्राट हिरण्यकश्यपु के गुरुपद को तो उन्होंने विनम्रता से अस्वीकार कर दिया, परन्तु उनका यथा आवश्यक समय विचार विमर्श दाता बनना स्वीकार कर लिया।

उसी समय ब्रह्मदेव के पुत्र, मेरे भाई स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत नाम के एक पुत्र हुए। एक दिन प्रियवर्त मेरे समीप आए और मेरे शिष्य बनने का निवेदन करने लगे। उनके निवेदन पर एवं उनकी प्रतिभा से प्रभावित हो मैंने उन्हें अपना शिष्य बना लिया। मैंने उन्हें ईश्वरीय ज्ञान दिया। तब अखंड समाधि योग के द्वारा उन्होंने अपनी सारी इन्द्रियों और क्रियाओं को हरि विष्णु के चरणों में समर्पण कर दिया था। जब स्वायम्भुव मनु ने उन्हें पृथ्वी का राज्य देना चाहा तो उन्होंने यह विचारकर कि राज्याधिकार पाकर मेरा आत्म-स्वरूप स्त्री, पुत्रादि असत् प्रपंच से आच्छादित हो जायेगा, राज्य और कुटुंब की चिंता में फंसकर मैं परमार्थ तत्त्व को प्रायः मानस पटल से विस्मृत कर दूंगा, उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। स्वायम्भुव मनु तब अपने पिता ब्रह्मदेव के पास गए और बोले, 'हे पिता श्री, मैं आपकी आज्ञा से संसार का कार्य कर रहा हूं। लेकिन मेरा पुत्र प्रियव्रत मेरी बात नहीं मानता। उसने नारद को अपना गुरु बना लिया है और कहता है कि वह संन्यास लेकर भगवान का भजन ही करेगा।'

ब्रह्मदेव ने योग बल से प्रियव्रत की ऐसी प्रवृत्ति देखी तो वह मूर्तिमान चारों वेद, अपने मानस पुत्र मरीचि, आदि पार्षदों को साथ लिए प्रियव्रत के पास जा पहुंचे। उस समय मैं प्रियव्रत को आत्मविद्या का उपदेश दे रहा था।

पिता श्री ब्रह्मदेव का आगमन देखकर मैंने और प्रियव्रत, दोनों ने तुरंत करबद्ध उन्हें प्रणाम किया, और हमने उनकी अनेक प्रकार से पूजा की। सुमधुर वचनों में उनके गुण और अवतार की उत्कृष्टता का वर्णन किया। तब ब्रह्माजी ने प्रियव्रत की ओर मंद मुस्कान-युक्त दया दृष्टि से देखते हुए इस प्रकार कहा, 'हे पुत्र, मैं तुमसे सत्य सिद्धांत की यथार्थ बात कहता हूं। ध्यान देकर सुनो। तुम्हें अप्रमेय, आप्तकाम, पूर्णकाम श्री हरि के प्रति किसी प्रकार की दोष-दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। तुम्हीं क्या, मैं स्वयं, महादेव, तुम्हारे पिता स्वायम्भुव मनु और तुम्हारे गुरु ब्रह्मऋषि नारद, सभी उन्हीं की आज्ञा का पालन करते हैं। उनके विधान को कोई भी देहधारी न तो तप, विद्या, योगबल तथा बुद्धिबल से, न अर्थ या धर्म की शक्ति से और न स्वयं या किसी दूसरे की सहायता से ही टाल सकता है। उसी अव्यक्त, अविनाशी ईश्वर के दिए हुए शरीर को सब जीव जन्म, मरण, शोक, मोह, भय और सुख-दुःख का भोग करने तथा कर्म करने के लिए सदा धारण करते हैं। हमें उनकी इच्छा का उसी प्रकार अनुसरण करना चाहिए जैसे कोई अंधा पुरुष नेत्र वाले पुरुष का करता है। पुत्र, जो बुद्धिमान पुरुष इन्द्रियों को जीतकर अपनी आत्मा में ही रमण करता है, उसका गृहस्थाश्रम क्या बिगाड़ सकता है? जिसे इन इन्द्रिय रूपी शत्रुओं को जीतने की इच्छा हो, वह पहले घर में रहकर ही उनका अत्यंत निरोध करते हुए उन्हें वश में करने का प्रयत्न करे। तुम यद्यपि श्री कमलनाथ भगवान् के चरण कमल की काली रूप किले के आश्रित रहकर इन छः शत्रुओं को जीत चुके हो, तो भी पहले उन पुराण पुरुष के दिए हुए भोगों को भोगो। इसके बाद निसंग होकर अपने आत्म-रूप में स्थित हो जाना।'

जब ब्रह्मदेव ने यह वचन कहे तो मैंने और प्रियव्रत ने नम्रता से सिर झुका लिया। प्रियव्रत मेरी ओर देखने लगे। मैंने तब उन्हें पिता श्री ब्रह्मदेव का आदेश मानने की आज्ञा दी। तब प्रियव्रत ने 'जो आज्ञा प्रभु' ऐसा कहकर बड़े आदर पूर्वक उनका आदेश शिरोधार्य किया। तब स्वायम्भुव मनु ने प्रसन्न होकर उन्हें संपूर्ण भूमंडल की रक्षा का भार सौंप दिया।

अब सम्राट प्रियव्रत प्रभु की इच्छा से राज्य शासन करने लगे। यह उनके हृदय की विशालता की ही एक उत्कृष्ट प्रस्तुति है कि किस प्रकार भगवान् के चरण युगल का निरंतर ध्यान करते रहने से रागादि सभी मलों से निवृत्त हो चुके महाराज प्रियव्रत बड़ों का मान रखने हेतु सम्राट के पद पर सुशोभित हो गए। तदनंतर उन्होंने प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती से विवाह कर शीलवान, गुणी, कर्मनिष्ठ, रूपवान और पराक्रमी, आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि नाम के दस पुत्र तथा एक पुत्री ऊर्जस्वती को जन्म दिया।

जब ऊर्जस्वती युवा अवस्था को प्राप्त हुईं तो सम्राट प्रियवर्त ने उनके उपयुक्त वर की खोज प्रारम्भ की। उस समय के समस्त सम्राट, देव, दैत्य एवं दानव वंशों में कोई भी उन्हें अपनी ओजस्वी पुत्री ऊर्जस्वती के उपयुक्त वर नहीं लगा। तब वह अपने पिता श्री स्वायम्भुव मनु के समीप गए। सौभाग्य से ब्रह्मदेव एवं महादेव भी उस समय वहीं उपस्थित थे। सम्राट प्रियवर्त ने उन सभी महान विभूतियों को दंडवत प्रणाम किया तथा निवेदन किया कि वह अपनी पुत्री ऊर्जस्वती के लिए कोई उपयुक्त वर सुझाएँ। सम्राट प्रियवर्त को तब महादेव ने सुझाया, 'हे पुत्र प्रियव्रत, पृथ्वी लोक पर मेरा शिष्य शुक्र कोपरगाँव में आश्रम संचालित करता है। समय आने पर मेरे आशीर्वाद से वह नवग्रहों में अपना स्थान पाएगा। तुम्हें तुम्हारी पुत्री ऊर्जस्वती के लिए उससे उपयुक्त कोई वर नहीं मिलेगा। तुम उसके आश्रम जा मेरा यह सन्देश उसे दे दो कि वह तुम्हारी पुत्री ऊर्जस्वती के साथ पाणिग्रहण करे।'

ऐसा सुनकर एवं अपने पिता स्वायम्भुव मनु, दादाश्री ब्रह्मदेव एवं महादेव की इच्छा जान, सम्राट प्रियवर्त ऊर्जस्वती को लेकर शुक्राचार्य के आश्रम में पहुंचे। उन्होंने शुक्राचार्य को उनके गुरु महादेव का सन्देश सुनाया तथा ऊर्जस्वती को पत्नी रूप में ग्रहण करने की विनती की। गुरु का आदेश शुक्राचार्य कैसे टाल सकते थे। उन्होंने सम्राट प्रियवर्त के चरण पकड़ लिए और कहा, 'जैसी आप सब की इच्छा।'

इस प्रकार शुक्राचार्य का विवाह राजकुमारी ऊर्जस्वती से हो गया। समय आने पर उनके गृह में दो पुत्रों ने जन्म लिया, शंदा एवं त्वस्ताधार। आश्रम में तुम्हें गुरु माँ ऊर्जस्वती के साथ दो गुरु भाई, शंदा एवं त्वस्ताधार, से भी साक्षात्कार होगा।

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए ब्रह्मऋषि नारद एवं राजकुमार स्वर्भानु का रथ आचार्य शुक्रदेव के आश्रम के समीप पहुँच गया।

गुरु शुक्राचार्य आश्रम

प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में जब गुरु शुक्राचार्य जागे तो उन्हें दिव्य दृष्टि से तुरंत ज्ञान हो गया कि ब्रह्मऋषि नारद सिंहालिका के पुत्र स्वर्भानु के साथ उनके आश्रम में पधार रहे हैं, और संभवतः गोधूलि तक उनके आश्रम में पहुँच जाएंगे। उन्होंने तुरंत अपने सभी शिष्यों को आदेश दिया कि ब्रह्मऋषि के स्वागत की तैयारियां प्रारम्भ की जाएं।

गुरु शुक्राचार्य के आदेश पर पूरा आश्रम पुष्पों और दीप मालाओं से सजाया गया। आज गुरु शुक्राचार्य का कोपरगाँव आश्रम एक अति विशिष्ट अलौकिक स्थान जैसा दृष्टिगोचर हो रहा था। गोधूलि बेला में जब आश्रम और माँ गोदावरी घाट पर सैकड़ों की संख्या में दीपों की लड़ी जली तो ऐसा लग रहा था कि अप्सराओं की टोली पृथ्वी पर आ गयी हो। यह अलौकिक एवं अद्भुत मनोहर छटा देखते ही बनती थी। जैसे ही शिष्यों को समाचार मिला कि ब्रह्मऋषि नारद जी का रथ अब कुछ दूरी पर ही है, तो उनके माँ गोदावरी घाट पर गूंजते वेद मंत्रों, स्तुतियों के बीच गोदावरी आरती, शंख और घंटों की ध्वनि के बीच गीतों से पूरा वातावरण दैवीय हो गया। एक साथ जलते असंख्य दीपों की छटा से तो ऐसा लग रहा था जैसे दीपों की गंगा बह रही हो। इस अलौकिक प्रकाशोत्सव के बीच समझना कठिन हो रहा था कि दीप माला लिए मां गोदावरी विशेष अतिथिगणों का स्वागत अभिनंदन कर रहीं हैं, अथवा दीप मालाओं के साथ त्रिपुरारि शंकर और गोदावरी का आभार व्यक्त करने के लिए अप्सराएं लालायित हो उठी हैं।

आश्रम के समीप पहुंचते ही शिष्टाचारवश ब्रह्मऋषि नारद ने अभिनंदन सहित एक पत्री रथ कोचवान के हाथ शुक्राचार्य के पास भेजी, और आश्रम में प्रवेश करने की अनुमति माँगी। कोचवान ने आश्रम पहुँच गुरुदेव शुक्राचार्य को साष्टांग प्रणाम किया और पत्री उनको सौंपी। पत्री पा स्वयं गुरु शुक्राचार्य जी कोचवान के साथ जिस हाल में बैठे थे, उसी दशा में ही अपने इष्ट ब्रह्मऋषि नारद से मिलने दौड़ कर जाने लगे। तब कोचवान के निवेदन पर कि आचार्य को पैदल जाने में कष्ट होगा, वह यहीं प्रतीक्षा करें, शीघ्र ही ब्रह्मऋषि उनके दर्शन करेंगे, तब आचार्य शुक्रदेव आश्रम के द्वार पर ही रुक गए।

ब्रह्मऋषि नारद एवं स्वर्भानु आश्रम के द्वार से कुछ पहले ही रथ से उतरकर पैदल आचार्य शुक्रदेव से मिलने दौड़े। यह मिलन दृश्य देखने योग्य था। आचार्य ने पुष्पमाला पहना कर एवं वेद मन्त्रों से स्तुति कर ब्रह्मऋषि का अभिनन्दन किया और उनके चरण स्पर्श किए। तब ब्रह्मऋषि ने उन्हें हृदय से लगा लिया। स्वर्भानु का परिचय गुरु आचार्य शुक्रदेव जी से कराया। स्वर्भानु तुरंत साष्टांग प्रणाम कर गुरु शुक्राचार्य के पैरों से लिपट गए। गदगद हो तब आचार्य ने उन्हें गोदी में उठा लिया। तभी आचार्य पत्नी ऊर्जस्वती भी वहीं दौड़ी चली आईं, और ब्रह्मऋषि के पैरों पड़ उनसे आशीर्वाद माँगा। ब्रह्मऋषि ने उन्हें हृदय से लगा लिया, सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया, और स्वर्भानु का परिचय उनसे कराया । स्वर्भानु ने माता समान गुरु माँ ऊर्जस्वती के पैरों पड़ उनका अभिवादन किया। सभी के नेत्रों में इस दृश्य को देखकर जल आ गया। आंसू बहने लगे। पुत्र समान समझ गुरु माँ ऊर्जस्वती ने स्वर्भानु को गले से लगा लिया। तब गुरु माँ ऊर्जस्वती ने ब्रह्मऋषि से आश्रम के विशेष अतिथिगृह में पदार्पण करने का आग्रह किया। गुरु माँ ऊर्जस्वती के आग्रह पर ब्रह्मऋषि एवं स्वर्भानु ने आश्रम की विशेष अतिथिशाला कक्ष में प्रवेश किया। उनके निवास की उचित व्यवस्था कर आचार्य शुक्रदेव ने तब उन्हें विश्राम करने का निवेदन किया। तब गुरु माँ ऊर्जस्वती करबद्ध ब्रह्मऋषि से बोलीं, 'हे प्रभु, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं पुत्र स्वर्भानु को अपने साथ अपनी कुटिया में ले जाऊं।'

गुरु माँ के निवेदन पर हंस कर ब्रह्मऋषि बोले, 'ऊर्जस्वती, मैं इसे तेरे पास छोड़ने ही तो आया हूँ। क्यों नहीं? शंदा एवं त्वस्ताधार को भी अपना एक छोटा भाई स्वरुप स्वर्भानु मिल जाएगा। अवश्य ही तुम अपने वात्सल्य से इसका जीवन चरितार्थ कर दो।'

गुरु माँ ऊर्जस्वती तब स्वर्भानु को अपने साथ लेकर अपनी कुटिया आ गईं। इतने में ही गुरु माँ के दोनों पुत्र शंदा एवं त्वस्ताधार भी संध्या वंदन कर कुटिया में लौटे। शंदा एवं त्वस्ताधार को सायं ही गुरु भाइयों से यह समाचार प्राप्त हो चुका था कि ब्रह्मऋषि नारद जी किसी दानव राजकुमार को लेकर आश्रम पधारे हैं। कुटिया में जब उन्होंने एक अपरिचित ५ वर्ष के शिशु को माँ के समीप देखा तो अनुमान लगा लिया कि यही वह दानव राजकुमार होगा। प्रेम से उस के पास पहुँच शंदा ने उसे गोदी में उठा लिया और पूछने लगे, 'हे प्रिय राजकुमार, क्या नाम है तुम्हारा?'

इससे पहले कि स्वर्भानु कुछ बोलता, स्वयं माँ ने उसका परिचय अपने दोनों पुत्रों से कराया। वह बोलीं, 'पुत्र, यह बालक पाताल लोक नरेश विप्रचित्ति एवं सम्राज्ञी सिंहालिका के पुत्र स्वर्भानु हैं। ब्रह्मऋषि नारद इन्हें गुरुकुल में तुम्हारे पिता के अंतर्गत शिक्षा प्राप्त कराने हेतु यहां लेकर आए हैं। इन्हें अपना छोटे भाई समझ इनके ज्ञान वृद्धि में जो भी मदद कर सकते हो, अवश्य करो। मैं इन्हें तुम्हें सौंपती हूँ।'

माँ के प्रिय वचन सुन शंदा एवं त्वस्ताधार ने उस ५ वर्ष के बालक स्वर्भानु को गले से चिपटा लिया और बोले, 'अवश्य माँ, हम स्वर्भानु की हर प्रकार से रक्षा करेंगे एवं इनके ज्ञान वृद्धि में मदद करेंगे।'

इधर अतिथि गृह में ब्रह्मऋषि ने तब गोदावरी नदी तट की ओर स्नान हेतु प्रस्थान किया। स्नान ध्यान कर ब्रह्मऋषि नारद जी ने आचार्य शुक्रदेव और उनके परिवार के साथ भोजन किया। पूरे ब्रह्माण्ड के समाचारों से उन्हें अवगत कराया, और फिर 'नारायण, नारायण' का जाप करते हुए अतिथिशाला में विश्राम हेतु चले गए।

प्रातः जागते ही, दैनिक नित्य क्रियाओं से निपट, पवित्र माँ गोदावरी में स्नान कर, स्वर्भानु गुरु माँ ऊर्जस्वती एवं अपने गुरु भाई शंदा एवं त्वस्ताधार के पास लौट आए। गुरु भाई शंदा एवं त्वस्ताधार से आश्रम भ्रमण करने की एवं अन्य शिष्यों एवं शिष्याओं से मिलने की अनुमति माँगी। तब गुरु भाई शंदा एवं त्वस्ताधार स्वर्भानु को आश्रम के परिसर में ले गए।

बालक स्वर्भानु ने जब आचार्य शुक्रदेव के पावन आश्रम के परिसर में कदम रखा तो वहां की सुंदरता देख स्तब्ध हो गए। एक ५ वर्षीय बालक को भी यह सुंदरता इतनी भाई कि वह अपना अस्तित्व ही भूल गया। आश्रम में स्थित पुष्पों की घाटियां यहां की सुंदरता बढ़ा रहीं थीं। स्थान स्थान पर मन्त्रों का उच्चारण, अग्नि देव को अर्पित हवन की सुगंध, चिड़ियों का चहचहाना, हर ओर हरियाली एवं माँ गोदावरी का निर्मल बहता हुआ कल कल करता जल, इन सभी प्राकृतिक सुंदरता ने स्वर्भानु का हृदय जीत लिया। वह कुछ क्षण के लिए अपने माता पिता और अपनी राजधानी को भी भूल गए। तब गुरु भाई शंदा एवं त्वस्ताधार ने उन्हें अन्य आश्रम के शिष्य एवं शिष्याओं से भी उनका परिचय कराया। स्वर्भानु की सुंदरता, भोलापन एवं मुख कांति प्रतिभा ने सब का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। आश्रम घूमकर और सबसे

परिचय प्राप्त कर स्वर्भानु और गुरु भाई शंदा एवं त्वस्ताधार तब अतिथि गृह की ओर चल दिए जहां ब्रह्मऋषि आतिथ्य स्वीकार कर रहे थे।

इधर प्रातः नित्य कर्म से निवृत हो, स्नान ध्यान कर, आचार्य शुक्रदेव भी ब्रह्मऋषि नारद के समीप अतिथि गृह में पहुंचे। ब्रह्मऋषि का अभिवादन कर वह उनके निकट ही बैठ गए। उनके श्रीमुख से स्वर्भानु के भविष्य के बारे में योजना सुनने के लिए वह अति आतुर थे। अन्तर्यामी ब्रह्मऋषि उनकी मनोस्तिथि जान उनसे अति प्रिय वाणी में बोले, 'हे आचार्य, सिंहालिका के निमंत्रण पर मैं उसके महल गया था। वहां विप्रचित्ति एवं सिंहालिका ने स्वर्भानु को मेरे चरणों में डाल दिया। मैं इसका भविष्य देख स्वयं चकित हो गया। ऐसी प्रभु की क्या लीला है कि वह इस पुत्र को अमरत्व प्रदान कराना चाहते हैं। लेकिन इस के लिए इसे निर्देशन एवं ज्ञान की आवश्यकता है। आप दैत्य एवं दानव वंशों के मार्ग दर्शिता ही नहीं, इस ब्रह्माण्ड में सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं। यदि महर्षि अंगिरा अपने पुत्र वृहस्पति के पुत्र मोह में आप से पक्षपात नहीं करते तो आप सभी, देव, दैत्य एवं दानवों के पथ प्रदर्शक हुए होते। मेरा आपसे अनुरोध है कि इस बच्चे को अपना शिष्य स्वीकार कर इसे ज्ञान दें, एवं प्रोत्साहित करें कि यह महादेव का अति घोर तप कर उनसे अमरत्व प्राप्त करने का साधन वरदान में पूछे।'

ब्रह्मऋषि के वचन सुन आचार्य शुक्र बस इतना ही बोले, 'हे पूजनीय ब्रह्मऋषि, आपके एक एक शब्द का पालन होगा। मैं अवश्य ही इस बालक को अपना शिष्य स्वीकार कर इसे सर्वश्रेष्ठ ज्ञान दूंगा, एवं अपने गुरु महादेव की आराधना के लिए प्रोत्साहित ही नहीं, उनको प्रसन्न करने के सभी मार्ग इसे बतलाऊँगा। यह मेरा भी सौभाग्य होगा कि मेरा शिष्य अमरत्व को प्राप्त करे।'

यह वार्ता चल ही रही थी कि इतने में बालक स्वर्भानु के साथ शंदा एवं त्वस्ताधार ने अतिथि गृह में प्रवेश किया।

अतिथि गृह में प्रवेश करते ही शंदा, त्वस्ताधार एवं स्वर्भानु ने पहले ब्रह्मऋषि, तत्पश्चात आचार्य शुक्र के चरण स्पर्श कर अभिवादन किया और फिर उनकी आज्ञा ले सम्मुख बैठ गए।

ब्रह्मऋषि ने शंदा एवं त्वस्ताधार को अपने पास आने का संकेत किया। समीप पहुँच उनके सर पर कर रख उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर स्वर्भानु को सम्बोधित कर मधुर वचन बोले, 'प्रिय स्वर्भानु, आज से आचार्य शुक्र तुम्हारे पिता एवं गुरु, गुरु माँ ऊर्जस्वती तुम्हारी माँ, शंदा एवं त्वस्ताधार ही तुम्हारे भाई हैं। इनका आदर, सम्मान और इनके हर वचन का पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है। गुरु द्वारा दी सभी शिक्षा अति शीघ्र ग्रहण करो, और दानव वंश के पंडित रूप में अपना नाम उज्ज्वल करो। तुम्हारी शिक्षा पूर्ण होने पर तुम्हारे पूजनीय गुरु जो भी तुम्हें आगे मार्ग प्रदर्शित करें, उसका पालन कर अपना जीवन चरितार्थ बनाओ। मेरी अभिलाषा है कि आचार्य के निर्देश में तुम महादेव को प्रसन्न कर उनसे अमरत्व प्राप्त करने का मार्ग ढूंढो। मेरे प्रस्थान का समय हो गया है। नारायण तुम्हारी हर इच्छा पूर्ण करें।'

इतना कह कर उन्होंने अपना वरद हस्त स्वर्भानु के सर पर रखा, और इससे पहले कि स्वर्भानु, आचार्य अथवा ऊर्जस्वती कुछ कह पाते, वह वीणा बजाते हुए एवं 'नारायण, नारायण' का जाप करते हुए वहां से उठ कर चल दिए।

आचार्य पद

अगले दिन प्रातः ही आचार्य शुक्रदेव ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि वह स्वर्भानु की शुद्धीकरण प्रक्रिया प्रारम्भ करें। स्वयं उन्होंने इसका नेतृत्व किया। स्वर्भानु को गोदावरी नदी में स्नान करा मंत्रोचारण के साथ उनकी शुद्धीकरण प्रक्रिया प्रारम्भ की गई ।

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेअस्मिन्सन्मिधिं कुरु ।।

इसके पश्चात यज्ञ वेदी पर मंत्रोचारण से अग्निदेव को आवाहन कर उनको यज्ञ हवि समर्पित कर स्वर्भानु की शुद्धि प्रक्रिया समाप्त हुई।

ॐ अपवित्र: पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोअपि वा ।
य: स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्यभ्यंतर शुचि: ।।
यानि कानि पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि तानि प्रणश्चन्ति प्रदक्षिणा पदे-पदे ।।
मंत्र हीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ।।

शुद्धिकरण प्रक्रिया की समाप्ति पर उन्हें आचार्य ने अपना शिष्य स्वीकार किया। तत्पश्चात ब्रह्मचर्य आश्रम एवं गुरुकुल के नियम पालन करने का शपथ ग्रहण समारोह हुआ।

स्वर्भानु अत्यंत प्रचंड बुद्धि एवं प्रखर स्मरण शक्ति के बालक थे। गुरु के मुख से श्लोक निकल ही पाता था कि उन्हें तुरंत स्मरण हो जाता था। उनकी प्रखर बुद्धि से आचार्य शुक्रदेव अति प्रभावित हुए। उनकी शिक्षा अन्य शिष्यों की तुलना में बढ़ा दी गई। शीघ्र ही वह समस्त वेद, वेदान्तों, उपनिषदों, इत्यादि ग्रंथों के ज्ञाता हो गए।

स्वर्भानु को गुरु शुक्राचार्य आश्रम आए कुछ ही समय हुआ होगा कि आचार्य शुक्रदेव के दोनों पुत्रों, शंदा एवं त्वस्ताधार, ने सम्राट हिरण्यकश्यपु के पुरोहित पद को

स्वीकार कर लिया। या यह कहना अधिक उचित होगा कि उनको ऐसा करने का आदेश सम्राट हिरण्यकश्यपु ने दिया, और सम्राट हिरण्यकश्यपु के आदेश की अवहेलना करना मृत्यु दंड को आमंत्रित करना था। अतः वह सम्राट हिरण्यकश्यपु की राजधानी प्रस्थान कर चुके थे। उनकी माता श्री गुरु माँ ऊर्जस्वती भी अपने पुत्रों की देखभाल के लिए उनके साथ ही सम्राट हिरण्यकश्यपु की राजधानी चली गईं थीं। आचार्य शुक्रदेव तब एक दम अकेले पड़ गए। ऐसे में स्वर्भानु ही उनके एक मात्र सहारा बने।

स्वर्भानु को ऐसा समाचार मिला कि उनका ममेरा भाई सम्राट हिरण्यकश्यपु का पुत्र प्रह्लाद पितृद्रोही हो गया है। सम्राट हिरण्यकश्यपु के भाई हिरण्याक्ष का हरि विष्णु ने वराह अवतार लेकर वध कर दिया है। तभी से सम्राट हिरण्यकश्यपु हरि विष्णु के शत्रु हो गए हैं। हरि विष्णु से क्रोधित दैत्य सम्राट हिरण्यकश्यपु ने तीनों भुवनों में अपने आपको 'भगवान्' घोषित कर दिया है। समस्त भुवनों में हरि विष्णु की स्तुति पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। उनके ममेरे भाई प्रह्लाद ने उनका यह आदेश मानने से मना कर दिया है। वह निरन्तर हरि विष्णु की ही स्तुति करते रहते हैं। अपने ही पुत्र की इस अवज्ञा से सम्राट हिरण्यकश्यपु अत्यंत क्रोधित हैं और उन्होंने प्रह्लाद को मृत्यु दंड दिया है। उन्हें मृत्यु दंड देने की कई विधियों को प्रयोग में लाया गया है। उन्हें विष दिया गया, ऊंचे पर्वत से धकेल दिया गया, विषैले सर्पों के समूह में डाल दिया गया, पत्थर बाँध कर समुद्र में डाल दिया गया, इत्यादि, इत्यादि, परन्तु हर बार हरि विष्णु ने उनकी रक्षा की और उन्हें जीवित रखा।

एक दिन स्वर्भानु को एक अति दुःखद समाचार मिला। उनकी माता सम्राज्ञी सिंहालिका को सम्राट हिरण्यकश्यपु ने आदेश दिया कि वह प्रह्लाद को लेकर अग्नि में बैठ जाएं जिससे प्रह्लाद अग्नि में जल जाएं और सम्राज्ञी सिंहालिका का कोई बाल बांका न हो। स्वर्भानु जानते थे कि उनकी माता श्री सम्राज्ञी सिंहालिका को उनके गुरुदेव अग्निदेव ने एक वस्त्र वरदान स्वरुप दे रखा था जिससे अग्नि उन्हें हानि नहीं पहुंचा सकती थी। फिर ऐसा क्या हुआ कि माता श्री सिंहालिका अग्नि में भस्म हो गईं, परन्तु उनके ममेरे भाई प्रह्लाद को अग्नि कोई हानि नहीं पहुंचा पाई? वह माँ सिंहालिका को स्मरण कर उस दिन अधिक रोए थे। उन्हें अग्निदेव पर बड़ा क्रोध आ रहा था कि उन्होंने अपना वचन भंग क्यों किया? तभी आचार्य शुक्रदेव ने उन्हें अपनी गोदी में बिठा लिया। उनके बाल सहलाते हुए उन्होंने बतलाया कि स्वयं अग्नि में भस्म

होने और प्रह्लाद को बचाने का निर्णय तुम्हारी माता श्री सिंहालिका का ही था। गुरुदेव शुक्राचार्य को तो दिव्य दृष्टि है। वह भूत, वर्तमान एवं भविष्य के ज्ञाता हैं। उनकी बात पर विश्वास न करने का प्रश्न ही नहीं उठता। गुरुदेव शुक्राचार्य ने बताया कि तुम्हारी माता को प्रह्लाद में उनके भाई एवं अपने दत्तक पुत्र अह्लाद की छवि दिखाई दी। उन्होंने वह गुरुदेव अग्निदेव द्वारा वर्दित वस्त्र प्रह्लाद को पहना दिया, और स्वयं अग्नि में जल कर भस्मित हो गईं।

यह सुनकर आचार्य स्वर्भानु के नेत्रों से जल की धारा बह निकली। वह रुंधे विस्मित स्वर में गुरुदेव शुक्राचार्य से बोले, 'क्या? मेरी माँ ने अपने प्राण भाई प्रह्लाद को बचाने में गंवा दिए? माँ, तुझे शत शत नमन। तेरे विशाल हृदय ने मेरे भाई प्रह्लाद को बचाकर समस्त दानव वंश का नाम उज्ज्वलित कर दिया।'

कुछ समय बाद स्वर्भानु को एक और समाचार मिला। हरि विष्णु से प्रह्लाद का दुःख अंततः देखा नहीं गया और एक दिन उन्होंने नरसिंह अवतार ले कर सम्राट हिरण्यकश्यपु को अपने धाम पहुंचा दिया। जब स्वर्भानु को यह समाचार मिला तो उन्होंने गुरुदेव शुक्राचार्य से एक प्रश्न पूछा, ' गुरुदेव, मैंने तो सुना है कि सम्राट हिरण्यकश्यपु ने तो ब्रह्मदेव से अमरत्व का वरदान प्राप्त कर रखा था, फिर हरि विष्णु ने उनका वध किस प्रकार किया?'

तब गुरुदेव शुक्राचार्य बोले, 'पुत्र, सम्राट हिरण्यकश्यपु ने अपनी समझ में ब्रह्मदेव से अमरत्व का वरदान प्राप्त कर लिया था, परन्तु वह पूर्णतः अमरत्व का वरदान नहीं था। जब ब्रह्मदेव ने उसे अमरत्व का वरदान देने में असमर्थता दिखाई तो उसने वरदान माँगा था कि वह न दिन में मरे न रात में, न प्रातः मरे न सायं, न आकाश में मरे न धरती पर, न किसी अस्त्र से मरे न शस्त्र से, न नर से मरे न पशु-पक्षी से, न देव से मरे न दानव से। यह वरदान ब्रह्मदेव ने उसे दे दिया। जब सम्राट हिरण्यकश्यपु प्रह्लाद पर अत्यंत क्रोधित हुआ और प्रह्लाद का वध करने हेतु अपनी तलवार उठा ली और क्रोध में बोला, 'हे दुष्ट बालक, बुला अब अपने हरि विष्णु को। वह कहाँ छिपा है? आज मैं तेरे साथ उसका भी वध कर दूंगा।' तब प्रह्लाद ने कहा, 'हे पिताश्री, हरि विष्णु तो कण कण में व्याप्त हैं। वह अन्तर्यामी एवं सर्व-व्यापक हैं।'

इस पर सम्राट हिरण्यकश्यपु महल के एक खम्भे की ओर इंगित कर बोला, ‘तो क्या तेरा हरि विष्णु इस खम्भे में भी है?’ प्रह्लाद ने तब कहा, ‘अवश्य पिता श्री।‘ तत्पश्चात सम्राट हिरण्यकश्यपु ने खम्भे पर तलवार से वार किया। जैसे ही खम्भा फटा, वहां हरि विष्णु नरसिंह रूप में अवतरित हो गए। उनका यह रूप देख सम्राट हिरण्यकश्यपु कांप उठा। यह हरि नारायण का नरसिंह रूप न तो पूर्ण पशु था, न पूर्ण मनुष्य। उन्होंने सम्राट हिरण्यकश्यपु का वध अस्त्रों या शस्त्रों से नहीं बल्कि अपनी गोद में बिठाकर अपने नाखूनों से उसकी छाती चीर कर किया था। उस समय न प्रातः थी, और न रात्रि। इस प्रकार ब्रह्मदेव के वचनों का भी पूर्ण सम्मान किया और उसका वध भी कर दिया। इसके पश्चात उन्होंने प्रह्लाद का राज्याभिषेक कर दिया।‘

हरि विष्णु के प्रति आचार्य स्वर्भानु को भी अत्यंत प्रेम और आदर था, अतः गुरुदेव के मुख से यह सुनकर वह हरि विष्णु की जय जयकार करने लगे। स्वर्भानु के गुरु शुक्राचार्य महादेव के भक्त थे और वह जानते थे कि महादेव हरि विष्णु के भक्त हैं, अतः उनके हृदय में भी हरि विष्णु के प्रति अति सम्मान था।

स्वर्भानु को गुरु के आश्रम में अब दस वर्ष बीत चुके थे। केवल १५ वर्ष की आयु में आचार्य ने स्वर्भानु को गुरुकुल का उपकुलपति नियुक्त कर दिया और अपना सहायक बना लिया।

आचार्य शुक्रदेव ने उन्हें आचार्य की उपाधि से विभूषित किया। अब वह आचार्य स्वर्भानु नाम से सम्बोधित किए जाने लगे।

विवाह

आचार्य स्वर्भानु को गुरु के आश्रम में अब कुछ वर्ष और बीत चुके थे। अब आचार्य स्वर्भानु वयस्क हो चुके थे। उनकी व्यस्तता दिन प्रति दिन बढ़ती ही जाती थी। आचार्य शुक्रदेव ने अपने इस सहायक पर पूर्ण विश्वास कर एक प्रकार से आश्रम का पूर्ण भार उन्हें ही दे दिया था।

अब गुरुदेव शुक्राचार्य की बस एक ही चिंता थी, आचार्य स्वर्भानु का घर बसाना। उन्होंने अपनी दृष्टि चारों ओर दौड़ाई और आचार्य स्वर्भानु के लिए एक सुयोग्य कन्या की खोज प्रारम्भ की। उन्हें आचार्य स्वर्भानु के लिए ऋषि नामोच की सुपुत्री सुप्रतिनामोची उपयुक्त लगी। ऋषि नामोच गुरुदेव शुक्राचार्य के ही शिष्य थे, अतः उनकी अनुमति लेने में कोई आशंका नहीं थी। आचार्य स्वर्भानु को इस विवाह के लिए तत्पर करना उनके लिए एक चुनौती थी। वह जानते थे कि यदि वह आचार्य स्वर्भानु को ऋषिकुमारी सुप्रतिनामोची से विवाह की आज्ञा देंगे, तो वह उनकी आज्ञा कभी नहीं टालेंगे। लेकिन गुरुदेव यह विवाह आज्ञा से नहीं, प्रेम के वशीभूत करवाना चाहते थे। अंततः एक दिन उन्हें इसका अवसर मिल ही गया।

ऋषि नामोच ने एक वृहद यज्ञ के आयोजन की योजना बनाई। वह स्वयं गुरुदेव शुक्राचार्य से इस यज्ञ के आयोजन की आज्ञा लेने एवं उन्हें यज्ञ का मुख्य आचार्यपद स्वीकार करने की प्रार्थना ले कर गुरुदेव शुक्राचार्य के आश्रम पधारे। गुरुदेव शुक्राचार्य ने उनका भव्य स्वागत किया, और उनका परिचय अपने शिष्य आचार्य स्वर्भानु से कराया। आचार्य स्वर्भानु के मुख की आभा एवं उनके व्यक्तित्व से ऋषि नामोच अत्यंत प्रभावित हुए। यथा समय गुरुदेव शुक्राचार्य ने ऋषि नामोच को इस वृहद यज्ञ के मुख्य आचार्यपद के लिए आचार्य स्वर्भानु का नाम सुझाया। साथ में यह भी बताया कि अब इस आश्रम के उपकुलपति वही हैं।

ऋषि नामोच तो आचार्य स्वर्भानु के व्यक्तित्व, ज्ञान, नम्रता से पहले ही अति प्रभावित हो चुके थे। उन्होंने उसी क्षण गुरुदेव शुक्राचार्य के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इसी बीच आचार्य गुरुदेव शुक्राचार्य ने अवसर देख ऋषि नामोच से उनकी पुत्री सुप्रतिनामोच का विवाह आचार्य स्वर्भानु के साथ कराने का भी प्रस्ताव रखा। ऋषि नामोच ने तो इसे अपना सौभाग्य समझा। ऋषि नामोच को अपनी पुत्री सुप्रतिनामोच

के लिए इससे अच्छा वर कोई प्राप्त हो ही नहीं सकता था। आचार्य शुक्राचार्य ने यह भी ऋषि नामोच को बता दिया कि वह यह विवाह आचार्य स्वर्भानु पर थोपना नहीं चाहते, बल्कि उनके प्रेम के वशीभूत ही करना चाहते हैं। अतः उन्होंने सुझाव दिया कि जब आचार्य स्वर्भानु उनके आश्रम में यज्ञ के मुख्य आचार्य के रूप में पधारें, तब उनके आतिथ्य का भार वह अपनी पुत्री सुप्रतिनामोच को ही दें। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि पुत्री सुप्रतिनामोच आचार्य स्वर्भानु का हृदय जीत लेगी, तब स्वयं आचार्य स्वर्भानु इस विवाह के लिए तैयार हो जाएंगे।

महायज्ञ के लिए निर्धारित तिथि का समय आ गया। गुरुदेव शुक्राचार्य के आदेश पर आचार्य स्वर्भानु के यज्ञ स्थली पर जाने के लिए एक सुन्दर रथ की व्यवस्था कर दी गई। निर्धारित समय पर आचार्य स्वर्भानु यज्ञ स्थली पहुंचे। स्वयं ऋषि नामोच ने उनका भव्य स्वागत किया। उनकी पुत्री सुप्रतिनामोच भी इस स्वागत समारोह में उपस्थित थीं। ऋषि नामोच ने अपनी पुत्री सुप्रतिनामोच का परिचय आचार्य स्वर्भानु से कराया। पुत्री सुप्रतिनामोच से आग्रह किया कि वह आचार्य के आतिथ्य का भार स्वयं ही सम्हालें। ऋषि पुत्री सुप्रतिनामोच तो आचार्य स्वर्भानु को देखते ही रह गईं। उनके व्यक्तित्व की प्रतिभा एवं सुंदरता पर वह पूर्णतः मोहित हो गईं। हृदय में माँ गौरी से प्रार्थना करने लगीं कि हे माँ, यदि मुझे वर देना है तो आचार्य स्वर्भानु को ही मेरा पति बनाएं।

ऋषि नामोच पुत्री सुप्रतिनामोच ने आचार्य स्वर्भानु की अति सेवा की। यज्ञ के मुख्य पुरोहित होने के कारण वह यज्ञ संचालन में अति व्यस्त रहने लगे। उन्हें खाने पीने का भी ध्यान नहीं रहता था। सुप्रतिनामोच उन्हें समय पर हठ से भोजन करातीं, उनके यज्ञ संचालन में उनकी मदद करतीं एवं अग्नि ऊष्णा कम करने को स्वयं अपने हाथों से पंखा झल उन्हें शीतलता प्रदान करतीं। आचार्य स्वर्भानु उनकी सेवा से अति प्रसन्न हो गए। सफलता पूर्वक यज्ञ समापन पर अब उनके अपने आश्रम जाने का समय आ गया। तब वह स्वयं सुप्रतिनामोच के पास पहुँच बोले, 'हे सुंदरी, तुमने मेरी बड़ी सेवा की है। मेरे सामर्थ्य के अनुसार तुम मुझ से जो भी वर मांगोगी, मैं तुम्हें अवश्य दूंगा। निःसंकोच मांगो।'

तब शर्माते हुए सुप्रतिनामोच अपने अंदर के भाव कि आचार्य उन्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करें, को दबाते हुए बोलीं, 'हे श्रेष्ठ आचार्य, यदि आप मुझ से प्रसन्न हैं तो मुझे वह मन्त्र दीक्षा दीजिए जिससे मुझे मेरे मनभावन पति मिले।'

आचार्य स्वर्भानु मुसकुराकर बोले, 'हे ऋषि पुत्री, मेरी आराध्य माँ गौरी के पूजन से तुम्हें तुम्हारे मनभावन पति की प्राप्ति होगी। माँ गौरी को प्रसन्न करने के लिए मैं तुम्हें एक मन्त्र देता हूँ। माँ गौरी एवं महादेव के समक्ष इस मन्त्र का नियमित रूप से जाप करो। मेरा शुभ आशीष तुम्हारे साथ है। अवश्य ही समय आने पर तुम्हें तुम्हारे मनभावन पति की प्राप्ति होगी।' ऐसा कहते हुए आचार्य स्वर्भानु ने सुप्रतिनामोच के कर्ण में एक मन्त्र का उच्चारण कर दिया।

ऊँ ह्रीं गौर्ये नम:।
हे गौरी शंकर अर्धागिंनी यथा त्वं शंकर प्रिया।
तथा माम कुरू कल्याणी कान्त कान्ता सुदुर्लभम् ।।

आचार्य स्वर्भानु तो अपने आश्रम चले गए परन्तु सुप्रतिनामोच उनको अपने हृदय में पति स्वरुप धारण कर नियमित माँ गौरी की यथाविधि स्तुति आचार्य स्वर्भानु के दिए मन्त्र से करने लगीं और प्रतीक्षा करने लगीं कि कब आचार्य स्वर्भानु का प्रस्ताव उनके विवाह के लिए आए।

इधर जब आचार्य स्वर्भानु अपने आश्रम में पहुंचे तो गुरु शुक्राचार्य के चरण पकड़ अभिवादन कर उन्होंने यज्ञ की सफलता की उन्हें सूचना दी। ऋषि नामोच की पुत्री सुप्रतिनामोच ने उनकी बड़ी सेवा की, यह भी उन्होंने आचार्य शुक्रदेव को श्रद्धा पूर्वक बतलाया। ऋषि पुत्री की अभिलाषा एक सुयोग्य मनभावन वर प्राप्त करने की है। इसकी प्राप्ति के लिए उन्होंने माँ गौरी सिद्ध मन्त्र का जाप करने को कहा, यह भी उन्होंने गुरुदेव को बताया। गुरुदेव से भी प्रार्थना की कि वह भी उसकी मनोकामना पूर्ण होने का आशीर्वाद दें।

आचार्य शुक्रदेव मुसकुराकर बस इतना ही बोले, 'तथास्तु।'

ऋषि पुत्री सुप्रतिनामोच का प्रेम आचार्य स्वर्भानु के प्रति दिन प्रतिदिन बढ़ता ही चला गया, और उतनी ही उनकी माँ गौरी के प्रति साधना। अंततः माँ गौरी ने एक रात्रि उन्हें स्वप्न देकर आशीर्वाद दिया कि शीघ्र ही उन्हें उनके मनभावन पति की प्राप्ति होगी।

उसी रात्रि को माँ गौरी महादेव के साथ आचार्य स्वर्भानु के स्वप्न में भी आईं। उन्हें स्पष्ट आदेश दिया कि वह सुप्रतिनामोच को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करें। महादेव ने भी मुसकुराकर माँ गौरी के आदेश का समर्थन किया और उन्हें आशीर्वाद भी दिया। इससे पहले कि आचार्य स्वर्भानु माँ गौरी एवं महादेव से कुछ पूछ पाते, वह दोनों ही अंतर्धान हो गए।

प्रातः नित्य कर्म एवं स्नान ध्यान के पश्चात आचार्य स्वर्भानु गुरुदेव शुक्राचार्य के समीप गए और माँ गौरी एवं महादेव के आदेश को उन्हें बताया। आचार्य शुक्रदेव तो बस मुसकुरा दिए और बोले, 'प्रिय पुत्र स्वर्भानु, सुप्रतिनामोच तो तुम्हें अपना हृदय तभी से दे बैठी हैं जब तुम उनके पिता महर्षि नामोच के यज्ञ में मुख्य पुरोहित के रूप में उनका यज्ञ संचालन हेतु गए हुए थे। जब उसकी सेवा से प्रसन्न हो तुमने उससे वर माँगने को कहा तो संकोचवश वह तुमसे सीधे विवाह प्रस्ताव नहीं दे पाई, और उसने मनभावन वर की प्राप्ति हेतु माँ गौरी को प्रसन्न करने का मन्त्र तुमसे प्राप्त कर लिया। उसका उद्देश्य तो तुम्हें ही अपने पति रूप में प्राप्त करने का था। उसने तुम्हारे दिए मन्त्र से तुम्हें हृदय में धारण कर अति कठोर साधना की है। अब तुम उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो। यदि तुम्हारी स्वीकृति हो तो मैं ऋषि नामोच को यह विवाह प्रस्ताव सन्देश भेज देता हूँ।'

आचार्य स्वर्भानु का हृदय सुप्रतिनामोच की उनके प्रति श्रद्धा और प्रेम से भर आया। उन्होंने गुरुदेव के चरण स्पर्श कर बस इतना ही कहा, 'गुरुदेव, आप ही मेरे जीवन आधार हैं। जो आपको उचित लगे, वही कीजिए।'

इस प्रकार आचार्य स्वर्भानु की स्वीकृति पा, गुरुदेव शुक्राचार्य ने तुरंत अपने एक शिष्य को ऋषि नामोच के आश्रम उनकी सुपत्री सुप्रतिनामोच के विवाह का प्रस्ताव आचार्य स्वर्भानु के साथ ले कर भेज दिया।

ऋषि नामोच तो इस दिन की ही प्रतीक्षा में थे। उन्होंने स्वयं तुरंत अपनी कुटिया आ यह शुभ सन्देश अपनी पुत्री सुप्रतिनामोच को सुनाया और उससे भी स्वीकृति माँगी। सुप्रतिनामोच शरमा कर वहां से यह कहते हुई भाग गईं, 'पिता श्री, आप मेरे भले बुरे को भली भांति समझते हैं। वैसा ही कीजिए जैसा आप और आचार्य गुरु शुक्रदेव चाहते हैं।'

पुत्री को प्रसन्न देख एवं उसकी स्वीकृति जान ऋषि नामोच ने प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए आचार्य शुक्रदेव से विनती की कि वह ही विवाह की उत्तम तिथि निकाल उन्हें आदेश दें, एवं सभी बारातीओं के साथ उनके आश्रम पधार उनका आतिथ्य स्वीकार करते हुए इस विवाह को संपन्न कराएं।

जब शिष्य यह शुभ समाचार ले गुरुदेव शुक्राचार्य के आश्रम पहुंचा तो गुरु शुक्रदेव एवं शिष्य आचार्य स्वर्भानु एक यज्ञ प्रारम्भ करने की चर्चा कर रहे थे। उस चर्चा को बीच में रोक आचार्य शुक्रदेव ने ऋषि नामोच द्वारा लिखी पाती पढ़ी, और आचार्य स्वर्भानु को आशीर्वाद के साथ बधाई दी।

आचार्य शुक्रदेव ने यह शुभ समाचार तुरंत सम्राट विप्रचित्ति को पाताल लोक अपने एक शिष्य द्वारा प्रेषित कर दिया। समाचार से सम्राट विप्रचित्ति की प्रसन्नता का अंत ही नहीं था। सम्राट विप्रचित्ति ने इस विवाह की व्यवस्था के विचार विमर्श के लिए राजकुमार अह्लाद के साथ कोषाधिकारी अनन्ताचर्य को तुरंत गुरुदेव के आश्रम प्रस्थान करने की आज्ञा दी।

आश्रम पहुंच गुरुदेव शुक्राचार्य के चरण स्पर्श कर राजकुमार अह्लाद ने अभिवादन किया। आचार्य स्वर्भानु ने भाई अह्लाद के चरण स्पर्श कर उनसे आशीर्वाद लिया। राजकुमार अह्लाद ने आचार्य स्वर्भानु को गले लगा लिया, और ऋषि नामोच पुत्री सुप्रतिनामोच के विवाह प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए बधाई दी।

राजकुमार अह्लाद बोले, 'गुरुदेव, अब देर किस बात की? शीघ्र ही आप शुभ मुहूर्त निकालें और विवाह की तैयारी करें। मेरा निवेदन है कि आप यदि स्वीकृति दें तो विवाह पत्रिका लेकर ऋषि नामोच के पास हमारे कोष अधिकारी अनन्ताचार्य जाएं। वह विवाह का सभी प्रबंध कर हमारी वहीं प्रतीक्षा करें।'

गुरु शुक्राचार्य राजकुमार अह्लाद के यह शब्द सुन अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले, 'राजकुमार अह्लाद, तुम्हारे आदेश का शीघ्र ही पालन होगा। आचार्य अनंत को विवाह पत्रिका लेकर ऋषि नामोच के पास जाने के आपके प्रस्ताव का मैं समर्थन करता हूँ। साथ ही सम्राट विप्रचित्ति एवं सभी सम्मानित सभासदों, मित्रों, सम्बन्धियों इत्यादि को शीघ्र ही यहां पहुंचने एवं विवाह में उपस्थित होने का सन्देश एवं निमंत्रण भी भेज दीजिए।'

तद्पश्चात गुरुदेव शुक्राचार्य ने अपनी दिव्य दृष्टि से शुभ मुहूर्त की घोषणा की। विवाह पत्रिका लिखी गई, और राजकुमार अह्लाद के आदेश से उसे कोषाधिकारी अनन्ताचार्य को सौंप दी गई। अनन्ताचार्य को आदेश दे दिया गया कि वह कोष से यथोचित धन राशि अपने साथ ले जाएं और विवाह की पूर्ण तैयारी कर वहीं हमारी प्रतीक्षा करें। तब राजकुमार अह्लाद ने यह शुभ समाचार पिता श्री सम्राट विप्रचित्ति को भेज दिया और उनसे यथोचित आगे सभी सभासदों, सम्बन्धियों एवं मित्रों को निमंत्रण देने का विनम्र निवेदन भी कर दिया। सम्राट विप्रचित्ति ने समाचार पा सभी को शुभ सन्देश दे दिया एवं विवाह उत्सव में जाने की तैयारियां प्रारम्भ कर दीं।

सम्राट विप्रचित्ति ने अपने सभासदों को शुभ समाचार देते हुए विवाह में बाराती बनकर चलने के लिए आमंत्रित किया। सब ओर प्रसन्नता छा रही थी। पूरी सभा गुरुदेव शुक्राचार्य, आचार्य स्वर्भानु, सम्राट विप्रचित्ति एवं राजकुमार अह्लाद की जय जयकार से गूँज उठी।

यह शुभ समाचार लेकर सम्राट विप्रचित्ति स्वयं अपने भाई सम्राट प्रह्लाद की राजधानी पहुंचे। सम्राट प्रह्लाद ने राजमाता कयाधु एवं अपनी धर्म-पत्नी देवी के साथ उनका हृदय से गले लगा कर सत्कार किया। शुभ समाचार सुनते ही तुरंत सम्राट प्रह्लाद, राजमाता कयाधु, सम्राज्ञी देवी, गुरु माँ ऊर्जस्वती एवं गुरु भाई शंदा एवं त्वस्ताधार, आचार्य गुरु शुक्रदेव के आश्रम शीघ्र अति शीघ्र पहुंचने के लिए तत्पर हो गए। सभी सम्राट प्रह्लाद के माननीय सभासदों को भी निमंत्रण दिया गया। एक बड़े समूह के साथ राजमाता कयाधु के नेतृत्व में सभी बाराती गुरुदेव शुक्राचार्य के आश्रम कोपरगाँव की ओर निकल पड़े।

इधर कोषाधिकारी अनन्ताचार्य विवाह पत्रिका लेकर ऋषि नामोच के आश्रम पहुंचे। ऋषि नामोच के चरण स्पर्श एवं दंडवत प्रणाम कर उन्होंने यह पाती ऋषि के कर कमलों में थमा दी। शीघ्र ही यह शुभ समाचार पूरे आश्रम में दावानल की तरह फैल गया। जब सुप्रतिनामोच को यह समाचार मिला तो वह सीधी माँ गौरी के मंदिर में गईं, माँ को प्रणाम किया और धन्यवाद दिया। उनके मुख से माँ गौरी की आराधना में यह शब्द निकल पड़े।

श्वेत वृषे समारूढ़ा श्वेताम्बर धरा शुचिः।
महागौरी शुभं दद्यान्महादेव प्र मोददा ॥
सिद्धगन्धर्वयक्षाद्यैरसुरैरमरैरपि ।
सेव्यामाना सदा भूयात सिद्धिदा सिद्धिदायिनी ॥

अनन्ताचार्य ने ऋषि नामोच को राजकुमार अह्लाद का सन्देश सुनाया तथा विवाह की सभी तैयारियां प्रारम्भ करने की आज्ञा माँगी। राजकुमार अह्लाद के निवेदन को प्रभु का आशीर्वाद मान उन्होंने तुरंत अनन्ताचार्य को विवाह की तैयारियां करने की अनुमति दे दी। अनन्ताचार्य तब विवाह की तैयारियों में लग गए। बारातियों एवं घरातियों के ठहरने की उत्तम व्यवस्था की गई। सभी सुविधाओं से युक्त अनगिनत विशाल तम्बू लगवाए गए। सहस्त्रों पाक-कर्मीओं द्वारा बारातीओं एवं घरातीओं के लिए यथोचित भोजन की व्यवस्था की गई। गुरुदेव शुक्राचार्य एवं राजकुमार अह्लाद को अनन्ताचार्य समय समय पर तैयारियों से अवगत कराते रहते थे। गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव ने सभी देव, दैत्य, दानव वंशों के साथ साथ सभी ऋषियों, महर्षियों और मान्यगण व्यक्तियों को विवाह में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया। विवाह का दिवस समीप आते ही ऋषि नामोच का आश्रम अतिथियों से भर गया।

विवाह दिन समीप देख सभी देव, दैत्य एवं दानव वंश के पूज्यगण, ऋषियों, महर्षियों, सभासदों इत्यादि ने अपने अपने वाहन सजाए और ऋषि नामोच के आश्रम की ओर निकल पड़े। सभी प्रकार के कल्याणप्रद मंगल शकुन होने लगे। ऋषि नामोच के आश्रम की सभी ऋषि-पत्नियां एवं ऋषि-पुत्रियां नृत्य एवं गायन से समस्त वातावरण को मोहित करने लगीं।

शीघ्र ही राजमाता कयाधु, सम्राट विप्रचित्ति, सम्राट प्रह्लाद, सम्राज्ञी देवी, गुरु माँ ऊर्जस्वती एवं गुरु भाई शंदा एवं त्वस्ताधार, सभी सभासद, मान्यगण सम्बन्धी एवं मित्र इत्यादि गुरुदेव शुक्राचार्य के आश्रम पहुँच गए।

जैसे ही गुरुदेव शुक्राचार्य को समाचार मिला कि राजमाता कयाधु, सम्राट विप्रचित्ति, सम्राट प्रह्लाद, सम्राज्ञी देवी, उनकी पत्नी ऊर्जस्वती एवं उनके पुत्र शंदा एवं त्वस्ताधार, सभी सभासद, मान्यगण सम्बन्धी एवं मित्र आश्रम पहुंचने वाले हैं, तब स्वयं वह आचार्य स्वर्भानु को साथ ले उनका स्वागत करने आश्रम के द्वार पर पहुँच गए।

राजमाता कयाधु, सम्राट विप्रचित्ति, सम्राट प्रह्लाद, सम्राज्ञी देवी, ऊर्जस्वती, शंदा एवं त्वस्ताधार, सभी सभासदों मित्रों, सम्बन्धियों ने गुरुदेव से दंडवत प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद पाया। आचार्य स्वर्भानु ने राजमाता कयाधु, सम्राट विप्रचित्ति, सम्राट प्रह्लाद, साम्राज्ञी देवी, गुरु माँ ऊर्जस्वती एवं गुरु भाई शंदा एवं त्वस्ताधार के चरण स्पर्श किये, और उनसे यथोचित आशीर्वाद पाया। तब सभी हर्षोल्लास के साथ आश्रम की ओर बढ़े। गुरुदेव शुक्राचार्य के आदेश पर आचार्य स्वर्भानु ने सभी के रहने और खान-पान की उचित व्यवस्था का प्रबंध पहले से ही कर रखा था।

विवाह का दिवस समीप आ गया। बारात जाने की तैयारी होने लगी। आचार्य स्वर्भानु को स्वयं सम्राज्ञी देवी एवं सम्राज्ञी की दासियों ने दूल्हे के रूप में सजाया। तब आचार्य गुरु शुक्रदेव एक विशेष रथ में उनके साथ शोभायमान हुए तथा ऋषि नामोच के आश्रम की ओर कूच किये। उनके पीछे सम्राट विप्रचित्ति, सम्राट प्रह्लाद, राजकुमार अह्लाद, शंदा एवं त्वस्ताधार, सभी सभासदों, मित्रों, सम्बन्धियों इत्यादि के विशेष रथ चले।

देखते देखते बारात ऋषि नामोच के आश्रम पहुँच गई। आश्रम को अनन्ताचार्य ने इस प्रकार सजा रखा था कि उसकी सुंदरता देख स्वयं आचार्य गुरु शुक्रदेव, सम्राट विप्रचित्ति एवं सभी बारातीगण मुग्ध हो गए। आश्रम के सभी वन, बाग, कुएँ, तालाब, नदियाँ आदि को कलसों एवं दीपों से सजाया गया था। आश्रम की प्रत्येक कुटिया में मंगल सूचक तोरण और ध्वजा पताकाएँ सुशोभित हो रही थीं। ऋषि-पत्नियों एवं ऋषि- पुत्रियों के मधुर नृत्य एवं गायन से सभी बारातियों का अभिवादन किया गया।

जब बारात के आगमन का समाचार मिला तो सुप्रतिनामोच माँ गौरी के मंदिर माँ से विवाह कुशल पूर्वक संपन्न होने का आशीर्वाद लेने पहुँच गईं। माँ गौरी ने प्रत्यक्ष रूप में प्रगट हो उन्हें आशीर्वाद तो दिया ही, साथ में सभी ऋद्धि, सिद्धि, इत्यादि देवियों को विवाह सफल बनाने का आदेश भी दिया।

बारात को आश्रम के निकट आई सुनकर आश्रम में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। आश्रम के सभी ऋषिगण बारात की अगवानी एवं स्वागत हेतु पहुंचे।

सभी ने दूर से ही सर्व प्रथम आचार्य शुक्रदेव को दंडवत प्रणाम किया। तत्पश्चात सम्राट विप्रचित्ति, सम्राट प्रह्लाद एवं राजकुमार अह्लाद के साथ आचार्य स्वर्भानु के चरण छू अभिवादन किया, और उनसे यथोचित आशीर्वाद पाया।

बारात का स्वागत कर उन्होंने अनन्ताचार्य द्वारा निर्मित तम्बुओं में सब को विश्राम करने का आग्रह किया।

वर आचार्य स्वर्भानु को विशेष विवाह स्थल पर ले जाया गया जहां सुप्रतिनामोच की माँ एवं अन्य मान्यगण ऋषि-पत्नियों ने उनकी शुभ आरती उतारी। माता के सुंदर हाथों में सोने का थाल सुशोभित था। उन्होंने सनातन धर्म की विधि के अनुसार वर का परछन किया और उनकी आरती उतारी। तत्पश्चात आचार्य स्वर्भानु अपने तम्बू में आ गए। सभी के हृदय आनंद में मग्न हो गए। आश्रम में चहूँ ओर मंगल गीत गाए जाने लगे। अनन्ताचार्य द्वारा नियुक्त पाक-कर्मियों ने भाँति भाँति के भोजन बनाए जिसके स्वाद का सबने अत्यंत आनंद लिया।

विवाह का समय देख गुरुदेव शुक्राचार्य ने ऋषि नामोच को बुलवाया और कन्या को विवाह मंडप में भेजने का आदेश दिया। सभी आचार्यों को भी आदर सहित बुलवा लिया गया और सब को यथायोग्य आसन दिए। वेदों में वर्णित विधि से वेदी सजाई गई। वेदिका पर एक अत्यन्त सुंदर दिव्य सिंहासन बनाया गया जिस पर आचार्य स्वर्भानु गुरुदेव शुक्राचार्य, पिताश्री विप्रचित्ति, भाई अह्लाद एवं प्रह्लाद को प्रणाम कर एवं अपने इष्ट महादेव को हृदय में धारण कर बैठे। फिर आचार्यों ने सुप्रतिनामोच को आने की आज्ञा दी। सखियाँ श्रृंगार करके उन्हें तुरंत ले आईं। वधु के रूप में सुप्रतिनामोच अति सुन्दर लग रही थीं।

गुरुदेव शुक्राचार्य ने सभी आचार्यों के साथ सर्व प्रथम श्री गणेश जी का पूजन किया। तत्पश्चात वेदों में बताई विधि के अनुसार गुरुदेव शुक्राचार्य ने विवाह संपन्न कराया। ऋषि नामोच ने अपनी कन्या का कन्यादान किया। पाणिग्रहण होने के पश्चात रीति अनुसार वर एवं वधु अपने अपने स्थानों पर चले गए।

अगले दिन वधु की विदाई का अवसर था। ऋषि नामोच और उनकी पत्नी आचार्य स्वर्भानु के समक्ष करबद्ध खड़े हो गए और बोले, 'हे आचार्य, आप समर्थ हैं। हम निर्धन वनवासी ऋषियों के पास सुशिक्षित सांस्कृतिक कन्या के अतिरिक्त कुछ और देने को नहीं है। आप हमारी सुशिक्षित कन्या को स्वीकार करें।'

तब आचार्य स्वर्भानु ने उनके चरण पकड़ लिए और सभी प्रकार से आश्वासन दिया और कहा, 'यह मेरा अति सौभाग्य है कि मुझे सुप्रतिनामोच अर्धांगिनी के रूप में मिलीं। मेरे हृदय में उनका स्थान मेरी मार्गदर्शिनी पत्नी के रूप में रहेगा।'

इस प्रकार विदाई लेकर बारात ने आचार्य शुक्रदेव के आश्रम की ओर प्रस्थान किया। बारात के आश्रम में प्रवेश करते ही आश्रम वासियों ने पुष्प वर्षा की झड़ी लगा दी। सभी ने नृत्य, गायन एवं सुंदर ढोल नगाड़े बजा कर उनका स्वागत किया।

सम्राज्ञी देवी ने आरती उतार कर वर वधु का स्वागत किया। तत्पश्चात वर आचार्य स्वर्भानु एवं बधु सुप्रीतिनामोच ने पिता श्री सम्राट विप्रचित्ति, राजमाता कयाधु, भाई प्रह्लाद एवं अह्लाद, भाभी सम्राज्ञी देवी के चरण छू उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया।

कुछ समय इसी प्रकार मंगलता से बीता। तब सम्राट विप्रचित्ति, सम्राट प्रह्लाद एवं राज कुमार अह्लाद ने गुरुदेव शुक्राचार्य से अपनी अपनी राजधानी वापस जाने की आज्ञा माँगी। साथ में ही सम्राट विप्रचित्ति ने आचार्य स्वर्भानु एवं सुप्रतिनामोच को भी अब दानव वंश की राजधानी अपने साथ ले जाने की आज्ञा माँगी। गुरुदेव ने तो आज्ञा दे दी, परन्तु आचार्य स्वर्भानु करबद्ध गुरुदेव एवं पिता श्री से विनम्र मधुर वचन बोले, 'हे गुरुदेव एवं पिता श्री, आप दोनों ही मेरे जीवन आधार एवं इस तन के स्वामी हैं। आपकी आज्ञा की अवहेलना स्वयं में एक पाप है। लेकिन मेरी करबद्ध आप दोनों से ऐसी विनती है कि मैं कुछ समय और गुरुदेव की सेवा में व्यतीत करना चाहता हूँ। यदि आप दोनों की आज्ञा हो तो मैं और सुप्रतिनामोच आश्रम का भली भांति संयोजित

प्रबंध कर समय आने पर आपकी सेवा में उपस्थित होंगे। गुरु भाई शंदा, त्वस्ताधार एवं गुरु माँ ऊर्जस्वती तो सम्राट प्रह्लाद की राजधानी की शोभा निरंतर बढ़ाने में तत्पर हैं। ऐसे में मेरा आश्रम में कुछ और समय तक रुकना अति आवश्यक है।'

ऐसा कहकर आचार्य स्वर्भानु नेत्रों में जल लिए चुपचाप कुटिया के एक कौने में बैठ गए। तब सम्राट विप्रचित्ति उठे, उन्हें गले से लगाया और बस इतना ही कहा, 'पुत्र, जैसी तुम्हारी इच्छा।'

अगले दिन सम्राट विप्रचित्ति, राजमाता कयाधु, सम्राट प्रह्लाद, सम्राज्ञी देवी, राजकुमार अह्लाद, गुरुभाई शंदा, त्वस्ताधार एवं गुरु माँ ऊर्जस्वती, अपनी अपनी राजधानी को प्रस्थान कर गए।

शनैः शनि समय बीतता चला गया। आचार्य स्वर्भानु एवं सुप्रतिनामोच का प्रेम प्रतिदिन बढ़ता चला गया। कालांतर में प्रभा नाम की अति सुन्दर पुत्री ने उनके गृह में जन्म लिया।

महातप

यह क्रम चल ही रहा था कि अचानक एक दिन वीणा बजाते हुए एवं 'नारायण, नारायण' का जाप करते हुए ब्रह्मऋषि नारद आचार्य शुक्रदेव के आश्रम में पधारे। ब्रह्मऋषि के आगमन का समाचार सुन आचार्य शुक्रदेव एवं आचार्य स्वर्भानु उनका स्वागत करने आश्रम द्वार पर नंगे पैर ही दौड़े। पुष्प मालाओं से उनका यथोचित स्वागत कर सुप्रतिनामोच ने उनकी आरती उतारी। तब थकान दूर करने एवं स्नान हेतु ब्रह्मऋषि नारद माँ गोदावरी के तट पर प्रस्थान कर गए। स्नान-ध्यान के पश्चात जब वह वापस लौटे, तब तक सुप्रतिनामोच ने स्वयं अपने हाथों से भोजन तैयार कर रखा था। ब्रह्मऋषि नारद, आचार्य शुक्रदेव, आचार्य स्वर्भानु को तब सुप्रतिनामोच ने भोजन कराया।

भोजन के पश्चात आचार्य शुक्रदेव ने उनसे अतिथिगृह में विश्राम करने का आग्रह किया। ब्रह्मऋषि नारद बोले, 'आचार्य, विश्राम तो मैं अवश्य करूंगा। लेकिन मेरा यहां आना आप सभी को एक पूर्व वचन की स्मृति कराना है। आपको स्मरण होगा जब में शिशु स्वर्भानु को लेकर आपके पास उसे शिष्य स्वीकार करने का निवेदन करने आया था, तब मैंने यह भी कहा था कि भविष्य में यह संभावना है कि इसे अमरत्व की प्राप्ति हो। स्वर्भानु को अमरत्व की प्राप्ति से ही दैत्य एवं दानव वंशों का कल्याण हो सकेगा। लेकिन इसके लिए इसे घोर प्रयास एवं आपके मार्ग दर्शन की आवश्यकता है। समय आ गया है कि अब आप इसका मार्ग दर्शन करें। यह किसी भी प्रकार महादेव को प्रसन्न कर उनसे अमरत्व प्राप्त करने का मार्ग ढूँढ सके।'

इतना कहकर और 'नारायण, नारायण' का जाप करते हुए ब्रह्मऋषि नारद ने वहां से प्रस्थान किया। आचार्य शुक्रदेव के निरंतर अनुरोध के पश्चात भी वह वहां नहीं रुके।

ब्रह्मऋषि नारद के प्रस्थान करने के पश्चात आचार्य शुक्रदेव, आचार्य स्वर्भानु एवं सुप्रतिनामोच में चर्चा होने लगी। महादेव स्वयं आचार्य शुक्रदेव के गुरु हैं। आचार्य शुक्रदेव महादेव को भली प्रकार जानते हैं। वैसे तो उन्हें प्रसन्न करना और उनसे वरदान लेना सभी त्रिदेवों की अपेक्षा सुलभ है, लेकिन अमरत्व का वरदान उनसे लेना अति कठिन है। तभी उनका ध्यान ब्रह्मऋषि के गूढ़ वचनों पर गया, 'महादेव से अमरत्व प्राप्त करने का साधन ढूंढें।' ब्रह्मऋषि ने महादेव से अमरत्व वर लेने के लिए

नहीं कहा, परन्तु उनसे अमरत्व प्राप्त करने का मार्ग ढूंढने का वरदान लेने को कहा है। अवश्य ही यह सुलभ तो नहीं होगा, लेकिन इसकी संभावना अधिक है। फिर ब्रह्मऋषि नारद के वाक्य भी असत्य नहीं हो सकते। यदि ब्रह्मऋषि नारद ने ऐसा कहा है कि महादेव को प्रसन्न कर उनसे अमरत्व प्राप्त करने का मार्ग ढूंढें, तो महादेव अवश्य ही मार्ग बताएंगे। आवश्यकता है, उन्हें तप से प्रसन्न करने की।

आचार्य शुक्रदेव तब आचार्य स्वर्भानु से मधुर शब्दों में बोले, 'प्रिय पुत्र स्वर्भानु, यह मार्ग अत्यंत कठिन और कष्टदायक होगा। महादेव को प्रसन्न करने के लिए तुम्हें कठोर तप करना होगा। इसमें कई सहस्त्र वर्ष भी लग सकते हैं। क्या पुत्र, तुम इस के लिए तत्पर हो?'

आचार्य स्वर्भानु ने गुरु आचार्य शुक्रदेव के चरण पकड़ लिए और बोले, 'गुरुदेव, आपके आशीर्वाद से असंभव भी संभव है। आप मेरा मार्ग दर्शन कीजिए। मैं यह घोर तप अवश्य ही करूंगा और आपकी कृपा से महादेव को प्रसन्न भी करूंगा। सुप्रतिनामोच मेरी पत्नी ही नहीं, सदैव मेरी मार्ग-दर्शिता रहीं हैं। उनसे विवाह कर गृहस्थ जीवन बिताते हुए उनका और अपनी संतति का भरण पोषण करने का वचन मैंने अवश्य लिया है, लेकिन यदि उनकी अनुमति हो तो मैं अवश्य ही यह घोर तप करने को तत्पर हूँ।'

सुप्रतिनामोच ने तब अपने पति के चरण पकड़ किए और कहा, 'स्वामी, एक वृहद लाभ के लिए छोटी मोटी आहुतियां तो देनी ही पड़ती हैं। महादेव का आशीर्वाद आपको मिले, मुझे इस से अधिक प्रसन्नता किसमें हो सकती है? आप मेरी और प्रभा की चिंता बिलकुल न करें। आपके और गुरुदेव के आशीर्वाद से हम कुशल मंगल रहेंगे और आपके विजयी हो वापस आने की प्रतीक्षा करेंगे।'

'अच्छा पुत्र, अब देर रात्रि हो गई है। तुम सब लोग विश्राम करो। कल से तुम्हारे तप में सफल होने के पूर्वापेक्षा की तैयारियां प्रारम्भ कर दी जाएंगी। यह एक घोर तप होगा जिसमें जैसा मैंने कहा, सहस्त्रों वर्ष लग सकते हैं। भूख, धूप, ठण्ड, वर्षा, पवन, अग्नि, वन-पशु इत्यादि से तन की रक्षा करना एक अत्यंत महत्वपूर्ण साधना होगी। इनसे रक्षा कवच तुम्हारे कुलदेव और तुम्हारी माँ सिंहालिका के गुरु अग्निदेव ही दे सकते हैं। सर्व प्रथम तप से उन्हें प्रसन्न कर उन्हें प्रगट करना होगा और उनका

आशीर्वाद लेना होगा। अग्निदेव यज्ञ से ही प्रसन्न एवं प्रगट होते हैं। कल प्रातः ही अग्निदेव के लिए यज्ञ और यथोचित यज्ञ आहुतियों का प्रबंध करना होगा।'

आचार्य शुक्रदेव की आज्ञा से तब आचार्य स्वर्भानु पत्नी सुप्रतिनामोच के साथ अपनी कुटिया पर चले गए।

अगले दिन प्रातः ही ब्रह्ममुहूर्त में नित्य क्रिया कर्म एवं माँ गोदावरी में स्नान के पश्चात आचार्य शुक्रदेव ने समस्त आश्रम निवासियों को आमंत्रित किया एवं अग्निदेव को प्रसन्न करने के लिए अग्निहोत्रि यज्ञ एवं यथोचित आहुतियों का प्रबंध करने की आज्ञा दी। आचार्य के मुख से शब्द निकले ही थे कि तुरंत यज्ञ एवं आहुतियों का प्रबंध हो गया और अग्निहोत्रि यज्ञ प्रारम्भ हुआ।

आम की सूखी डालियों से हवन कुंड में अग्नि प्रज्वलित करने की तैयारियां प्रारम्भ हो गईं। हवि के लिए सभी आवश्यक पदार्थ, फल, शहद, घी, सामग्री इत्यादि का प्रचुर मात्रा में प्रबंध किया गया। आचार्य शुक्रदेव ने यज्ञ पुरोहित के रूप में और आचार्य स्वर्भानु ने यजमान के रूप में अपने अपने आसन ग्रहण किए। तभी मन्त्रों के उच्चारण एवं अग्नि हवन कुंड में जलती हवि से समस्त वायुमंडल पवित्र एवं सुगन्धित हो गया।

पूर्ण विधि विधान से आचार्य शुक्रदेव ने अग्निहोत्रि यज्ञ का संचालन किया। कई मास तक यज्ञ चलता रहा, अंततः अग्निदेव प्रसन्न हो यज्ञ स्थल पर प्रसाद लेकर उपस्थित हुए।

आचार्य शुक्रदेव ने उनका अभिनंदन किया। आचार्य स्वर्भानु उनके चरणों में लोट गए। तब मधुर वाणी में अग्निदेव बोले, 'हे पुत्र स्वर्भानु, जानता हूँ कि महादेव का महातप करने की तुम्हारी प्रबल इच्छा है। जैसा कि आचार्य शुक्रदेव ने बताया, यह सत्य है इसमें कई युग लग सकते हैं। तुम्हारे इच्छा वरदान के लिए महादेव को प्रसन्न करना असंभव तो नहीं, दुर्लभ अवश्य है। तुम्हें इसके लिए अत्यंत साहस एवं संयम से कार्य लेना होगा। आचार्य शुक्रदेव की कृपा और मेरे आशीर्वाद से अवश्य ही तुम्हें इसमें सफलता प्रदान होगी। इस प्रसाद को स्वीकार करो। इसके भक्षण से तुम भूख, निद्रा, मौसम का तापमान - ठंडक, गर्मी, वर्षा इत्यादि पर विजय प्राप्त करने में सफल होगे। मेरे आशीर्वाद से तुम तप के समय अदृश्य हो जाओगे, जिससे कोई वन-पशु

इत्यादि तुम्हें न देख पाएगा, और न ही तुम्हें कोई हानि पहुंचा पाएगा। जाओ, वन प्रस्थान की तैयारी करो।' इतना कहकर एवं प्रसाद का पात्र देकर अग्निदेव अंतर्ध्यान हो गए।

अग्निदेव से वरदान और प्रसाद पाने के पश्चात आचार्य शुक्रदेव ने आचार्य स्वर्भानु को विशेष योग क्रिया से सौर्य ऊर्जा से शक्ति प्रदान करने की विधि बताई जिससे तन जीवित रखने के लिए भोजन की आवश्यकता ही न रहे। अग्निदेव के वरदान से भूख भावना अवश्य जाग्रत नहीं होगी, लेकिन तन को जीवित रखने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता तो रहेगी ही। तत्पश्चात महादेव सिद्ध मन्त्र की दीक्षा दी।

ॐ नमः शिवाय ।। ॐ नमो भगवते रुद्राय ।।
ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात ।।
ॐ त्रयम्बकं यजामहे सुगंधिम पुष्टि-वर्धनम उर्वारुकमिव बन्धनं
मृत्योर्मुक्षीय मामृतात।।

गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव का आशीर्वाद ले, अपनी धर्म पत्नी सुप्रतिनामोच की अनुमति एवं पुत्री प्रभा को आशीर्वाद दे, तब आचार्य स्वर्भानु ने महातप के लिए आचार्य शुक्रदेव के आश्रम से कुछ योजन दूर माँ गोदावरी के तट पर ही एक कुटिया का निर्माण किया, और महातप में जुट गए।

महादेव के चरणों में आचार्य स्वर्भानु ने अपना हृदय लगाया और गुरुदेव के बताए हुए सिद्ध मन्त्रों के उच्चारण से महादेव को प्रसन्न करने के लिए तप करने लगे। प्रभु के चरणों में नित्य उनकी श्रद्धा बढ़ती रही। तप में ऐसा मन लगा कि शरीर की सुध बिसर गई। सूर्य ऊर्जा से अपने तन को जीवित रखे। कितने युग बीत गए, पता ही नहीं चला। फिर भी जब महादेव के दर्शन नहीं हुए तो वह साधना से उठ खड़े हुए, और एक पैर पर खड़े हो गए। इसी प्रकार एक पैर पर खड़े हुए तप करते न जाने कितने युग और बीत गए। अंततः आकाशवाणी हुई, 'हे पुत्र, मैं तेरी तपस्या से अति प्रसन्न हूँ। किस वर हेतु तूने इतना कठोर तप किया है? एक अमरत्व के अतिरिक्त कोई भी वर मांग। मैं तुझे वर देने को तत्पर हूँ।'

आचार्य स्वर्भानु बोले, 'हे प्रभु, यदि आप मेरी श्रद्धा और प्रेम से प्रसन्न हैं, तो पहले मुझे दर्शन दीजिए। मैं अपने इष्ट को अपनी आँखों से देख सकूं, मेरी ऐसी इच्छा है।'
स्वर्भानु के प्रेम भरे वचन सुन महादेव उसके समक्ष प्रगट हो गए। महादेव को अपने समक्ष देख सर्व प्रथम उन्होंने दंडवत प्रणाम किया, फिर बोले, 'हे प्रभु मैं आपके आधीन हूँ। मेरे ऊपर आपकी कृपा दृष्टि सदैव बनी रहे, ऐसी कृपा कीजिए। हे प्रभु, आप तो अन्तर्यामी हैं। अवश्य ही जानते हैं कि ब्रह्मऋषि नारद ने मुझे आपकी तपस्या के लिए और आपसे अमरत्व प्राप्त करने का उपाय जानने के लिए इस तप के लिए प्रेरित किया। जानता हूँ प्रभु, आप मुझे स्वयं अमरत्व का वरदान नहीं देंगे, लेकिन ब्रह्मऋषि नारद के वचन असत्य नहीं हो सकते। आप मुझे अमरत्व प्राप्त करने का मार्ग अवश्य ही सुझाएंगे। '

इतना कहकर आचार्य स्वर्भानु ने महादेव के चरण पकड़ लिए।

महादेव मुसकुरा कर मधुर वाणी में बोले, 'प्रिय पुत्र स्वर्भानु, उठो। ब्रह्मऋषि नारद मुझे अति प्रिय हैं। उन्होंने यदि ऐसा कहा है तो अवश्य ही उसमें कोई सार रहा होगा। ध्यानपूर्वक सुनो, और इस चर्चा को गुप्त ही रखो। यदि तुमने इस चर्चा को अथवा इसके अंश को किसी के साथ भी साझा किया तो तुम्हारे सर के सहस्त्र टुकड़े हो जाएंगे। इस समय पृथ्वी पर तुम्हारे मामा हिरण्यकश्यपु के प्रपौत्र, प्रह्लाद के पौत्र और विरोचन के पुत्र महाबालि का साम्राज्य है। निःसंदेह, महाबालि अपने दादा श्री प्रह्लाद की भांति महान नारायण भक्त, अति बलवान, बुद्धिमान एवं धर्मवान शासक हैं। उन्होंने अपने बल से समस्त ब्रह्माण्ड को जीत लिया है। इंद्र को स्वर्ग के साम्राज्य से च्युत कर वहां अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया है। इंद्र और सभी देवता नारायण की शरण में उनसे अपना साम्राज्य वापस दिलाने के लिए और महाबालि को पराजित करने के लिए आराधना में जुटे हैं। महाबालि भगवान् विष्णु के अत्यंत भक्त एवं उनके प्रेमी हैं। नारायण किसी भी प्रकार की हानि अपने भक्त महाबालि को नहीं देना चाहते। लेकिन मैं जानता हूँ कि वह शीघ्र ही किसी प्रकार महाबालि से उसका समस्त ब्रह्माण्ड का राज्य ले कर उसे दानवों के साम्राज्य पाताल लोक का सम्राट बनाएंगे। जब से तुम्हारे पिता विप्रचित्ति प्रभु के धाम गए हैं, तब से पाताल लोक एक प्रकार से सम्राट विहीन है। महाबालि के पाताल लोक के सम्राट बनने के पश्चात इंद्र को अपना स्वर्ग का शासन तो अवश्य मिल जाएगा, लेकिन उसके हृदय से महाबालि का डर नहीं निकल पाएगा। वह स्वयं और सभी देवों को अजेय बनाने के लिए नारायण की

आराधना में जुटा रहेगा। नारायण उनको समुद्र मंथन से अमृत निकालने को प्रेरित करेंगे। समुद्र मंथन अकेले देवों से संभव नहीं। उन्हें दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं की इस कार्य हेतु सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। हरि विष्णु तब सम्राट महाबालि को ब्रह्मऋषि नारद द्वारा देवताओं के साथ समुन्द्र मंथन के लिए आमंत्रित करेंगे। वह महाबालि को वचन देंगे कि निकले हुए अमृत का आधा भाग दैत्य एवं दानव वंश को दिया जाएगा। महाबालि इस पर तैयार हो जाएंगे और इस प्रकार समुद्र मंथन होगा। कई वर्षों के समुद्र मंथन के बाद, कई महान मूल्यवान रत्नों/ वस्तुओं इत्यादि की प्राप्ति के बाद अंत में अमृत कलश मिलेगा। अमृत का वितरण स्वयं हरि विष्णु की अवतार एक अति सुन्दर स्त्री विश्वमोहिनी करेंगी। जब अमृत वितरण हो रहा हो, तब तुम चुपके से देवताओं का स्वरुप धारण कर उनके बीच में बैठ जाना। यद्यपि इस पंक्ति में सूर्य और चंद्र पास पास बैठे होंगे परन्तु सूर्य का ताप असहनीय होने के कारण चंद्र उनसे कुछ दूर हट कर बैठेंगे। बीच में थोड़ा स्थान रिक्त होगा। बस, वहीं तुम्हें बैठ जाना है। अमृत वितरण पर तुम्हें अमृत मिल जाएगा और तुम इस प्रकार अमरत्व को प्राप्त हो जाओगे। ब्रह्मऋषि नारद का वचन असत्य नहीं होगा।'

महादेव की वाणी सुन स्वर्भानु का चेहरा विस्मित हो गया और कम्पन भरी वाणी से बोले, 'क्या प्रभु? मेरे माता, पिता, भाई में कोई भी अब जीवित नहीं है! यहां तक कि महा बलशाली मामा हिरण्यकश्यपु के प्रपौत्र महाबालि अब सम्राट हैं! हे प्रभु, इतने युग बीत गए और मुझे कोई आभास नहीं! मेरे गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव को तो आपने स्वयं अमरत्व का वरदान दे रखा है। वह अवश्य ही जीवित होंगे। कृपया मुझे बताएं कि वह अब कहाँ हैं? मैं उनकी शरण में जा उनसे समस्त कहानी सुन सुकूं।'

तब महादेव बोले, 'पुत्र, आचार्य शुक्रदेव तो अमर एवं अजेय हैं। वह अब सम्राट महाबालि के गुरु हैं। तुम महाबालि की राजधानी के लिए प्रस्थान करो। वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह अपना गुरु का भार तुम्हें देकर अब मेरे पास कैलाश आना चाहते हैं। मैं तुम्हें काया की सुंदरता एवं युवा अवस्था भी वरदान स्वरुप प्रदान करता हूँ।'

इतना कहकर महादेव अंतर्धान हो गए।

महादेव से आशीर्वाद प्राप्त कर आचार्य स्वर्भानु गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव से मिलने उनके आश्रम कोपरगाँव की ओर चल दिए। गुरुदेव से एक लम्बे समय के बाद मिलने का हृदय में अति उत्साह था। तीव्रता से कदम बढ़ाते हुए वह आश्रम के निकट जा पहुंचे। लेकिन वहां तो एक मंदिर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। कहाँ गया आश्रम और कहाँ गए गुरुदेव? अचंभित हुए मंदिर के पुजारी के पास पहुंचे और उससे पूछने लगे, 'हे धर्मश्रेष्ठ आचार्य, यहां तो आचार्य शुक्रदेव का आश्रम हुआ करता था। मैं देख रहा हूँ कि आश्रम के स्थान पर बस यही एक मंदिर बचा है। आचार्य शुक्रदेव एवं उनके शिष्य कहाँ चले गए? क्या उन्होंने कोई नया आश्रम बना लिया गया है?'

मंदिर के पुजारी ने विस्मय से आचार्य स्वर्भानु की ओर देखा जैसे कोई अजूबा मंदिर में आ गया हो।

पुजारी जी बोले, 'तुम्हारे मुख की प्रतिभा से ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अवश्य ही कोई दिव्यता प्राप्त प्राणी हो। लगता है तुम इतिहास के कुछ पन्नों को पढ़ कर आए हो। आचार्य शुक्रदेव का आश्रम इस स्थली पर तो कई युग पहले था। अब तो सहस्त्रों वर्षों से वह दैत्य वंश के गुरु के रूप में उनकी राजधानी में ही रहते हैं। दैत्य वंश के महान चक्रवर्ती सम्राट महाबालि के वह पथ प्रदर्शक हैं, और उन्हीं की राजधानी में रहते हैं। जब से महान सम्राट महाबालि ने दक्षिण में त्रिक्काकरा को अपनी राजधानी बनाया है, तब से वह वहीं गुरु आश्रम में निवास करते हैं। आजकल उन्होंने गुरुकुल भी बंद कर दिया है। ऐसा सुना गया है कि कोई उनके शिष्य आचार्य स्वर्भानु महादेव की तपस्या में लीन हैं, और उन्हें ऐसा विश्वास है कि वह एक दिन अवश्य वापस आएंगे। उनका कथन है कि जब आचार्य स्वर्भानु वापस आएंगे, तभी वह गुरुकुल की स्थापना करेंगे।'

गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव के नए निवास स्थान एवं अपना स्वयं का नाम पुजारी के मुख से सुन आचार्य स्वर्भानु अत्यंत विस्मित हो गए। इस समय उन्होंने अपना नाम गुप्त ही रखना चाहा।

पुजारी से बोले, 'हाँ भाई, मेरे अज्ञान को क्षमा करना। लगता है मुझे बुद्धि भ्रम हो गया है। तुमने ठीक ही कहा। मैं इतिहास का छात्र हूँ। संभवतः इतिहास के पन्नों को ही यथार्थ समझ बैठा। आपकी बड़ी कृपा होगी यदि आप मुझे त्रिक्काकरा जाने का मार्ग

सुझा दें। मेरी तीव्र इच्छा है कि मैं दैत्य एवं दानव वंशों के जीवन आधार एवं मार्ग दर्शक आचार्य शुक्रदेव के दर्शन कर अपने जीवन को चरितार्थ बनाऊँ।'

'ठीक है, महापुरुष। यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो मैं अवश्य तुम्हारे त्रिक्काकरा जाने के प्रबंध करने का प्रयास करूंगा। तुम अति ही भाग्यशाली हो। तुम्हारा आना अति सुन्दर और पवित्र समय में हुआ है। कुछ दिन यहां विश्राम करो। एक सप्ताह पश्चात इस मंदिर में एक विशेष शिव पूजा का आयोजन होने वाला है जिसको सम्राट महाबालि द्वारा नियुक्त इस प्रांत के अधिकारी उनके स्वयं के पुत्र महादेव भक्त राजकुमार श्री बाण के द्वारा होगा। मैं तुम्हारा परिचय राजकुमार बाण से करा दूंगा। वह तुम्हारा त्रिक्काकरा जाने का प्रबंध अवश्य कर देंगे', पुजारी ने विनम्र वाणी में आचार्य स्वर्भानु से विनती की।

आचार्य स्वर्भानु मधुर विनम्र वाणी में बोले, 'हे कुलश्रेष्ठ आचार्य, यह आपका उपकार मैं कभी नहीं भूलूंगा। आपके निर्देशानुसार मैं अवश्य ही कुछ दिन आपका आतिथ्य स्वीकार करूंगा। समय आने पर आप मुझे अति पूजनीय राजकुमार श्री बाण से मेरा परिचय करा दीजिए।'

तब पुजारी जी आचार्य स्वर्भानु को अपने गृह ले गए और उनको आदर सत्कार के साथ निवास दिया।

जैसा पुजारी जी ने कहा था, एक सप्ताह पश्चात मंदिर में महादेव पूज़न का अति विशाल समारोह आयोजित हुआ जिसमें राजकुमार बाण स्वयं उपस्थित हुए। महादेव की स्तुति के समय जिस तन्मयता एवं श्रद्धा के साथ आचार्य स्वर्भानु पुजारी जी के साथ मंत्रोचारण कर रहे थे और उनके भाव में बह रह थे, स्वयं महादेव भक्त राजकुमार बाण को ऐसा आभास हुआ कि यह दिव्य पुरुष अवश्य ही महादेव के अति प्रिय हैं। पुजारी जी को आचार्य स्वर्भानु का परिचय देने की आवश्यकता नहीं पड़ी। स्वयं राजकुमार बाण आचार्य स्वर्भानु के समीप पहुंचे और करबद्ध उनसे पूछने लगे, 'हे दिव्यांश, आप के दर्शन से न जाने मुझे ऐसी अनुभूति क्यों हो रही है कि मैं या तो स्वयं महादेव का प्रतिरूप अथवा उन्हीं के एक अंश को अपने सम्मुख पा रहा हूँ। आप अपना परिचय देकर मुझे कृतार्थ कीजिए।'

तब उपयुक्त समय जान आचार्य स्वर्भानु ने अपना परिचय राजकुमार बाण को दिया।

आचार्य स्वर्भानु बोले, 'हे महान बलशाली चक्रवर्ती सम्राट महाबालि के उत्तराधिकारी सर्वश्रेष्ठ पूजनीय राजकुमार बाण, मैं आचार्य शुक्रदेव का शिष्य, सम्राट विप्रचित्ति एवं सम्राज्ञी सिंहालिका का पुत्र आचार्य स्वर्भानु हूँ। गुरुदेव की आज्ञा से अब तक महादेव के तप में लीन था। महादेव का आशीर्वाद प्राप्त कर अब मैं वापस आ गया हूँ। गुरुदेव से मिलने की मेरी तीव्र इच्छा है। हे राजकुमार, मेरा गुरुदेव से मिलने का आप शीघ्र ही प्रबंध करें तो में आपका उपकार कभी नहीं भूलूंगा।'

आचार्य स्वर्भानु का नाम सुनते ही राजकुमार बाण ने उनके चरणों में पड़ कर दंडवत प्रणाम किया और बोले, 'आप मेरे अति पूजनीय पूर्वज हैं। अपने इस पुत्र का प्रणाम स्वीकार कर इसे आशीर्वाद दीजिए। मेरे अहोभाग्य कि सर्व प्रथम मैंने आपके दर्शन किए। गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव तो प्रतिदिन आपका नाम अपने मुखारविंद से लेते हैं और आपकी प्रतीक्षा में नेत्र लगाए रहते हैं। अब विलंबता क्यों? अभी इसी समय हम त्रिक्काकरा प्रस्थान करते हैं, आप अनुमति दें।'

राजकुमार बाण को तब आचार्य स्वर्भानु ने अपने हृदय से लगा लिया और बोले, 'पुत्र, मेरा आशीर्वाद है कि महादेव तुम पर सदैव प्रसन्न रहें। अवश्य ही अब विलम्ब क्यों? शीघ्र ही चलिए। मेरा हृदय भी गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव के साथ तुम्हारे पिता और मेंरे वंशज सम्राट महाबालि से मिलने को अति उत्सुक है।'

'अवश्य महा पूजनीय इष्टदेव समान मेरे पूर्वज आचार्य, जैसी आपकी आज्ञा', यह कह राजकुमार बाण ने सारथी को तुरंत रथ तैयार करने का आदेश दिया ।

पुजारी जी को काटो तो खून नहीं। मेरे इतने अहोभाग्य कि स्वयं गुरुदेव महान आचार्य शुक्रदेव के शिष्य महादेव भक्त आचार्य स्वर्भानु ने कुछ दिनों के लिए उनका आतिथ्य स्वीकार किया। दौड़ कर उनके चरणों में लोट गए। आचार्य स्वर्भानु ने तब उन्हें गले से लगा लिया और यथोचित आशीर्वाद दिया।

तब तक सारथी ने राजकुमार बाण से अभिवादन कर कहा कि प्रभु, रथ तैयार है। तुरंत रथ में सवार हो राजकुमार बाण के साथ तब आचार्य स्वर्भानु ने त्रिक्काकरा के लिए प्रस्थान किया।

पुत्री प्रभा

आचार्य स्वर्भानु एवं राजकुमार बाण के रथ में बैठते ही अश्व पवन गति से त्रिक्काकरा की ओर चल पड़े। रथ में बैठते ही आचार्य स्वर्भानु मधुर स्वर में राजकुमार बाण से बोले, 'प्रिय पुत्र, जब तुम मेरे बारे में जानते हो तो अवश्य ही तुम्हें पता होगा कि मेरी पत्नी सुप्रतिनामोच एवं प्रिय पुत्री प्रभा कहाँ हैं, किस हाल में हैं? मेरा हृदय उनसे मिलने को अति उत्सुक है।'

आचार्य स्वर्भानु के करुणामय, पत्नी एवं पुत्री के प्रति यह प्रेम भरे शब्द सुनकर राजकुमार बाण के नेत्रों में जल छलक आया और बोले, 'प्रभु, आपको तो महादेव की कृपा से दीर्घायु प्राप्त है। लेकिन हम प्राणी तो इस तन के आवागमन से मुक्त नहीं हैं। आपको गुरुदेव शुक्राचार्य का आश्रम छोड़े एवं महादेव के महातप में लीन हुए कई पीढ़ियां बीत गईं हैं। अब दादी श्री सुप्रतिनामोच एवं महामाता प्रभा इस संसार में नहीं हैं।'

राजकुमार बाण के यह शब्द सुन आचार्य स्वर्भानु स्तब्ध हो गए। उन्हें अपनी पत्नी सुप्रतिनामोच और पुत्री प्रभा के प्रेम ने जकड़ लिया। उनके साथ बिताए हुए एक एक दिन उनकी दृष्टि में आने लगे। नेत्रों से अश्रुओं की धारा निकल पड़ी। फिर कुछ सम्हल कर बोले, 'प्रिय पुत्र, मैं उनसे अब मिल तो नहीं सकता, लेकिन यदि तुम्हें कुछ स्मरण हो और तुम उचित समझो तो मेरे महादेव के महातप में जाने के पश्चात गुरुदेव शुक्राचार्य के आश्रम में क्या क्या घटनाएं घटित हुईं, उनका संक्षिप्त रूप में वर्णन करो।'

राजकुमार बाण ने आचार्य स्वर्भानु के चरण पकड़ लिए और बोले, 'प्रपितामह, आपके महादेव के महातप के लिए प्रस्थान करने के बाद की प्रत्येक घटना को स्वयं गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव ने मुझे इस आशय से ही बताया हैं कि संभवतः एक दिन जब मेरा आपसे मिलन होगा, तो यह प्रश्न आप मुझ से अवश्य पूछेंगे। गुरुदेव तो त्रिकालदर्शी हैं। उन्हें हमारे इस मिलन का अवश्य ही पूर्वाभास रहा होगा।'

'आपके महादेव के महातप में जाने के बाद इंद्र के नेतृत्व में देवों ने दानव वंश के सम्राटों को अति कष्ट देने प्रारम्भ कर दिए। आप जानते ही हैं कि सम्राट हिरण्यकश्यपु

का वध कर हरि विष्णु ने दादा श्री प्रह्लाद को पृथ्वी लोक के सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया था। उस समय उनकी आयु केवल १२ वर्ष की थी। वह राजमाता कयादु के नेतृत्व में राज्य करने लगे। इस छोटी आयु में भी वह बड़े न्यायप्रिय एवं शांतिप्रिय शासक थे। प्रजा का हर प्रकार से ध्यान रखने एवं उनको हर सुविधा प्रदान करने पर ही केंद्रित हो कर वह राज्य का संचालन करते थे। साम्राज्य के विस्तारवाद के विचार से वह बिलकुल सहमत नहीं थे। अपनी सीमाओं से वह अत्यंत संतुष्ट रहते थे। उन्हें हरि विष्णु का संरक्षण प्राप्त था। अतः देवगण उनके साम्राज्य में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप तथा असुरक्षता फैलाने से डरते थे। लेकिन उनकी यह सन्तुष्टता दानव वंशों के सम्राटों पर भारी पड़ रही थी। सम्राट प्रह्लाद दानव वंश के सम्राटों का साथ न देकर उनसे स्वयं की रक्षा करने का उपदेश देते रहते थे। देवगण दानव वंश के सम्राटों को समूल नष्ट कर अपनी प्रभुता स्थापित करना चाहते थे। वह बार बार दानव वंश के सम्राटों पर आक्रमण करते और उनके अनगिनत सैनिकों का वध कर अंतर्धान हो जाते थे। दिन प्रतिदिन दानव वंशों की शक्ति क्षीण होती चली जा रही थी। देवगण तो गुरु वृहस्पति के मार्ग दर्शन में अपना खेल भली भांति खेल रहे थे, लेकिन दानव वंशों के सम्राटों को उस प्रकार का कोई मार्ग दर्शक नहीं सूझ रहा था। आपके ताऊ श्री सम्राट वर्षपर्वा बार बार गुरुदेव शुक्राचार्य के आश्रम में आ उनसे करबद्ध प्रार्थना कर रहे थे कि वह उनके गुरुपद का भार सम्हाल उनका मार्ग दर्शन करें। लेकिन गुरुदेव शुक्राचार्य इसके लिए तत्पर ही नहीं होते थे। अंततः एक दिवस सम्राट वर्षपर्वा उनके आश्रम में इस आशय के साथ आए कि या तो गुरुदेव शुक्राचार्य उनकी विनती स्वीकार करें अथवा वह अपने प्राण वहीं त्याग देंगे। उन्होंने निर्जल उपवास करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने घोषणा कर दी कि यदि गुरुदेव शुक्राचार्य उनका पथ प्रदर्शक बनना स्वीकार नहीं करेंगे तो वह अपने प्राण त्यागने तक न भोजन करेंगे, न जल ग्रहण करेंगे। इंद्रदेव और देवगणों के हाथ से मरने से तो अच्छा ही है कि वह गुरुदेव शुक्राचार्य के चरणों में अपने प्राण त्याग दें।

उनके निर्जल उपवास से दिन प्रतिदिन उनका तन क्षीण होने लगा और ऐसा आभास होने लगा कि वह अधिक समय तक अपने प्राण नहीं रख पाएंगे। सम्राट वर्षपर्वा यदि मृत्यु को प्राप्त हुए तो एक प्रकार से दानव वंश का तो अंत ही हो जाएगा। यह गुरुदेव शुक्राचार्य को स्वीकार नहीं था। सम्राट वर्षपर्वा की हठ के सम्मुख गुरुदेव शुक्राचार्य झुक गए। गुरुदेव शुक्राचार्य ने उनका गुरुपद स्वीकार कर लिया। दानवों की रक्षा करने का एक ही उपाय था कि वह महादेव को तप से प्रसन्न कर उनसे मृत संजीवनी

शक्ति विद्या प्राप्त करें। जब देवगण दानव वंश के किसी सैनिक का वध करें, उस शक्ति विद्या के द्वारा उस मृत सैनिक को तुरंत पुनर्जीवित किया जा सके। अतः गुरुदेव शुक्राचार्य ने तत्काल महादेव के तप हेतु वन को प्रस्थान करने का मन बना लिया।

आपके महादेव के महातप में जाने के पश्चात दादी श्री सुप्रतिनामोच एवं उनकी पुत्री प्रभा आश्रम का प्रबंधन करती हुए उनके संरक्षण में रह रही थीं। गुरुदेव शुक्राचार्य के महादेव के तप से वापस आने का कोई समय निर्धारित नहीं था। यह तो महादेव की कृपा पर निर्भर था कि वह कब प्रसन्न हों और कब उन्हें मृत संजीवनी शक्ति विद्या प्रदान करें! उनकी सुरक्षा एवं भली प्रकार से लालन पालन के विचार से उन्होंने दादी श्री सुप्रतिनामोच के पिता ऋषि नामोच को अपने आश्रम आमंत्रित किया और स्थिति से अवगत कराया। उन्होंने ऋषि नामोच से अनुरोध किया कि वह अपनी पुत्री सुप्रतिनामोच और धेवती प्रभा को अपने आश्रम ले जाएं। ऋषि नामोच ने यह सहर्ष स्वीकार किया। दादी श्री सुप्रतिनामोच पुत्री प्रभा के साथ तब ऋषि नामोच के आश्रम आ गईं। इसके पश्चात गुरुदेव शुक्राचार्य महादेव को प्रसन्न कर उनसे मृत संजीवनी शक्ति विद्या प्राप्त करने हेतु वन को प्रस्थान कर गए।

ऋषि नामोच के आश्रम में महामाता श्री प्रभा का लालन पालन हुआ और बचपन बीता। शनैः शनैः समय बीतता चला गया। महामाता श्री प्रभा व्यस्क हो गईं। उनकी सुंदरता की संभवतः त्रिलोक में कोई समानता नहीं थी। माता प्रभा स्वर्ग की अप्सरा से भी अधिक रूपवती थीं। उनके विवाह की आयु हो रही थी। अतः ऋषि नामोच उनके लिए उपयुक्त वर की खोज में निकल पड़े।

लेकिन प्रभु को तो कुछ और ही स्वीकार्य था। एक सायं आश्रमवासियों ने एक अति सुन्दर पुरुष को आश्रम की ओर आते देखा। वह अति सुन्दर पुरुष कोई और नहीं, परन्तु सम्राट पुरूरव के पुत्र सम्राट आयु थे। सम्राट आयु आखेट करने निकले हुए थे। आखेट करते हुए एक हिरन का पीछा करते हुए वह वन में अति दूर निकल आए। उन्हें समय का कोई आभास नहीं रहा। सायं काल देख वह कोई आश्रय ढूंढ रहे थे कि उन्हें ऋषि नामोच का आश्रम दिखलाई पड़ गया। भूख और प्यास से बेहाल सम्राट आयु ने आश्रम में प्रवेश किया। ऋषि नामोच के शिष्यों को अपना परिचय दिया। सम्राट आयु उनकी कुटिया में पधारे हैं, आश्रम में यह समाचार दावानल की तरह फैल गया। सम्राट का आश्रमवासियों ने यथोचित आदर सत्कार किया। भोजन के पश्चात उन्होंने

उस रात्रि आश्रम के अतिथि गृह में निवास किया। अगले दिन प्रातः सम्राट आयु स्नान आदि दैनिक चर्या से निवृत हो कर आश्रम का भ्रमण करने निकले। तब उनकी दृष्टि प्रभा और उनकी सखियों पर पड़ी जो पूजा के लिए पुष्प लेने वाटिका में आई हुए थीं। पुष्प तोड़ते समय एक मधुमक्खी प्रभा के आस पास मंडराने लगी। प्रभा ने उस मधुमक्खी को उड़ाने के पूर्ण प्रयास किए, पर वह पीछा छोड़ती ही नहीं थी। प्रभा उस मधुमक्खी के डर से इधर उधर भागने लगीं। प्रभा की अन्य सखियों ने भी उस मधुमक्खी को उड़ाने के पूर्ण प्रयास किए, मगर असफलता ही हाथ लगी। सम्राट आयु यह प्रकरण देख रहे थे। वह तुरंत प्रभा की सहायता के लिए आगे आए और मधुमक्खी को वहाँ से किसी प्रकार भगाया। मधुमक्खी उड़ने के पश्चात प्रभा के तो जैसे प्राण ही लौट आए। इधर सम्राट आयु ने मधुमक्खी को भगा तो अवश्य दिया, परन्तु वह प्रभा की सुंदरता पर मुग्ध हो गए। सम्राट आयु ने प्रभा से विवाह की इच्छा बताई। प्रभा ने तब उन्हें अपनी माता श्री सुप्रीतिनामोच की कुटिया पर भेज दिया।

माता श्री सुप्रीतिनामोच ने भी तब तक सम्राट आयु के आश्रम में आतिथ्य स्वीकार करने का समाचार सुन लिया था। जब सम्राट आयु ने स्वयं उनकी कुटिया में पहुँच उन्हें प्रणाम किया तो माता श्री सुप्रीतिनामोच सम्राट आयु की नम्रता और उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो गईं। सम्राट आयु ने प्रभा से विवाह की अनुमति माता श्री सुप्रीतिनामोच से माँगी। माता सुप्रीतिनामोच ने इस सम्बन्ध को तुरंत स्वीकार कर लिया, परन्तु सम्राट से निवेदन किया कि वह पिता श्री ऋषि नामोच की प्रतीक्षा करें। उनसे अनुमति के पश्चात ही यह विवाह संभव है। सम्राट आयु ने यह सहर्ष स्वीकार कर लिया।

कुछ दिनों पश्चात जब ऋषि नामोच अपने आश्रम वापस लौटे तो उन्हें सभी समाचारों से सुप्रीतिनामोच ने अवगत कराया।

'हे प्रभु, मैं जिस वर को ढूंढने के लिए दर दर भटक रहा था, तूने यहीं मेरे आश्रम में भेज दिया। तेरी लीला अपरम्पार है ', ऐसा कहते हुए उन्होंने विवाह की तुरंत अनुमति दे दी।

बड़ी धूमधाम से प्रभा का विवाह सम्राट आयु से हो गया। ऋषि नामोच एवं माता श्री सुप्रीतिनामोच से आज्ञा लेकर तब सम्राट आयु अपनी पत्नी प्रभा के साथ अपनी

राजधानी प्रयाग आ गए। तब आचार्य स्वर्भानु पुत्री प्रभा चंद्र वंश की सम्राज्ञी प्रभा बन गईं।

आचार्य स्वर्भानु विस्मय से तब राजकुमार बाण से बोले, 'हे पुत्र, यह सम्राट आयु सम्राट पुरूरव के पुत्र थे, यह तुमने बताया। क्या यह पुरुरवा बुद्ध के पुत्र थे?’

राजकुमार बाण तब बड़ी नम्रता से बोले, 'हाँ आचार्य, महर्षि अत्रि एवं जगदमाँ अनुसुइया ने चन्द्रमा को जन्म दिया। चन्द्रमा ने देवों के गुरु वृहस्पति की पुत्री तारा से विवाह किया। चन्द्रमा और तारा से बुद्ध उत्पन्न हुए। बुद्ध ने वैवस्वत मनु की पुत्री इला से विवाह किया। इन्हीं बुद्ध और इला के पुत्र पुरुरवा थे। इन्होंने चंद्र वंश की स्थापना की, और अपनी राजधानी प्रयाग बनाई।‘

आगे राजकुमार बाण बोले, 'प्रभु, आपकी पुत्री महामाता श्री प्रभा एवं सम्राट आयु के पांच पुत्र हुए, नहुष, क्षत्रवृत, राजभ, राजी एवं अनेना। सम्राट आयु एवं महामाता श्री ने अपने बड़े पुत्र राजकुमार नहुष के व्यस्क होने पर उनका राज्याभिषेक किया एवं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया। वन में एक कुटिया बना कर वहीं निवास करने लगे। एक दिन वन में चहुँ ओर अग्नि प्रज्वलित हो गई। उसी दावानल में उन्होंने अपने तन की आहुति दे दी और हरि विष्णु लोक साकेत धाम चले गए।'

सम्राट नहुष अति प्रतिभावान, वीर, न्यायप्रिय, परन्तु महत्वाकांक्षी शासक थे। उन्होंने अपने प्रताप से साम्राज्य का विस्तार किया और चक्रवर्ती सम्राट कहलाए। उन्होंने महादेव शिव एवं माँ पार्वती की पुत्री अशोकसुन्दरी से विवाह किया।

अचंभित होकर आचार्य स्वर्भानु बोले, 'महादेव के दो पुत्र, कार्तिकेय एवं गणेश, के बारे में तो मैं जानता हूँ, लेकिन उनके एक पुत्री अशोकसुन्दरी भी हैं, इस बारे में मैं पूर्णतः अनभिज्ञ हूँ। यह पुत्री महादेव और माँ पार्वती को कब प्राप्त हुई? पुत्र, यदि तुम कुछ जानते हो तो इस बारे में मुझे कुछ बताओ। मेरा हृदय जिज्ञासा से भर गया है।'

तब राजकुमार बाण अशोकसुन्दरी की उत्पत्ति की कथा कहने लगे।

राजकुमार बाण बोले, 'प्रभु, एक बार माता पार्वती ने महादेव से ब्रह्माण्ड भ्रमण की इच्छा व्यक्त की। महादेव ने माता पार्वती को प्रसन्न करने के लिए उनके साथ यह यात्रा करना स्वीकार कर लिया। भ्रमण करते करते वह दोनों एक अत्यंत सुन्दर उपवन में पहुंचे। महादेव ने माता पार्वती को बताया कि हे देवी, इसे नंदन वन कहते हैं। माता पार्वती वहां की प्राकृतिक सुंदरता को देख मंत्रमुग्ध हो गईं। वहां पर स्थित एक वृक्ष उन्हें कुछ अधिक ही पसंद आया। वृक्ष के समीप पहुँच जिज्ञासावस उन्होंने महादेव से पूछा, 'हे प्राणनाथ यह कौन सा वृक्ष है जो अपनी सुंदरता से हमें मुग्ध कर रहा है।'

इसपर महादेव बोले, 'हे देवी, यह कोई साधारण वृक्ष नहीं है। यह वृक्ष सभी की मनोकामनाएं एवं इच्छाएं पूर्ण करने की शक्ति रखता है। इसे कल्पवृक्ष कहते हैं।'

महादेव के वचन सुनकर माता पार्वती को एक सुंदर पुत्री की अभिलाषा हुई। उनकी अभिलाषा होते ही कल्पवृक्ष ने उन्हें एक नन्ही सी सुन्दर बालिका उनकी गोदी में डाल दी। माँ पार्वती ने इस बालिका का नाम अशोकसुन्दरी रखा। अशोकसुन्दरी ने जन्म लेते ही माता पार्वती को प्रणाम किया और पूछा कि माता पार्वती ने उसकी अभिलाषा क्यों की है, और वह उनकी क्या सेवा कर सकती है?

माता पार्वती ने सत्य कहते हुए कहा, 'हे पुत्री, मैं दो पुत्रों की माँ अवश्य हूँ, लेकिन बिना पुत्री के जीवन में मंगलता और पूर्णता नहीं आती। अतः मैंने अपने जीवन को मंगलमय एवं पूर्ण बनाने के लिए कल्पवृक्ष से पुत्री की इच्छा प्रकट की, और उपहार स्वरुप तुम मुझे मिल गईं। मैं तुम्हें अपनी पुत्रीवत लालन पालन करूंगी, और समय आने पर भविष्य में चंद्रवंश के सम्राट नहुष से तुम्हारा विवाह कराऊँगी।' इस प्रकार अशोकसुंदरी माता पार्वती और महादेव की पुत्री बनीं।

जब अशोकसुन्दरी व्यस्क हुईं तो उन्होंने तपस्या करने का विचार किया। माता पार्वती एवं महादेव का आशीर्वाद लेकर वह वन में तपस्या करने चली गईं। जब वह तपस्या में लीन थी तभी राक्षसराज हुँदा उनकी सुंदरता पर मुग्ध हो गया और उसने उनके सामने विवाह प्रस्ताव रखा। अशोकसुन्दरी ने उसे बताया कि उनका विवाह तो माँ पहले से ही चंद्रवंश के सम्राट नहुष के साथ तय कर चुकी हैं और वह उनको ही अपना पति मानती हैं। इस पर राक्षसराज हुँदा क्रोधित हो गया और उसने उन्हें बंदी

बना लिया। अशोकसुंदरी भी तब क्रोधित हो गईं और उन्होंने उसे श्राप दे दिया, ‘हे दुष्ट, तेरी मृत्यु मेरे पति नहुष के हाथों से ही होगी।‘

श्राप दे कर अपनी योग शक्ति से उसके बंदी गृह से छूटकर वह तब अपने घर कैलाश पर्वत आ गईं। उस समय राजकुमार नहुष महर्षि वशिष्ठ के गुरुकुल में शिक्षा ले रहे थे। गुरु महर्षि वशिष्ठ ने राजकुमार नहुष को सभी प्रकार की अस्त्र, शस्त्र विद्या एवं दिव्य अस्त्र प्रदान किए। शिक्षा समाप्ति पर महर्षि वशिष्ठ ने राजकुमार नहुष को महादेव एवं माता पार्वती की पुत्री अशोकसुन्दरी के बारे में बताया। अशोकसुन्दरी से विवाह करने का आदेश दिया। गुरु महर्षि वशिष्ठ ने राजकुमार नहुष को राक्षसराज हुँदा से युद्ध के लिए भेजा। राजकुमार नहुष ने राक्षसराज हुँदा से युद्ध किया। एक भयंकर युद्ध के पश्चात राजकुमार नहुष ने उसे हराकर उसका वध कर दिया, और माँ पार्वती एवं महादेव के आशीर्वाद से अशोकसुंदरी से विवाह किया।

आगे राजकुमार बाण बोले, 'हे प्रपितामह, सम्राट नहुष को उनके शासन काल में ब्रह्मदेव ने स्वर्ग का राज्याभिषेक भी किया।'

यह सुन अचंभित हो आचार्य स्वर्भानु बोले, 'पुत्र, जैसा मैं जानता हूँ कि सम्राट हिरण्यकश्यपु के वध के पश्चात हरि विष्णु ने पृथ्वी का राज्य मेरे भाई प्रह्लाद को, स्वर्ग का राज्य इंद्र को और पाताल का राज्य दानव वंश के सम्राटों को दे दिया था। फिर ब्रह्मदेव ने स्वर्ग का राज्य इंद्रदेव से छीनकर सम्राट नहुष को कैसे दे दिया? मेरे हृदय की इस जिज्ञासा को दूर करो।'

राजकुमार बाण बोले, 'आप सत्य कहते हैं, प्रभु। हरि विष्णु ने तो ऐसा ही किया था। सम्राट प्रह्लाद तो बड़े संतुष्ट स्वभाव के व्यक्ति थे। अतः उन्होंने अपनी सीमाओं के विस्तार के बारे में कभी नहीं सोचा। लेकिन इंद्रदेव अत्यंत महत्वाकांक्षी थे। उनका उद्देश्य तो सभी तीनों लोकों के सम्राट बनने का था। जिसे भी वह अपने मार्ग का काँटा समझते थे, उसको तत्काल दूर कर देते थे।

आपको प्रजापति त्वष्टा का अवश्य स्मरण होगा। उनके विश्वरूप नाम के एक धर्म प्रिय दिव्य पुत्र थे। उन्होंने ब्रह्मदेव से वरदान स्वरुप तीन सिर पाए थे। ब्रह्मऋषि नारद से उन्होंने दीक्षा ली थी। वह आध्यात्मिक शक्तियों से सम्पन्न एक महान साधु थे।

इंद्रदेव के मन में उनसे भय और असुरक्षा की भावना पैदा हो गई। इंद्रदेव भ्रमित हो गए और सोचने लगे कि विश्वरूप अवश्य ही एक दिन उन्हें पदच्युत कर स्वर्ग का साम्राज्य ले लेंगे। आवेश में आ कर इंद्रदेव ने एक सदाचारी और साधु विश्वरूप का वध कर दिया। जब प्रजापति त्वष्टा को इस घटना का पता चला तो वह अत्यंत क्रोधित हो उठे। उन्होंने अपने प्रिय पुत्र की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए एक यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ की अग्नि से प्रजापति त्वष्टा को एक पुत्र प्राप्त हुआ, जिसका नाम उन्होंने वृत्रासुर रखा। वृत्रासुर के जीवन का एकमात्र लक्ष्य था, इंद्र को ध्वस्त करके अपने भाई की हत्या का प्रतिशोध लेना। वृत्रासुर जब व्यस्क हुआ तो प्रजापति त्वष्टा ने उसे ब्रह्मदेव की तपस्या और उन्हें प्रसन्न करने के लिए वन भेज दिया ताकि वह इंद्र का वध करने की शक्तियां ब्रह्मदेव से वरदान स्वरुप प्राप्त कर सके। उस ने ब्रह्मदेव की घोर तपस्या की। ब्रह्मदेव उससे प्रसन्न हो गए और उसे उसकी इच्छानुसार सर्वोत्तम वरदान दिया। ब्रह्मदेव ने उसे वरदान दिया कि कोई अस्त्र उसे मार नहीं एकता। न वह किसी गीली चीज से मर सकता है, न ही सूखी से। न वह लकड़ी से मर सकता है, न ही किसी धातु से। युद्ध के समय प्रतिपक्षी की आधी शक्ति का भी उसमें समावेश हो जाएगा। यह वरदान पाकर उसकी शक्तियां अजेय हो गईं। तब उसने इंद्र और देवलोक के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। उसने देवराज इंद्र को बुरी तरह पराजित कर दिया। परिणामस्वरूप, इंद्र युद्ध के मैदान से भाग खड़े हुए। वृत्रासुर ने तब इंद्रलोक पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

इंद्र भाग कर तब भगवान शंकर की शरण में चले गए। भगवान शंकर इंद्रदेव को लेकर ब्रह्मदेव के पास गए। वृत्तासुर की शक्तियों का ब्रह्मदेव के पास भी कोई विकल्प नहीं था। तब वह तीनों, इंद्रदेव, महादेव एवं ब्रह्मदेव, हरि विष्णु के साकेत धाम उनसे सहायता लेने पहुंचे। हरि विष्णु ने इंद्रदेव को परामर्श दिया कि पहले उन्हें वृत्रासुर को मित्र बनाकर उसका विश्वास जीतना होगा, और उसकी हत्या उस समय करनी होगी जब वह अपनी सुरक्षा के प्रति लापरवाह हो। हरि विष्णु ने इंद्रदेव को यह भी परामर्श दिया कि उन्हें देवी माँ से प्रार्थना करनी होगी ताकि वह अपनी योग माया से वृत्रासुर की बौद्धिक योग्यता को प्रभावित कर उसे क्षीण कर दें। देवराज इंद्र ने वैसा ही किया जैसा कि हरि विष्णु ने समझाया था, और परिणाम स्वरूप देवी मां से भी आशीर्वाद प्राप्त कर लिया।

तब इंद्र ने एक नए स्वरुप में वृत्रासुर से मित्रता कर ली। वृत्तासुर का पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया। एक बार जब वृत्तासुर समुद्र तट पर सोया हुआ था, उस समय इंद्र ने समुद्र के झाग को एकत्रित किया। समुद्र की झाग न तो गीली होती है और न सूखी ही। वह लकड़ी है, न कोई धातु। उस समय वृत्तासुर सोया हुआ था जिससे इंद्रदेव की आधी शक्ति भी वृत्तासुर में न समा सके। अतः ब्रह्मदेव का वरदान भी भंग नहीं हुआ। तब देवी माँ भी वृत्तासुर के मस्तिष्क में प्रवेश कर गईं। वृत्तासुर की बुद्धि पूर्णतः उन्होंने भ्रमित कर दी। तब इंद्र ने झाग को अपने वज्र पर लपेट लिया। वज्र इंद्र का प्रिय और भंयकर अस्त्र है जो महर्षि दधीचि की अस्थियों से बना हुआ है। अपने इस वज्र को झाग में लपेट कर इस वज्र से इंद्र ने वृत्रासुर का वहीं वध कर दिया।

इंद्रदेव ने वृत्तासुर का इस प्रकार धोखे से वध तो अवश्य कर दिया, परन्तु उसका हृदय ग्लानि से भर गया। किसी का विश्वास जीत कर इस प्रकार धोखे से वध कर देना, इंद्रदेव जैसे शासक के लिए उचित नहीं था। दूसरा, वृत्तासुर एक ब्राह्मण पुत्र थे, अतः ब्रह्महत्या का पाप भी उनके सर लग गया। इस ग्लानि में वृत्तासुर का वध करने के पश्चात इंद्र स्वर्गलोक नहीं गए बल्कि प्रायश्चित हेतु वन में तपस्या करने चले गए। स्वर्ग लोक का सिंहासन सम्राट विहीन हो गया। बिना सम्राट के राज्य व्यवस्था बिगड़ रही थी। तब ब्रह्मदेव ने स्वर्गलोक के एक उचित सम्राट की खोज प्रारम्भ की और उनकी दृष्टि महादेव के जमाता सम्राट नहुष पर जा कर ठहर गई। उन्होंने अपना प्रस्ताव हरि विष्णु, महादेव एवं स्वर्ग के सभी देवताओं के समक्ष रखा और सब की स्वीकृति से सम्राट नहुष का स्वर्ग के सिंहासन पर राज्याभिषेक कर दिया। सम्राट नहुष को एक बड़ा पद मिल गया। बड़े पद से जो अभिमानी न हो जाए, उस पर तो ईश्वर की कृपा ही समझो। सम्राट नहुष अभिमानी एवं निरंकुश हो गए। यहां तक कि स्वयं उनके श्वसुर महादेव उनकी गति विधियों से दुःखी रहने लगे। कई बार समझाने का प्रयास किया, परन्तु सम्राट नहुष पर तो स्वर्ग एवं पृथ्वी की सत्ता का नशा चढ़ा हुआ था।

एक दिवस उन्होंने शची (इंद्रदेव की पत्नी) को उद्यान में देख लिया। शची की सुंदरता पर वह मुग्ध हो गए। इतना भी नहीं सोचा कि शची विवाहिता हैं। उनसे विवाह का प्रस्ताव कर दिया। शची घबरा गईं। वह तुरंत गुरुदेव वृहस्पति के पास भागी भागी गईं और सब कथा सुनाई। गुरु बृहस्पति को समझते देर न लगी कि नहुष के अन्दर प्रभुता जनित अहंकार उत्पन्न हो गया है। इस अहंकार का निवारण करना तो

आवश्यक था ही, पर उससे भी अधिक महत्वपूर्ण शची के सतीत्व की रक्षा करना था। गुरु वृहस्पति शची को लेकर महादेव के पास गए तथा व्यथा सुनाई। महादेव को नहुष पर अत्यंत क्रोध आया। फिर अशोकसुन्दरी के बारे में सोचा। नहुष का वध करना उचित नहीं, वह मेरा जामाता है। उसको इस कृत्य का दंड दिलवाया जाना चाहिए। उन्होंने शची से कहा कि तुम नहुष को एक सन्देश भिजवा दो। तुम उससे विवाह करने को तैयार हो। लेकिन तुम्हारी एक शर्त है। नहुष तुमसे विवाह करने सप्तऋषियों द्वारा चालित पालकी पर बैठ कर आए। शची ने वैसा ही किया जैसा महादेव ने उन्हें सुझाया था। अब मूर्ख नहुष को तो देखो। काम और अहंकार के नशे ने उसे इतना दूषित कर दिया था कि उसने यह भी नहीं सोचा कि सप्तऋषियों में तो उसके गुरु महर्षि वशिष्ठ एवं उनके बड़े भ्राता महर्षि अगस्त्य भी हैं। मूर्ख अपने ही पूजनीय गुरु, उनके बड़े भ्राता एवं अन्य पूजनीय महर्षियों से अपनी पालकी उठवाना चाहता था।

नहुष ने तुरंत सप्तऋषियों को अपनी सभा में बुलवा लिया तथा आदेश दिया कि वह सब उसकी पालकी को वहन कर शची के महल ले चलें। महर्षि वशिष्ठ को यह सुनते ही अत्यंत क्रोध आया। वह श्राप देने ही वाले थे कि उन्हें लगा कि महादेव कुछ कहना चाहते हैं। महादेव की आज्ञा समझ उन्होंने अपने बड़े भाई महर्षि अगस्त्य एवं अन्य सभी सप्तऋषियों को इंगित किया, और शांत रहने की प्रार्थना की। तब सभी सप्तऋषि नहुष की पालकी ले कर चले। नहुष की अधीरता बढ़ती जा रही थी। उसे शीघ्र अति शीघ्र शची के पास पहुँच विवाह रचाना था। यह सप्तऋषि धीमी चाल से चल रहे थे। क्रोध में उसने महर्षि अगस्त्य को लात मार कहा, ‘सर्प, सर्प’ (संस्कृत शब्द अर्थात शीघ्र चलो, शीघ्र चलो)। महर्षि अगस्त्य इस अपमान को नहीं सह सके। उन्हें क्रोध आ गया और तुरंत उन्होंने श्राप दिया, 'सर्प भव' (अर्थात सर्प हो जा)। महर्षि अगस्त्य के मुख से यह शब्द निकले ही थे कि नहुष का शरीर सर्प में परिवर्तित हो गया। उसने अजगर का रूप धारण कर लिया।

तभी वहां महादेव उपस्थित हो गए। सभी सप्तऋषियों का महादेव ने अभिवादन किया और कहा कि इस दुष्ट को अपनी करनी का फल मिल गया। अब आप अपने अपने आश्रम जाइए। ऐसा कहकर वह अंतर्धान हो गए। तभी अशोकसुन्दरी को पता लगा कि उसके पति को महर्षि अगस्त्य के श्राप ने अजगर के रूप में परिवर्तित कर दिया है। वह महादेव के पास आईं तथा श्राप को निरस्त करने की प्रार्थना करने लगीं।

महादेव ने उन्हें समझाया कि नहुष का पाप अक्षम्य है। फिर भी तुम महर्षि अगस्त्य से दया की पुकार लगा सकती हो। तब अशोकसुन्दरी महर्षि अगस्त्य के आश्रम में आईं और उनके चरण पकड़ अपने पति के अक्षम्य पाप पर दया की प्रार्थना की। महर्षि अगस्त्य का हृदय पिघल गया। उन्होंने कहा, ‘पुत्री, श्राप तो वापस नहीं लिया जा सकता, लेकिन द्वापर युग में जब हरि विष्णु कृष्ण के स्वरुप में अवतार लेंगे तब तुम्हारे वंशज पांडवों द्वारा इसका उद्धार होगा।‘

इसके पश्चात महादेव ने इंद्र को यज्ञ द्वारा ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त किया और उसे उसकी राजधानी अमरावती भेज दिया, जहाँ फिर से वह स्वर्गाधिपति बन गए।

सम्राट नहुष के छः पुत्र थे, याति, ययाति, सयाति, अयाति, वियाति, तथा कृत। याति ने संन्यास ले लिया था, अतः ययाति का राज्याभिषेक किया गया और वह चंद्र वंश के सम्राट बने। सम्राट ययाति का विवाह गुरुदेव शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी एवं सम्राट वर्षपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के साथ हुआ था।

'गुरुदेव शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी!', यह नाम सुनकर आचार्य अचंभित हो गए और राजकुमार बाण से बोले, 'हे पुत्र, क्या गुरुमाँ ऊर्जस्वती ने मेरे महातप जाने के बाद किसी कन्या को भी जन्म दिया था?'

राजकुमार बाण हंस कर बोले, 'नहीं प्रपितामह, गुरुदेव ने इंद्र की पुत्री जयन्ती के साथ विवाह किया था। देवयानी माता जयन्ती की पुत्री थीं।'

विस्मित स्वर में आचार्य स्वर्भानु बोले, 'पुत्र, गुरु शुक्राचार्य ने कैसे और किस परिस्थिति में इंद्र की पुत्री जयन्ती से विवाह किया, मुझे संक्षेप में बताओ।'

'अवश्य प्रपितामह', मधुर स्वर में बोले राजकुमार बाण।

जयन्ती

राजकुमार बाण आगे बोले, 'प्रभु, मैं आपको बता ही चुका हूँ कि आपके महातप जाने के पश्चात सम्राट वृषपर्वा की प्रार्थना पर गुरुदेव शुक्राचार्य ने दैत्य और दानव वंशों के हित के लिए महादेव से मृत संजीवनी शक्ति विद्या का वरदान लेने हेतु तप के लिए वन को प्रस्थान किया। उन्होंने बड़ा घोर तप किया। उनके तप से इंद्रदेव का सिंहासन हिल उठा। इंद्रदेव ने समझा कि गुरुदेव शुक्राचार्य उनसे स्वर्ग का सिंहासन छीनने के लिए इतना घोर तप कर रहे हैं, अतः उनका तप भंग करने के लिए उसने अपनी अत्यंत सुंदरी पुत्री जयन्ती को भेजा। जयन्ती ने अपने कामपूर्ण कृत्य से गुरुदेव का तप भंग करने के अति प्रयास किए, परन्तु गुरुदेव की समाधि अटल रही। वह गुरुदेव के व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित हो गईं। जब गुरुदेव की समाधि खुली तब जयन्ती ने अपना परिचय देते हुए उनसे विवाह करने का निवेदन किया। साथ में यह भी वचन दिया कि वह गुरुदेव के तप में विघ्न नहीं डालेंगी। गुरुदेव ने उनकी विनती स्वीकार कर उनसे विवाह कर लिया। इस विवाह से देवयानी नाम की अति सुन्दर कन्या ने जन्म लिया।'

आचार्य स्वर्भानु बोले, 'तो क्या मुझे गुरुदेव शुक्राचार्य के साथ गुरु माँ जयन्ती के भी दर्शन होंगे?'

राजकुमार बाण तब सर नवाकर बोले, 'हे तात श्री, त्रिक्काकरा में आपको केवल परम श्रेष्ठ गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव के ही दर्शन हो पाएंगे। गुरु माँ जयन्ती तो कुछ समय के पश्चात ही अपने पिता इंद्रदेव के पास लौट गईं थीं। अपने पिता के प्रति मोह में वह फिर कभी गुरुदेव के पास वापस नहीं आईं। जब एक समय तक गुरु माँ जयन्ती नहीं लौटीं, तब गुरुदेव ने उनका त्याग कर दिया और स्वयं ही पुत्री देवयानी का पालन पोषण किया। इंद्रदेव एवं स्वयं नारायण के समझाने बुझाने पर गुरु माँ जयन्ती ने तब सम्राट ऋषभदेव से विवाह कर लिया। मुझे नहीं लगता कि गुरु माँ जयन्ती के सम्राट ऋषभदेव से विवाह के पश्चात गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव उनसे कभी भी मिले हैं।

इन सभी नवीन समाचारों पर आचार्य स्वर्भानु विस्मित हो गए और प्रेम से राजकुमार बाण से बोले, 'हे प्रिय पुत्र बाण, यह सम्राट ऋषभदेव कौन हैं जिनसे गुरु माँ जयन्ती ने विवाह किया? मुझे इनके बारे में कुछ संक्षिप्त में बताओ।'

राजकुमार बाण ने तब आचार्य स्वर्भानु को सम्राट ऋषभदेव की कथा सुनानी प्रारम्भ की।

'तात श्री, पृथ्वी लोक पर अयोध्या नाम का एक शक्तिशाली एवं प्रसिद्ध राज्य है। एक समय वहां के चक्रवर्ती सम्राट नाभि हुए। सम्राट नाभि निःसंतान थे। उन्होंने संतान प्राप्ति के लिए अपनी पत्नी सम्राज्ञी मेरुदेवी के साथ वन जाकर विष्णुदेव की घोर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न हो विष्णुदेव ने उन्हें दर्शन दिए तथा वर माँगने को कहा। सम्राट नाभि ने उन्हीं जैसा पुत्र उन्हें प्राप्त हो, ऐसा वर माँगा। इस पर विष्णुदेव बोले, 'तथास्तु। सम्राट नाभि, मेरा ही एक प्रतिरूप तुम्हारे गृह में सम्राज्ञी मेरुदेवी के कोख से जन्म लेगा। अब तुम अपनी राजधानी अयोध्या वापस जाओ और समय की प्रतीक्षा करो।'

समय आने पर सम्राज्ञी मेरुदेवी गर्भवती हुईं और उनके कोख से ऋषभदेव ने जन्म लिया।

'जन्म के समय ही नाभि नन्दन के अंग विष्णु देव के समान वज्र-वत्स आदि चिन्हों से युक्त थे। पुत्र के अत्यन्त सुन्दर सुगठित शरीर, कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूरवीरता आदि गुणों को देखकर महाराज नाभि ने उसका नाम 'ऋषभ' अर्थात श्रेष्ठ रखा। देखते देखते राजकुमार ऋषभ व्यस्क हो गए। तब सम्राट नाभि ने उन्हें सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया। तब वह स्वयं अपनी धर्म पत्नी सम्राज्ञी मेरूदेवी के साथ तप करने वन में चले गये। तात श्री, ऐसा प्रसिद्ध है कि ऋषभदेव की राज्य व्यवस्था और शासन प्रणाली सर्वथा अनुकरणीय, अभिनंदनीय एवं आदर्श थी। उनकी सम्पूर्ण प्रजा उन्हें स्वयं विष्णुदेव के समान आदर और सम्मान करती थी।

सम्राट ऋषभदेव की प्रतिष्ठा देख इंद्रदेव को ईर्ष्या होने लगी। उन्होंने संभवतः सोचा कि वह स्वयं स्वर्गपति हैं। उन्हीं के द्वारा वर्षा से सभी पृथ्वी वासियों का भरण-पोषण होता है, उन्हें जीवन-दान मिलता है। फिर भी पृथ्वी की प्रजा उनके प्रति इतनी श्रद्धा

नहीं रखती। इसके विपरीत पृथ्वी के एक नरेश को इतना महत्व देती है। प्रतिशोध की भावना से तब इन्द्र ने ईर्ष्यावश एक वर्ष तक अयोध्या में वर्षा बन्द कर दी। सम्राट ऋषभदेव ने इंद्रदेव की ईर्ष्या एवं द्वेष की वृत्ति और अहंकार को समझकर योग बल से सजल घने बादलों की सृष्टि की। पूरा आकाश काले मेघों से आच्छादित हो गया। पृथ्वी पर जल ही जल हो गया। समस्त देश की भूमि शस्य-श्यामला बन गयी।

इसी मध्य इंद्रदेव का मिलन ब्रह्मऋषि नारद से हो गया। ब्रह्मऋषि नारद ने उन्हें बताया कि सम्राट ऋषभदेव कोई और नहीं, बल्कि विष्णुदेव के ही स्वरुप हैं। इंद्रदेव का अहंकार उतर गया। इंद्रदेव ने तब सम्राट ऋषभदेव के प्रभाव को जाना। वह पृथ्वी पर आए और उन्होंने ऋषभदेव की स्तुति की। अपनी पुत्री जयन्ती का विवाह उनके साथ करने का वचन दे वह स्वर्गलोक लौट आए। उन्होंने सम्राट ऋषभदेव को दिए वचन के बारे में तब पुत्री जयन्ती को बताया और उनसे विवाह करने का अनुग्रह किया। लेकिन गुरु माँ जयन्ती उनसे विवाह करना ही नहीं चाहतीं थीं। तब इंद्रदेव ने विष्णुदेव से प्रार्थना की और उन्हें उनको समझाने के लिए कहा। विष्णुदेव ने तब गुरु माँ जयंती को बतलाया कि ऋषभदेव कोई और नहीं, उनके ही स्वरुप हैं। तुम उनसे विवाह कर लो।

विष्णुदेव के समझाने पर गुरु माँ जयन्ती सम्राट ऋषभदेव से विवाह करने को तैयार हो गईं और उन्होंने उनसे विवाह कर लिया। उनके कई पुत्र हुए जिनमें राजकुमार कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, अविर्होत्र, दुरमिल, चमस और करभाजन ने संन्यास ले लिया। उन्होंने अपने अन्य पुत्रों को शास्त्रवत शिक्षा दी और बड़े पुत्र को राज्य दे स्वयं भी संन्यास ले लिया। उनके संन्यास लेने के पश्चात कुछ समय तक तो राजमाता के रूप में गुरु माँ जयन्ती अयोध्या में ही रहीं, तत्पश्चात वह वापस अपने पिता इंद्रदेव के पास आ गईं। ऐसा सुनने में आता है कि वह अब वहीं रहतीं हैं, और एकांतवास में हैं। वह किसी से नहीं मिलतीं।'

'ऋषभदेव ने संन्यास प्राप्ति के पश्चात नारायण का गहन तप किया। उन्हें सभी सिद्धियां प्राप्त हुईं। लेकिन उन्होंने सिद्धियों का त्याग कर दिया। वह तो सिद्धों के सिद्ध महासिद्ध बन गए। सिद्धियाँ तो संभवतः उनकी चरण धूल का स्पर्श प्राप्त करने के लिये लालायित रहतीं। संभवतः आपको पता न हो, मेरे पिता चक्रवर्ती सम्राट महाबालि भी स्वयं नारायण के अनन्य भक्त हैं। वह बताते हैं कि ऋषभदेव ने साधकों,

भक्तों एवं योगाभ्यासियों के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित किया। जब ऋषभदेव को पञ्च-भौतिक शरीर त्याग करने की इच्छा हुई तब एक दिन सहसा प्रबल झंझावत से घर्षण के कारण वन के बाँसों में आग लग गयी। वह आग अपनी लपटों से सम्पूर्ण वन को भस्मसात् करने लगी। ऋषभदेव भी वहीं विद्यमान थे। वह इस अग्नि में चुपचाप बैठे रहे। उनका नश्वर शरीर अग्नि की भयानक ज्वाला में जल कर भस्म हो गया और वह स्वयं विष्णुदेव में समाहित हो गए।‘

आचार्य स्वर्भानु तब बोले, 'और प्रिय पुत्र, देवयानी का क्या हुआ। यह कथा भी मुझे सुनाओ।'

तब राजकुमार बाण ने देवयानी की कथा कहना प्रारम्भ किया।

देवयानी

राजकुमार बाण आगे बोले, 'हे प्रपितामह, गुरुदेव शुक्राचार्य के तप से प्रसन्न हो महादेव ने उन्हें दर्शन दिए एवं मृत संजीवनी शक्ति विद्या वरदान स्वरुप दी। विद्या लेकर गुरुदेव तब देवयानी के साथ सम्राट वर्षपर्वा की राजधानी आ गए। सम्राट वर्षपर्वा की राजधानी के निकट ही एक अत्यंत सुन्दर रमणीक पर्वत स्थल पर उन्होंने अपना आश्रम बना लिया। सम्राट वर्षपर्वा ने आचार्य शुक्रदेव के राजधानी पहुंचते ही उनको उच्च स्थान दे अपना एवं समस्त दानव वंश का उन्हें गुरु घोषित कर दिया। आचार्य शुक्रदेव दानव साम्राज्य के अति पूजनीय विशिष्ट महापुरुष घोषित कर दिए गए। किसी भी प्रकार उनकी अवज्ञा अथवा उनका अपमान करने वाले को मृत्युदंड का प्रावधान कर दिया गया।‘

‘देवों और दानवों का युद्ध तो निरंतर होता रहा, लेकिन दानवों के मृत योद्धाओं को गुरुदेव शुक्राचार्य अपनी मृत संजीवनी विद्या से जीवित कर देते थे। देवों के गुरु आचार्य बृहस्पति को इस विद्या का ज्ञान नहीं था। अब युद्ध में शनैः शनैः दानवों का पलड़ा भारी पड़ने लगा। इस स्थिति से विचलित हो देवों के गुरु आचार्य वृहस्पति ने एक युक्ति निकाली। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र कच को आदेश दिया कि वह दानवों के गुरु शुक्राचार्य का शिष्य बने और उनसे किसी भी प्रकार मृत संजीवनी विद्या सीखा। पिता का आदेश मान कच आचार्य शुक्रदेव के पास पहुंचे और विनती की कि वह उन्हें अपना शिष्य स्वीकार करें। आचार्य शुक्रदेव ने दिव्य शक्ति से तुरंत जान लिया कि कच देवों के गुरु आचार्य वृहस्पति के पुत्र हैं और उनसे संजीवनी विद्या सीखने आए हैं। प्रत्यक्ष में उन्होंने कच से पूछा, 'हे वत्स, अपना परिचय दो।'

तब कच ने गुरुदेव शुक्राचार्य के चरण पकड़ लिए और बोले, ' हे प्रभु, मैं कच, देवताओं के गुरु आचार्य बृहस्पति का पुत्र और प्रजापति महर्षि अंगिरा का पौत्र आपकी शरण में रहकर आपसे दीक्षा लेना चाहता हूँ।'

कच की सत्यनिष्ठा से गुरुदेव शुक्राचार्य प्रभावित हो गए। आचार्य का विशाल हृदय, उन्होंने कच को अपना शिष्य बना लिया। उन्होंने कच को आदेश दिया कि आश्रम में रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए वह दीक्षा ग्रहण करें।

अब कच गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव के शिष्य बन आश्रम में रहने लगे। उनके मधुर स्वभाव और महान व्यक्तित्व से देवयानी अति प्रभावित हो गईं। देवयानी को कच से प्रेम हो गया। इस प्रेम का आभास कच को नहीं था। वह तो उन्हें गुरु-पुत्री गुरु-बहन के समान ही आदर करते थे।

कच का परिचय अधिक दिनों तक दानवों से गुप्त न रह सका। जब उन्हें पता चला कि देवों के गुरु आचार्य बृहस्पति के पुत्र कच गुरुदेव शुक्राचार्य के आश्रम में उनसे दीक्षा ले रहे हैं, और वह उनसे मृत संजीवनी विद्या सीखने आए हैं तो उन्हें अति क्रोध आया। उन्होंने तुरंत उनकी हत्या करने की योजना बनाई और इसे कार्यान्वित भी कर दिया। एक दिन जब कच आश्रम की गायों को चराने गए हुए थे, तब वहां अकेला देख दानवों ने उनका वध कर दिया।

शाम को जब सभी गायें बिना कच के आश्रम लौट आयीं तब गुरुदेव शुक्राचार्य को कुछ शंका हुई और वह कच को ढूंढ़ने वन में निकल पड़े। जंगल में उन्हें कच का शव मिला। शव लेकर वह वापस अपने आश्रम में लौटे। शव को देवलोक में आचार्य वृहस्पति के पास भेजने का प्रबंध कर ही रहे थे कि देवयानी ने रोते हुए उनसे उन्हें जीवित करने की प्रार्थना की। देवयानी के नेत्रों में गुरुदेव अश्रु नहीं देख पाए और उन्होंने देवयानी के कथनानुसार कच को मृत संजीवनी विद्या से जीवित कर दिया।

दानवों का साहस गुरुदेव से तो कुछ कहने का नहीं था, लेकिन वह फिर से कच की हत्या की दूसरी योजना बनाने लगे। कच को एक स्थान पर अकेला देख उन्होंने उसे मारकर उसके शव के टुकड़े टुकड़े कर एक भेड़िये को खिला दिए। जब देर रात तक कच वापस आश्रम नहीं लौटे तो अपनी दिव्य दृष्टि से गुरुदेव ने तुरंत यह जान लिया कि दानवों ने उसे फिर मार डाला है। इस बार उसके शव के टुकड़े टुकड़े कर एक भेड़िये को खिला दिए हैं। देवयानी का तो यह सुनते ही रो रो कर बुरा हाल हो गया। देवयानी के प्रति प्रेम के कारण आचार्य ने उस भेड़िए को खोज निकाला और जब मृत संजीवनी विद्या का आवाहन किया तो कच भेड़िए का पेट फाड़कर जीवित हो निकल आए। इस प्रकार कच को दोबारा जीवन दान मिला।

दानवों ने जब कच को फिर से जीवित देखा तो उन्हें इसकी अनुभूति हो गई कि देवयानी का प्रेम कच को मरने नहीं देगा। अब उन्होंने एक अति विचित्र युक्ति सोची।

किसी प्रकार यदि कच को मारकर उसके अवशेषों को आचार्य शुक्रदेव को ही पिला अथवा खिला दिया जाए तो आचार्य मृत संजीवनी विद्या का प्रयोग नहीं कर पाएंगे। यदि ऐसा करेंगे तो वह स्वयं मृत्यु को प्राप्त होंगे। ऐसा विचार कर उन मूर्खों ने तीसरी बार जब कच आश्रम की गैयों को वन में चरा रहे थे तो उन्हें अकेला देख मार डाला। दानवों ने तब कच के शव को जला दिया।

कच के शव की भस्म ले वह गुरुदेव शुक्राचार्य के पास पहुंचे और युक्ति से वारुणी में मिलाकर भस्म को गुरुदेव शुक्राचार्य को पिला दिया।

इस बार भी जब सांय को गैयों के लौटने पर कच नहीं लौटे तो देवयानी को फिर शंका हुई। उन्होंने अपने पिता से अनुरोध किया कि उन्हें ढूंढ लाएं।

आचार्य शुक्रदेव ने तब दिव्य दृष्टि से जान लिया कि कच तो अब उनके ही उदर में है। गुरुदेव शुक्राचार्य ने देवयानी से कहा, 'पुत्री, मैं बार बार कच को जीवित करता हूँ, और दानव उसे हर बार मार डालते हैं। अब मैं कब तक उसको जीवित करता रहूँगा?'

तब देवयानी ने नेत्रों में अश्रु भरकर आचार्य से कहा, 'हे पिताश्री, मैं कच के बिना जीवित नहीं रह सकती। आप कुछ भी कीजिए। उन्हें फिर से जीवन दान दीजिए।'

तब गुरुदेव शुक्राचार्य प्रेम भरी वाणी में देवयानी से बोले, 'हे प्रिय पुत्री, इस बार दानवों ने कच को मारकर उसके शव को जलाकर उसकी भस्म को मुझे पिला दिया है। यदि मैं उसे जीवित करूंगा तो वह मेरा उदर फाड़ बाहर निकलेगा, और मैं स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँगा।'

यह सुनकर देवयानी स्तब्ध हो गईं। यदि प्रेमी को जीवित किया तो पिता को खो देंगी। वह तो किसी को भी खोना नहीं चाहती थीं। पिता के चरण पकड़ लिए और बोलीं, 'इस ब्रह्माण्ड में आपसे अधिक बुद्धिमान कोई आचार्य नहीं है। स्वयं ब्रह्मदेव भी इसको मानते हैं। कोई न कोई उपाय आप अवश्य सोच सकते हैं जिस से दोनों को ही कोई क्षति न हो।'

अपनी पुत्री को इतना व्यथित देख तब आचार्य शुक्रदेव बोले, 'हे पुत्री, मैं योग शक्ति से कच की भस्म को मृत संजीवनी विद्या की शिक्षा प्रदान करता हूँ। जब मैं उसे जीवित करूंगा तो वह मेरा उदर फाड़ अवश्य बाहर आ जाएगा और मैं मृत्यु को प्राप्त हूंगा। लेकिन तब वह मेरे द्वारा सिखाई हुई मृत संजीवनी विद्या से मुझे जीवित कर सकेगा।'

गुरुदेव शुक्राचार्य ने ऐसा ही किया। कच के शव की भस्म को मृत संजीवनी विद्या की दीक्षा दी। जब कच को विद्या मिल गई, तब उन्होंने उसे जीवित कर दिया। कच मृत्यु से ऐसे उठकर बैठ गया जैसे कुछ हुआ ही न हो। फिर उसने देवयानी को रोते हुए और गुरुदेव शुक्राचार्य का शव देखा। तुरंत स्मृति आ गई। देवयानी को सांत्वना दी और सीखी हुई मृत संजीवनी विद्या से गुरुदेव शुक्राचार्य को जीवित कर दिया।

इस प्रकार कच का मृत संजीवनी विद्या सीखने का उद्देश्य भी पूर्ण हो गया। विधि का विधान तो देखो। जो दानव नहीं चाहते थे, उन्हीं के कारण ऐसा संभव हो सका।

अब कच ने गुरुदेव शुक्राचार्य से अपने पिता के पास स्वर्गलोक वापस जाने की विदा मांगी, जो उन्होंने सहर्ष दे दी।

यह जान कि अब कच सदैव के लिए जाना चाहते हैं, देवयानी ने कच से कहा, 'हे ऋषिकुमार, आप सदैव ही एक आदर्श शिष्य की तरह यहाँ रहे। अब आपकी शिक्षा पूर्ण हुई और आपका ब्रह्मचर्य प्रण भी पूरा हुआ। मैं आपसे प्रेम करती हूँ। आप मुझसे विवाह कर लीजिए।'

यह सुन कच स्तब्ध हो गए। उन्होंने तो यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था। वह तो गुरु-पुत्री देवयानी को अपनी बहन की दृष्टि से देखते थे।

अचंभित एवं कम्पित स्वर में वह देवयानी से बोले, 'प्रिय देवयानी, तुम मेरे गुरु की पुत्री हो, मेरी गुरु-बहन हो। फिर मैं तुम्हारे पिता के उदर से जीवित हो कर निकला हूँ। अतः एक प्रकार से हम दोनों एक ही माता पिता की कोख से जन्मे हैं। यदि मैं तुमसे, अर्थात अपनी बहन से विवाह करूँ, यह तो बड़ा ही अधर्म होगा। यह असंभव है।'

प्रेमांध देवयानी को कच की बात सुनकर क्रोध आ गया और वह बोलीं, 'हे ऋषिपुत्र, इस प्रकार तुम मेरा तिरस्कार करोगे तो मैं तुम्हें श्राप देती हूँ कि मेरे पिता द्वारा सिखाई हुई मृत संजीवनी विद्या तुम्हें कभी सिद्ध नहीं होगी।'

कच को देवयानी का यह श्राप अति अनुचित लगा। उन्हें भी क्रोध आ गया और उन्होंने भी श्राप दे दिया, 'हे ब्राह्मण-पुत्री, तुम्हारा तिरस्कार मेरे लिए धर्म के अनुरूप था। लेकिन तुमने काम के वशीभूत होकर मुझे श्राप दिया है। अब मैं भी तुम्हें श्राप देता हूँ कि कोई भी ब्राह्मण-कुमार तुमसे विवाह नहीं करेगा।'

अभाग्य से देवयानी के श्राप के कारण कच कभी मृत संजीवनी विद्या का उपयोग नहीं कर पाए।

कच के स्वर्गलोक वापस जाने के बाद देवयानी उदास रहने लगीं। उन्हें अपने तन एवं मानसिक स्थिति का भी भान नहीं रहता था। दानवराज वृषपर्वा की एक पुत्री थीं, शर्मिष्ठा। वह और देवयानी सम-आयु की ही थीं। बहुधा शर्मिष्ठा देवयानी के पास आचार्य शुक्रदेव के आश्रम आ जाती थीं और दोनों घनिष्ठ सहेलियों के समान वार्तालाप करते रहते थे। शर्मिष्ठा राजकुमारी होने के साथ साथ एक अत्यंत सुन्दर काया की नारी होने के अभिमान में रहती थीं। वह देवयानी से वार्ता तो अवश्य करती थीं, परन्तु अपने को एक अति सुन्दर राजकुमारी एवं देवयानी को अपने पिता सम्राट वर्षपर्वा के एक सेवक की पुत्री समझ कर। एक दिन राजकुमारी शर्मिष्ठा देवयानी एवं अन्य सखियों के साथ सरोवर में जलक्रीड़ा कर रहीं थीं। जल क्रीड़ा करने के पश्चात जब देवयानी जल से निकलीं तो उन्होंने शर्मिष्ठा के राज परिधानों का धारण कर लिया। ध्यान कच में लगे रहने के कारण संभवतः उन्हें इस का ध्यान ही नहीं आया कि यह परिधान राजकुमारी शर्मिष्ठा का है। जब राजकुमारी शर्मिष्ठा ने देखा कि देवयानी ने उनके राजसी परिधानों का धारण कर लिया है, तो वह क्रोध में आ गईं। देवयानी का अपशब्दों से अपमान करने लगीं। उन्होंने देवयानी के पिता आचार्य शुक्रदेव को अपने पिता का एक सेवक तक बता दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने क्रोध में देवयानी को एक कुएँ में धकेल दिया, और अपनी सहेलियों के साथ मद मस्ती में अपने महल चली गईं।

देवयानी अपने प्राण बचाने के लिए कुंए के अंदर से सहायता की पुकार लगाने लगीं। संयोगवश उसी समय चंद्रवंशी महाराज नहुष और माँ पार्वती की पुत्री अशोकसुन्दरी के पुत्र सम्राट ययाति वहां से जा रहे थे। वह जल पीने के लिए कुएं पर रुके तब उन्हें कुएं के अंदर से देवयानी का सहायता के लिए पुकारता हुआ स्वर सुनाई दिया। उन्होंने देवयानी को से बाहर निकाला।

देवयानी ने सम्राट ययाति से कहा, 'हे सम्राट, मैं गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी हूँ। आपने मेरा हाथ पकड़कर मेरी जान बचाई है। अब आप ही मेरा वरण कीजिये।'

सम्राट ययाति ने देवयानी के इस प्रस्ताव का उत्तर देते हुए कहा, 'हे देवी, कहाँ आप ब्राह्मण श्रेष्ठ गुरु शुक्राचार्य की पुत्री और मैं एक क्षत्रिय। हमारा मिलन कैसे संभव है?'

तब देवयानी ने कच के द्वारा उन्हें दिए हुए श्राप की चर्चा की और बताया कि उनके भाग्य में ब्राह्मण-पुत्र से नहीं बल्कि एक क्षत्रिय से ही विवाह होने की नियति है। सम्राट ययाति ने इस पर विचार करने को कहा और देवयानी से प्रार्थना की कि वह अपने आश्रम पधारें।

देवयानी जब आश्रम पहुँची तो उन्होंने अपने पिता को राजकुमारी शर्मिष्ठा के द्वारा किए हुए अपमान और उसे कुंए में धकेलने की बात बताई। उन्होंने यह भी बताया कि अहंकारी राजकुमारी शर्मिष्ठा ने आचार्य शुक्रदेव को उसके पिता के संरक्षण में पलने वाला एक सेवक कहा। गुरु शुक्राचार्य को इस पर अति क्रोध आया और उन्होंने वृषपर्वा का राज्य छोड़कर जाने का निर्णय कर लिया। जब इस बात का समाचार दानवराज वृषपर्वा को मिला तो उन्होंने गुरु के सामने हाथ जोड़कर उनसे ना जाने की विनती की। दानवराज के बार बार निवेदन करने पर गुरु शुक्राचार्य ने इस बात का निर्णय अपनी पुत्री देवयानी पर छोड़ दिया। देवयानी ने कहा कि यदि शर्मिष्ठा जीवन भर उनकी दासी बनकर रहे तब ही गुरु शुक्राचार्य दानवों के साथ रह सकते हैं। राजकुमारी शर्मिष्ठा अब होश में आ चुकी थीं और अपने किए कृत्य पर अत्यंत शर्मिन्दा थीं। उन्होंने अपने पिता और कुल की भलाई का विचार कर देवयानी की शर्त मान ली और उनकी दासी बनकर गुरु शुक्राचार्य के आश्रम में रहने लगीं।

कुछ समय बीता। एक दिन देवयानी अपनी दासियों के साथ आश्रम के समीप जंगल में विहार कर रहीं थीं कि संयोगवश सम्राट ययाति के उन्हें दोबारा दर्शन हुए। देवयानी ने सम्राट ययाति से फिर याचना की, 'हे सम्राट, आपने मेरा हाथ पकड़ा है। मैंने हृदय से आपको अपना पति चुन लिया है। कृपया आप मुझे स्वीकार करिये।'

सम्राट ययाति ने देवयानी से फिर से पहले वाली बात ही दोहरा दी, 'देवी, आप ब्राह्मण श्रेष्ठ गुरुदेव शुक्राचार्य की पुत्री हैं, और मैं एक क्षत्रिय। आपके पिता इस मिलन की स्वीकृति नहीं देंगे।'

इस पर देवयानी ने कहा, 'हे श्रेष्ठ माँ अशोकसुंदरी पुत्र, यदि मेरे पिता इस विवाह के लिए तैयार हो जाएं, तब तो आपको कोई आपत्ति नहीं होगी।'

देवयानी की बातों से प्रभावित सम्राट ययाति ने इस पर हामी भर ली।

आश्रम वापस आने पर देवयानी ने अपने पिता गुरुदेव शुक्राचार्य से अपने मन की बात कही, 'पिताश्री, जिस दिन शर्मिष्ठा ने मुझे कुंए में धकेल दिया था, तब सम्राट नहुष पुत्र सम्राट ययाति ने मुझे कुंए से निकाला था और मेरे प्राणों की रक्षा की थी। उन्होंने कुंए से निकालते हुए मेरा हाथ पकड़ा था। तब से ही मैंने हृदय से उन्हें वरण कर लिया है। सम्राट ययाति मुझ से विवाह करने को तैयार हैं, यदि आपकी अनुमति हो।'

अपनी पुत्री की इच्छा जानकर और कच के श्राप को ध्यान में रखकर गुरुदेव शुक्राचार्य ने देवयानी से सम्राट ययाति के विवाह की अनुमति दे दी। वह स्वयं देवयानी के विवाह का प्रस्ताव लेकर सम्राट ययाति के पास गए।

सम्राट ययाति ने गुरु शुक्राचार्य का भव्य स्वागत किया और एक उच्च आसन उन्हें बैठने के लिए दिया। आचार्य शुक्रदेव का देवयानी के साथ अपना विवाह प्रस्ताव सुन तुरंत उन्होंने अपनी सहमति दे दी। तत्पश्चात सम्राट ययाति का विवाह देवयानी के साथ हो गया। शर्मिष्ठा भी देवयानी के साथ उनकी दासी के रूप में सम्राट ययाति के महल में ही आ गईं।

समय के साथ देवयानी के शर्मिष्ठा के प्रति अपमान एवं क्रोध के घाव भी भर गए। वह शर्मिष्ठा को अपनी सहेली के रूप में प्रेम करने लगीं। देवयानी ने सम्राट ययाति से प्रार्थना कर एक अलग महल शर्मिष्ठा के लिए बनवा दिया। वह उसमें रहने लगीं।

सम्राट ययाति जानते थे कि शर्मिष्ठा कोई और नहीं बल्कि दानवराज वृषपर्वा की पुत्री हैं। शर्मिष्ठा की सुंदरता ने उनका हृदय जीत लिया था। एक दिन उन्होंने अपना प्रेम निवेदन शर्मिष्ठा से कर दिया। शर्मिष्ठा ने उनका प्रेम निवेदन स्वीकार किया और दोनों ने देवयानी से छुपकर गांधर्व विवाह कर लिया।

कुछ समय बीतने के बाद ययाति को देवयानी से यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र हुए। शर्मिष्ठा से उन्हें द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र हुए।

एक दिन देवयानी शर्मिष्ठा से मिलने उनके महल पहुँची। तब शर्मिष्ठा महल के उपवन में कुछ बच्चों के साथ खेल रहीं थीं। उन्हें आश्चर्य हुआ और उन्होंने बच्चों से शर्मिष्ठा के समक्ष ही पूछ लिया, 'हे बालको, देखने में तो तुम राजकुमारों जैसे प्रतीत होते हो। किस देश के राजकुमार हो, और तुम्हारे पिता कौन हैं?'

तब बच्चों ने सम्राज्ञी देवयानी का अभिनंदन करते हुए उन्हें बता दिया कि उनके पिता तो इसी राज्य के सम्राट ययाति हैं।

यह सुन देवयानी क्रोध से व्याकुल हो गईं। वह किसी से कुछ बोलीं तो नहीं, परन्तु पति सम्राट ययाति को छोड़कर अपने पिता के आश्रम चली गईं। सम्राट ययाति एवं शर्मिष्ठा ने उन्हें गुरुदेव शुक्राचार्य के आश्रम आ मनाने के अति प्रयत्न किए, लेकिन उनका क्रोध शांत ही नहीं हुआ।

उस समय गुरुदेव शुक्राचार्य अपने इष्ट एवं गुरु महादेव से मिलने कैलाश पर्वत गए हुए थे। कुछ वर्षों बाद गुरु शुक्राचार्य जब कैलाश पर्वत से वापस लौटे तो देवयानी को आश्रम में देखकर अचंभित हो गए। उन्होंने देवयानी से पति ययाति को छोड़ने का कारण पूछा। तब देवयानी ने उन्हें सारी कथा कह सुनाई।

आचर्य शुक्रदेव ने क्रोधित हो तब सम्राट ययाति को श्राप दे दिया, 'हे सम्राट, यौवन में कामांध हो तूने मेरी प्रिय पुत्री के साथ धोखा दिया है। तेरा यौवन ही इसका कारण है, अतः तू तुरंत वृद्धावस्था को प्राप्त हो।'

आचार्य शुक्रदेव के मुख से यह शब्द निकले ही थे कि सम्राट ययाति एक वृद्ध व्यक्ति के रूप में परिवर्तित हो गए। इसका कारण जानने का उन्होंने प्रयास किया। तब पता लगा कि यह आचार्य शुक्रदेव के श्राप का परिणाम है। तुरंत दौड़ कर आचार्य शुक्रदेव के आश्रम पहुंचे, और उनके पैरों में पड़कर क्षमा याचना करने लगे। आचार्य शुक्रदेव ने देवयानी की ओर मुड़कर कहा, 'हे सम्राट, तुम्हें क्षमा देवयानी ही कर सकती है।'

देवयानी से क्षमा याचना करते हुए सम्राट के नेत्रों से अश्रु धारा बहने लगी। उन्हें अपने किए पर अति पछतावा था। देवयानी का भी हृदय पिघल गया। पिता से उन्हें श्राप से मुक्ति देने की विनती करने लगीं।

देवयानी की विनती पर आचार्य शुक्रदेव ने सम्राट ययाति से कहा, 'हे सम्राट, जिस प्रकार तरकश से निकला हुआ तीर वापस नहीं लिया जा सकता, उसी प्रकार एक बार दिया हुआ श्राप भी वापस नहीं लिया जा सकता। हाँ, यदि तेरा कोई पुत्र स्वेच्छा से तेरी वृद्धावस्था स्वीकार कर ले, तो उस पुत्र की युवावस्था मैं तुझे प्रदान कर सकता हूँ।'

आचार्य को प्रणाम कर तब सम्राट ययाति देवयानी के साथ अपने महल आ गए। उन्होंने आचार्य शुक्रदेव के श्राप के बारे में समस्त परिवार को बताया और एक एक कर आपने पांचो पुत्रों से उनकी युवावस्था माँगी। सम्राट ययाति के सबसे छोटे पुत्र पुरु ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। राजकुमार पुरु को लेकर सम्राट ययाति आचार्य शुक्रदेव के पास पहुंचे। आचार्य ने जल का संकल्प लिया और तुरंत सम्राट ययाति की वृद्धावस्था राजकुमार पुरु को दे दी।

अपने पुत्र पुरु की युवावस्था लेकर ययाति ने वर्षों तक सांसारिक जीवन के सुखों का भोग किया। अंततः सम्राट ययाति को ज्ञान की प्राप्ति हुई। सांसारिक सुखों की लालसा तो कभी समाप्त नहीं होती। सच्चा सुख इनका भोग करने में नहीं, अपितु त्याग करने में है। ऐसा सोचकर वह आचार्य के पास दोबारा आए और उनसे प्रार्थना

की कि पुरु की वृद्धावस्था वह अब उन्हें वापस कर दें और पुरु को यौवन प्रदान करें। सम्राट ययाति की इच्छानुसार तब आचार्य ने राजकुमार पुरु को उसका यौवन लौटा दिया। सम्राट ययाति ने राजकुमार पुरु को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया, और स्वयं देवयानी एवं शर्मिष्ठा के साथ वानप्रस्थ आश्रम में चले गए। अब वह कहाँ हैं, कोई नहीं जानता।

राजकुमार बाण द्वारा कथित ऋषभदेव, गुरु माँ जयन्ती एवं देवयानी की कथाओं के श्रवण से आचार्य स्वर्भानु के नेत्र नम हो गए। अपनी भावनाओं को नियंत्रित कर वह राजकुमार बाण से बोले, 'प्रिय पुत्र, अब कुछ अपने पिता श्री चक्रवर्ती सम्राट महाबालि के बारे में भी परिचय दो। यह तो तुमने बता दिया कि तुम्हारे पिता श्री महाबालि मेरे ममेरे भाई विष्णु भक्त चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद के पौत्र हैं। लेकिन उन्होंने किस प्रकार तीनों भुवनों पर विजय पाई, इसका कुछ उल्लेख करो।

चक्रवर्ती सम्राट महाबालि

राजकुमार बाण बोले, 'प्रप्रपितामह, सम्राट प्रह्लाद को भी गुरु शुक्राचार्य द्वारा महादेव को प्रसन्न कर मृत संजीवनी विद्या प्राप्त करने एवं दानव सम्राट वृषपर्वा के गुरु बनने का समाचार प्राप्त हो चुका था। उनके हृदय में भी गुरु शुक्राचार्य के प्रति अति सम्मान जाग्रत हुआ। वह भी उन्हें अपना गुरु बनाना चाहते थे। सम्राट प्रह्लाद तब दानव सम्राट वृषपर्वा की राजधानी सुतल पहुँच गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव से दोनों ही वंश, दैत्य एवं दानव, का गुरु पद स्वीकार करने का आग्रह करने लगे। इस निवेदन को आचार्य शुक्रदेव ने स्वीकार कर लिया। सम्राट प्रह्लाद ने तब आचार्य शुक्रदेव से अपनी राजधानी में निवास करने की प्रार्थना की और दानव सम्राट वृषपर्वा से विनती की कि वह उनकी इस प्रार्थना का समर्थन करें। दानव सम्राट वृषपर्वा सम्राट प्रह्लाद का अति आदर करते थे, अतः उन्होंने अपनी स्वीकृति तुरंत दे दी। सम्राट प्रह्लाद की इच्छाओं का सम्मान करते हुए तब आचार्य शुक्रदेव सम्राट प्रह्लाद की राजधानी आ गए, और तब से वह हमारे वंश के भी पूज्य गुरु का कार्यभार सम्हाले हुए हैं।

सम्राट प्रह्लाद अपने पिता सम्राट हिरण्यकश्यपु से भी अधिक शक्तिशाली, परन्तु अत्यंत दयालु, न्यायप्रिय एवं हरि भक्त शासक थे। समस्त दानव, दैत्य एवं मनुष्य वंश की प्रजा उनका अत्यंत प्रेम और सम्मान करती थी। उनकी शक्ति का प्रभाव इतना अधिक था कि बिना अस्त्र-शस्त्र उठाए ही उन्होंने तीनों लोकों पर सुलभता से विजय प्राप्त कर ली। इंद्र स्वर्ग छोड़ कर भाग गए। तब इंद्र ने सम्राट प्रह्लाद को धोखे से एक ब्राह्मण से श्राप दिलवा दिया। सम्राट प्रह्लाद प्रति दिन सहस्त्रों ब्राह्मणों की सेवा करते एवं उन्हें दान देते थे। एक दिवस एक तपस्वी ब्राह्मण को इंद्रदेव ने जान बूझकर सम्राट प्रह्लाद की यज्ञशाला में जाने से रोक लिया, जिसके कारण वह कुछ देरी से पहुंचा। सम्राट प्रह्लाद की दृष्टि उस ब्राह्मण पर नहीं पड़ी। तपस्वी ब्राह्मण ने इसे अपना अपमान समझा और सम्राट प्रह्लाद को श्राप दे दिया, 'हे सम्राट, हरि विष्णु की कृपा से तुम आज चक्रवर्ती सम्राट बने हुए हो एवं इतनी वैभवता को प्राप्त किए हो। तुमने मेरा अपमान किया है। मैं तुम्हें श्राप देता हूँ कि तुम हरि विष्णु को शीघ्र ही भूल जाओगे। उनकी कृपा हटते ही तुम अपना राज्य और सभी वैभव गंवा दोगे।'

सम्राट प्रह्लाद अचंभित हो गए। उनके मुख से एक भी शब्द नहीं निकला। परन्तु वहां उपस्थित सभी ब्राह्मण इस आगंतुक ब्राह्मण से हरि विष्णु भक्त एवं दयालु सम्राट

प्रह्लाद को क्षमा करने का अनुरोध करने लगे। तब उस तपस्वी ब्राह्मण का क्रोध शांत हो गया और उसने प्रेम भरी वाणी से मधुर वचन कहे, 'हे सम्राट, मैंने अनायास क्रोधवश आपको इतना कठोर श्राप दे दिया। मैं आप से एवं हरि विष्णु से इसके लिए हृदय से क्षमा मांगता हूँ। मैं श्राप तो वापस नहीं ले सकता, लेकिन इन बुरे दिनों में भी आपकी वीरता से प्रभावित हो एक दिवस स्वयं हरि विष्णु आपसे युद्ध करने उतरेंगे। हरि विष्णु को सम्मुख देख आपको उनकी भक्ति की स्मृति आ जाएगी। आप उनके चरणों में अपना सर रख देंगे। हरि विष्णु आपसे फिर प्रसन्न हो जाएंगे, और पुनः आप चक्रवर्ती सम्राट बनेंगे।

श्राप सुन सम्राट प्रह्लाद को अति दुःख हुआ। उन्हें वैराग्य हो गया। उन्होंने राजपाट अपने सहयोगी दैत्य सेनापति अंधका को दे दिया और वन में महादेव की तपस्या के लिए चले गए। इंद्र ने तब सेनापति अंधका पर युद्ध घोषित कर दिया और विजय प्राप्त की। सम्राट प्रह्लाद ने महादेव को प्रसन्न कर लिया। स्वयं महादेव प्रगट हुए और महादेव ने उन्हें बताया कि तुम्हारा साम्राज्य सेनापति अंधका को हराकर इंद्रदेव ने हड़प लिया है, तथा तुम्हारी पत्नी देवी और पुत्र विरोचन को बंदी बना लिया है। तुम अब इंद्रदेव से युद्ध कर विजय प्राप्त करो। उनसे अपना साम्राज्य वापस लो एवं अपनी पत्नी और पुत्र को उसके कारागार से निकालो।

यह समाचार सुन सम्राट प्रह्लाद को अत्यंत क्रोध आया। उन्होंने इंद्रदेव को ललकारा। उनके बल, प्रताप और महादेव के वरदान से डर कर इंद्रदेव तब हरि विष्णु के पास सहायता के लिए पहुंचे। हरि विष्णु ने उनकी सहायता करना स्वीकार कर लिया और युद्ध के लिए युद्ध क्षेत्र में आ गए। हरि विष्णु को युद्ध के लिए तत्पर समक्ष देख सम्राट प्रह्लाद को उनकी भक्ति की स्मृति हो गई और 'त्राहि-माम, त्राहि-माम' कह कर वह उनके चरणों में गिर पड़े। हरि विष्णु ने उठाकर उन्हें गले से लगा लिया और उनका साम्राज्य वापस कर दिया।

इधर सेनापति अंधका इंद्रदेव से हारकर वन में ब्रह्मदेव के तप के लिए चला गया। ब्रह्मदेव को प्रसन्न कर अंधका ने असीम बल का वरदान प्राप्त कर लिया। असीम बल की प्राप्ति कर वह दानवों के पास आया और अपनी शक्ति बढ़ाने लगा। उसने दानवों की सहायता से एक वृहद सेना तैयार की और इंद्रदेव पर चढ़ाई करने की योजना बनाई। तभी उसे पता लगा कि सम्राट प्रह्लाद ने अपना साम्राज्य वापस ले लिया है।

उसके हृदय में लालच आ गया। उसने सोचा कि इस विशाल सेना एवं दानवों की मदद से मैं स्वयं सम्राट प्रह्लाद को हराकर तीनों भुवनों का स्वामी बन जाऊँगा। उसने सम्राट प्रह्लाद के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। सम्राट प्रह्लाद को पता लगा कि अंधका ने ब्रह्मदेव से असीम बल का वरदान प्राप्त कर लिया है। उसे हराना असंभव है। तब वह महादेव की शरण में गए। महादेव ने स्वयं तब अंधका को ललकारा और उसका वध किया। इसके पश्चात गुरुदेव शुक्राचार्य के नेतृत्व में सम्राट प्रह्लाद शांति से अपने राज्य का संचालन करने लगे।

समय आने पर सम्राट प्रह्लाद ने अपने प्रिय पुत्र राजकुमार विरोचन को युवराज घोषित कर दिया। युवराज विरोचन अपने पिता के समान हरि विष्णु भक्त एवं अत्यंत दयालु हृदय के थे। उनके हृदय में हरि विष्णु के दर्शन की इच्छा जाग्रत हुई। तब पिता सम्राट प्रह्लाद एवं गुरुदेव शुक्राचार्य से आशीष ले वह वन में हरि विष्णु की तपस्या के लिए चले गए। उन्होंने हरि विष्णु की घोर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न हो हरि विष्णु ने उन्हें दर्शन दिए और सदैव विजयी होने का वरदान दिया। प्रभु के दर्शन कर एवं उनसे अजेय होने का वरदान ले वह वापस राजधानी में आ गए। उनके पिता श्री सम्राट प्रह्लाद, गुरुदेव शुक्राचार्य, सभी मंत्रियों, सभासदों एवं प्रजा ने उनका भव्य स्वागत किया। राजधानी लौटने के पश्चात वह अपने पिता श्री सम्राट प्रह्लाद के राज्य कार्य में हाथ बंटाने लगे। वह हृदय की सरलता, दयालुता और दानवीरता में अपने पिता श्री सम्राट प्रह्लाद से भी एक कदम आगे थे। प्रतिदिन प्रातः ब्रह्म-मुहूर्त में नित्य कर्म, नदी में स्नान इत्यादि कर वह हरि विष्णु की स्तुति में लग जाते एवं तत्पश्चात अपना कोष ब्राह्मणों और निर्धनों के लिए खोल देते थे। उनके हरि विष्णु द्वारा अजेय वरदान प्राप्त होने से इंद्रदेव अति चिंतित थे। हरि विष्णु के कहने पर सम्राट प्रह्लाद ने इंद्रदेव को स्वर्ग का शासन वापस अवश्य कर दिया था, पर उनको सम्राट प्रह्लाद की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। इंद्रदेव को ऐसा विश्वास था कि एक दिन वह सम्राट प्रह्लाद को परास्त कर अपनी स्वतन्त्रता वापस ले लेंगे, लेकिन युवराज विरोचन के अजेय वरदान के होते हुए यह असंभव था। अतः इंद्रदेव ने एक कुटिल योजना बनाई। एक दिन प्रातः जब युवराज विरोचन हरि विष्णु की स्तुति के बाद ब्राह्मणों एवं निर्धनों को दान देने बैठे, तब इंद्रदेव एक ब्राह्मण का स्वरुप बना याचकों की पंक्ति में खड़े हो गए। जब उनकी बारी आई तो युवराज विरोचन ने उनसे पूछा, 'हे श्रेष्ठ ब्राह्मण, मैं आपको क्या दान दे सकता हूँ?'

ब्राह्मण के रूप में इंद्रदेव ने उनसे कहा, 'हे युवराज, मैं आपका बड़ा नाम सुनकर एक दूर देश से आया हूँ? मैंने सुना है कि आप याचक को उसकी इच्छानुसार दान देते हैं। क्या आप मुझे भी मेरी इच्छानुसार दान देंगे?'

युवराज विरोचन ने हंसकर कहा, ' हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, आपने सत्य ही सुना है। आपको ऐसी शंका क्यों है? आप दान मांगिए। मैं वचन देता हूँ कि आप जो भी दान मांगेंगे, यदि वह मेरे सामर्थ्य में होगा, तो मैं अवश्य दूंगा।'

इस प्रकार युवराज विरोचन को वचन बद्ध कर बहरूपिए कायर इंद्र ने उनका शीश मांग लिया। प्रप्रपितामह, आप युवराज विरोचन की वीरता और दानवीरता देखिए। उन्होंने तुरंत पास पड़ी तलवार उठाई और अपना शीश काट दिया। युवराज विरोचन के शीश को लेकर तुरंत कायर इंद्र वहां से दौड़ पड़ा। उसे आशंका थी कि कहीं सम्राट प्रह्लाद ने उसे ललकार दिया और शीश उनसे ले लिया तो गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव उसे अपनी मृत संजीवनी विद्या से जीवित कर देंगे। उसने युवराज विरोचन के शीश को स्वर्गलोक पहुँच अग्निदेव को अर्पित कर भस्म कर दिया।

यह कथा सुनकर आचार्य स्वर्भानु के नेत्र नम हो गए और बोले, 'मेरे भाई प्रह्लाद का पुत्र उस से भी बढ़कर क्यों न हो? धन्य धन्य विरोचन, तूने अपना शीश देकर समस्त दैत्य वंश का शीश ऊंचा कर दिया। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह साकेत धाम में हरि विष्णु के साथ अब आनंदमय होगा।'

राजकुमार बाण आगे बोले, 'हे श्रेष्ठ आचार्य, सम्राट प्रह्लाद को जब इंद्र का यह कुकर्म पता लगा तो उन्हें अत्यंत क्रोध आया। वह इंद्र का वध करने को तत्पर हुए। तभी ब्रह्मऋषि नारद ने वीणा बजाते हुए और 'नारायण, नारायण' का जाप करते हुए उनकी सभा में प्रवेश किया। उन्होंने युवराज विरोचन की पूर्व जन्म की कथा सुनाकर उनका क्रोध शांत किया।

ब्रह्मऋषि नारद सम्राट प्रह्लाद से बोले, 'हे राजन, तुम्हारा पुत्र विरोचन कोई और नहीं, बल्कि साकेत धाम के सुरक्षा अधिकारी, हरि विष्णु के परम सेवक विजय का पुत्र था। जब जय और विजय को सनकादिक ऋषियों ने पृथ्वी पर राक्षस योनि में जन्म लेने का श्राप दिया, तब विजय के इस पुत्र को सनकादिक ऋषियों पर अति क्रोध

आया, और वह उन्हें अपनी तलवार से मारने दौड़ा। उसकी इस धृष्टता पर सनकादिक ऋषियों को भी क्रोध आ गया। उन्होंने उसे भी पृथ्वी पर दैत्य परिवार में जन्म लेने का श्राप दे दिया। जब उसे अपनी त्रुटि पर पश्चाताप हुआ तो हरि विष्णु ने उसे वरदान दिया कि सनकादिक ऋषियों का श्राप तो अवश्य ही फलीभूत होगा, परन्तु वह उनके प्रिय भक्त दैत्य सम्राट प्रह्लाद के गृह में उनका पुत्र बनकर जन्म लेगा। समय आने पर उसकी अकाल मृत्यु होगी, और वह फिर से साकेत धाम वापस आ जाएगा। हे पुत्र प्रह्लाद, इंद्र तो माध्यम मात्र थे। विरोचन को तो वापस साकेत धाम जाना ही था। अतः अपना क्रोध त्याग दो, और विरोचन पुत्र बालि को अपना युवराज घोषित करो। बालि भी तुम्हारी ही भांति हरि विष्णु भक्त और शक्तिशाली सम्राट बनेगा। एक दिन वह स्वयं हरि विष्णु से चिरंजीवी का वरदान प्राप्त करेगा।'

ब्रह्मऋषि नारद के वचन सुन सम्राट प्रह्लाद का क्रोध शांत हो गया। तब उन्होंने पांच वर्ष के बालक अपने पौत्र राजकुमार बालि को युवराज घोषित कर दिया। सम्राट प्रह्लाद ने युवराज बालि को गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव को सौंप दिया ताकि गुरुदेव युवराज बालि को राजनीति, युद्धनीति इत्यादि की शिक्षा प्रदान करें। गुरुदेव के साथ साथ स्वयं सम्राट प्रह्लाद भी युवराज बालि को एक उत्तम सम्राट बनने की सभी विद्याएं सिखाने लगे। युवराज बालि सम्राट प्रह्लाद को अपने प्राण से भी अधिक प्रिय थे।

समय बीतता गया। युवराज बालि बड़ी ही प्रखर बुद्धि वाले एक तेजस्वी छात्र थे। गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव एवं पितामह चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद द्वारा दी हुई शिक्षाएं उन्होंने अल्प समय में ही प्राप्त कर लीं। जब युवराज बालि पंद्रह वर्ष की आयु के हुए तो उन्हें इसका आभास होने लगा कि केवल गुरुदेव एवं पितामह द्वारा दी गई शिक्षाएं एक शक्तिशाली शासक बनने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसके लिए उन्हें अपने पिता युवराज विरोचन की भांति ब्रह्मदेव से अजेयता का वरदान प्राप्त करना होगा। इसके लिए ब्रह्मदेव के घोर तप की आवश्यकता है। उन्होंने अपने विचार गुरुदेव और पितामह के समक्ष रखे। उनसे आज्ञा एवं आशीर्वाद लेकर तब वह वन में ब्रह्मदेव के तप के लिए चले गए। कई सहस्त्र वर्षों तक युवराज बालि ने ब्रह्मदेव का तप किया। अंततः ब्रह्मदेव उनके तप से प्रसन्न हो प्रगट हुए और उन्हें मनचाहा अजेयता का वरदान प्रदान किया।

अजेयता का वरदान ले युवराज बालि अपने पितामह चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद की राजधानी लौट आए। पितामह चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद, गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव, समस्त सभासद एवं प्रजा ने उनका भव्य स्वागत किया। चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद अब उनका राज्याभिषेक कर अपने इष्ट हरि विष्णु के साकेत धाम जाना चाहते थे। अतः उन्होंने इस पर गुरुदेव एवं युवराज बालि से विचार विमर्श किया। युवराज बालि तो चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद को किसी भी परिस्थिति में अपने से अलग करना ही नहीं चाहते थे, लेकिन उनकी हठ के आगे उनकी एक नहीं चली। अंत में युवराज बालि की इस प्रार्थना पर कि चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद कुछ वर्षों तक उनके पूज्य परामर्श दाता बन कर रहें, उन्होंने स्वीकार कर लिया। चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद की आज्ञानुसार गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव ने युवराज बालि के राज्याभिषेक की तैयारियां प्रारम्भ कर दीं।

बड़े ही धूम-धाम से युवराज बालि का राज्याभिषेक हुआ और युवराज बालि अब सम्राट महाबालि बन गए। युवराज बालि के राज्याभिषेक के दिवस ब्रह्माण्ड के सभी सम्राट, गांधर्व, यक्ष, सिद्ध, दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं ने उनका अभिनंदन किया। अभाग्य से अपनी ईर्षा के कारण इंद्रदेव उनके राज्याभिषेक में सम्मिलित नहीं हुए। इंद्रदेव को ऐसा आभास और हृदय में डर हुआ कि उनके पिता युवराज विरोचन की मृत्यु का कारण होने से उन्हें अपमान का सामना करना पड़ सकता है, अथवा उन्हें बंदी भी बनाया जा सकता है।

सम्राट महाबालि ने शासन की बागडोर सम्हाली और अपने पितामह चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद एवं गुरुदेव शुक्राचार्य के दर्शाए हुए मार्ग पर बढ़ने लगे। समय बीतता चला गया। वह एक कुशल, न्याय प्रिय, दयालु एवं प्रजा प्रिय सम्राट के रूप में स्थापित हो रहे थे। तभी पितामह चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद ने शरीर त्यागने की अपनी इच्छा गुरुदेव शुक्राचार्य को दर्शाई। गुरुदेव जानते थे कि वह अधिक समय तक एक भक्त को उसके इष्ट से दूर नहीं रख सकते, अतः उन्होंने सम्राट प्रह्लाद को योगाग्नि से भस्म हो कर शरीर त्यागने की अनुमति दे दी। सम्राट महाबालि को गुरुदेव ने अत्यंत समझाया। अंततः सम्राट महाबालि का मोह अपने पितामह की ओर कुछ कम हुआ। सम्राट महाबालि की आज्ञा एवं गुरुदेव के नेतृत्व में एक भव्य यज्ञ का आयोजन हुआ जिसमें उस समय के सभी महर्षि और आचार्यों ने भाग लिया। स्वयं ब्रह्मऋषि नारद भी उस यज्ञ में पहुंचे और अपना आशीर्वाद दिया। यज्ञ की समाप्ति पर ब्रह्मऋषि नारद

एवं गुरुदेव शुक्राचार्य का आशीर्वाद ले कर योगाग्नि से चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद ने अपने शरीर को भस्म कर दिया। तभी एक रत्न जड़ित स्वर्ण विमान प्रगट हुआ जो विष्णु लोक से आया था। उसमें प्रवेश कर ब्रह्मऋषि नारद के साथ सम्राट प्रह्लाद का सूक्ष्म शरीर वैकुंठ को प्रस्थान कर गया।

चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद के वैकुंठ जाने का समाचार समस्त ब्रह्माण्ड में दावानल की भांति फैल गया। जो विश्व के सभी जन जातियों के अन्य सम्राट चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद की अधीनता स्वीकार किए हुए थे, उन्होंने सम्राट महाबालि को एक अनुभवहीन बालक सम्राट समझ अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर उनसे विद्रोह कर दिया। यह सभी सम्राट निरंकुश अधिनायक बन गए। अपना कोष भरने एवं अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए निर्धन एवं असहाय प्रजा को सताने लगे। सम्राट महाबालि यह सहन नहीं कर पाए। गुरुदेव शुक्राचार्य से आज्ञा ले उनके मार्ग प्रदर्शन में उन्होंने अपनी सेना के साथ इन निरंकुश सम्राटों को नियंत्रण में लाने के लिए इनके राज्यों की ओर कूच कर दिया। सम्राट महाबालि को तो स्वयं ब्रह्मदेव ने अजेयता का वरदान दे रखा था, अतः उन्हें कौन रोक सकता था? शनैः शनैः अधिकतर ऐसे सम्राटों ने स्वयं ही बिना युद्ध के आत्म-समर्पण कर दिया और सम्राट महाबालि की प्रभुता स्वीकार कर उनके द्वारा बनाए नियमों से ही शासन चलाने की प्रतिज्ञा की। जिन्होंने आत्म सपर्पण नहीं किया, उन्हें सम्राट महाबालि ने हराकर सिंहासन से पदच्युत कर एक कुशल शासक को उनके सिंहासन पर बैठाया। इस प्रकार सभी विद्रोही शासकों को नियंत्रित एवं अपने आधीन कर सम्राट महाबालि राजधानी लौटे, और सभी जीते हुए साम्राज्यों को गुरुदेव शुक्राचार्य को अर्पित कर दिया।

गुरुदेव शुक्राचार्य बोले, 'हे प्रिय पुत्र महाबालि, मैं तो एक साधु आचार्य हूँ, शासक नहीं। अतः अपने जीते हुए समस्त राज्य अपने अधीन ही रखो। इसके बदले मुझे द्वि वचन दो।'

इस पर सम्राट महाबालि गुरुदेव के चरणों में पड़ गए और बोले, 'गुरुदेव, द्वि वचन ही क्या, यह शरीर भी आप ही की धरोहर है। जैसा चाहें, आज्ञा दें।'

तब गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव ने उनसे द्वि वचन, समस्त दैत्य एवं दानव वंशों में धर्म एवं दान की प्रवृति की स्थापना तथा राजसूय यज्ञ का आयोजन करने की आज्ञा दी।

सम्राट महाबालि ने इसे सहर्ष स्वीकार किया और यथोचित राज आज्ञा घोषित कर दी गई।

सम्राट महाबालि ने समस्त अपने राज्य के अधिकारियों एवं आधीन सम्राटों को निर्देश दिया कि अब सभी अधर्म का मार्ग छोड़ केवल धर्म के मार्ग पर चलते हुए शासन करें। किसी भी राज्य में अनीति एवं अन्याय का कोई स्थान न हो। प्रजा का सुख एवं उनकी निर्धनता दूर करना ही सभी प्रशासनिक अधिकारियों का मुख्य उद्देश्य हो। जो इस आज्ञा का पालन नहीं करेगा, उसे दण्डित किया जाएगा। साथ ही अपने सभासद आचार्यों को आज्ञा दी कि वह गुरुदेव शुक्राचार्य के मार्ग प्रदर्शन में राजसूय यज्ञ प्रारंभ करने के सभी प्रबंध करें।

जैसे ही इंद्रदेव ने सुना कि सम्राट महाबालि राजसूय यज्ञ का आयोजन कर रहे हैं, उनका माथा ठनका। यदि राजसूय यज्ञ सफल हो गया तो सम्राट महाबालि चक्रवर्ती सम्राट ही नहीं बन जाएंगे, उनका स्वर्ग का शासन भी चला जाएगा। उन्हें आभास था कि सम्राट महाबालि चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद की भांति हरि विष्णु के किसी वचन से बद्ध नहीं हैं। अतः वह हर संभव प्रयास करेंगे कि स्वर्ग लोक का शासन उन्हीं की पूर्ण अधीनता में आ जाए। अतः उन्होंने सोच विचार कर, इससे पहले कि सम्राट महाबालि राजसूय यज्ञ का आयोजन करें, उन्होंने सम्राट महाबालि के साम्राज्य को नष्ट करने की योजना बनाई।

इंद्रदेव के आदेश से सम्राट महाबालि के साम्राज्य में सर्व प्रथम वर्षा होनी बंद हो गई जिससे अनाज की उत्पत्ति बंद हो गई। अकाल जैसे हालात पैदा हो गए। चारों ओर प्रजा भूख प्यास से व्याकुल हो त्राहि त्राहि करने लगी। ऐसे कठिन समय में इंद्रदेव ने कालपुरुष को उसके सहायकों के साथ सम्राट महाबालि के साम्राज्य में भेज दिया ताकि वह साम्राज्य में अव्यवस्था पैदा करें। कालपुरुष और उसके सहायक प्रजा को सम्राट महाबालि के विरुद्ध उकसाएं और विद्रोह करवाएं।

सम्राट महाबालि ने प्रजा का यह बुरा हाल देख अपना कोष एवं अन्न भंडार खोल दिया। आचार्य शुक्रदेव से इस अनावृष्टि का कारण जाना। इंद्रदेव ने ऐसा किया है, यह जान उन्हें इंद्रदेव पर अत्यंत क्रोध आया और उन्होंने इंद्र से युद्ध की घोषणा कर दी।

गुरुदेव शुक्राचार्य के निर्देश में एवं सम्राट महाबालि के नेतृत्व में दैत्यों की सेना ने अमरावती पर धावा बोल दिया। इंद्रदेव ने इतनी शीघ्र इसकी आशंका नहीं की थी। इंद्रदेव जानते थे कि सम्राट महाबालि को ब्रह्मदेव द्वारा अजेयता का वरदान प्राप्त है। उनको इस प्रकार युद्ध में हराना कठिन ही नहीं, असंभव है। अतः वह देवों के गुरु वृहस्पति के साथ सहायता के लिए हरि विष्णु के पास वैकुंठ लोक पहुंचे। हरि विष्णु ने यह कहकर सहायता के लिए मना कर दिया कि यह इंद्रदेव के दुष्कर्म का ही परिणाम है। इंद्रदेव इस स्थिति के लिए स्वयं उत्तरदायी हैं। यदि उन्होंने ऐसा कोई निर्णय लिया है तो उसके परिणाम भुगतने के लिए भी उन्हें तत्पर रहना चाहिए। सम्राट महाबालि से उन्हें युद्ध करना चाहिए अथवा पलायन।

निराश हो इंद्र अमरावती लौट आए। गुरु वृहस्पति की परामर्श पर कि सम्राट महाबालि से बिना हरि विष्णु की सहायता के युद्ध जीतना असंभव है, उन्होंने पलायन करने में ही अपनी भलाई समझी और स्वर्ग से पलायन कर गए।

सम्राट महाबालि ने तब स्वर्ग लोक में निर्विरोध कदम रखा। उन्होंने सभी स्वर्गलोक वासी देवताओं, अप्सराओं इत्यादि को निर्भयता का वचन दिया। तब गुरुदेव शुक्राचार्य एवं अन्य सेनापतियों के अनुरोध पर सम्राट महाबालि का स्वर्ग के सिंहासन पर राज्याभिषेक हुआ। इस प्रकार स्वर्ग का शासन उन्होंने अपने राज्य में विलय कर लिया। सूर्यदेव एवं चंद्रदेव को अपने प्रतिनिधि के रूप में राज्य संचालन हेतु नियुक्त कर एवं अपने प्रधान दानव सेनापति को मुख्य सैन्य पद पर आसीन कर सम्राट महाबालि अपनी राजधानी वापस लौट आए।

सम्राट महाबालि के वापस लौटने पर एक दिन गुरुदेव शुक्राचार्य ने उनसे कहा, 'पुत्र, तुमने स्वर्ग का राज्य इंद्र से अवश्य छीन लिया है, और इंद्र पलायन भी कर गया है। लेकिन मेरी समझ में यह उसका पलायन अल्पकालिक ही होगा। उसने अभी जहां भी शरण ली होगी, वह अवश्य ही वहां से तुम्हें स्वर्ग के सिंहासन से अपदस्थ करने की योजना बना रहा होगा। उसके बल को समूल समाप्त करने का एक ही उपाय है कि तुम्हें १०० राजसूय यज्ञ करने होंगे। यदि हमें १०० राजसूय यज्ञ में सफलता प्राप्त हो गई, तो तुम सभी देव, दैत्य और दानव वंशों में अजेय हो जाओगे। अब तुरंत अपने आचार्यों को आज्ञा दो कि वह इन १०० राजसूय यज्ञ करने की तैयारी करें।'

सम्राट महाबालि ने गुरुदेव शुक्राचार्य के चरण पकड़ लिए और फिर उनके सामने मस्तक झुकाकर करबद्ध विनम्र स्वर में बोले, 'हे प्रभु, आप हमारे जीवन आधार हैं। आपका निर्देश हमारे लिए आज्ञा है। जैसा आप उचित समझें, वैसी ही आज्ञा दीजिए।'

तब गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव ने सभी आचार्यों को निमंत्रण दिया और उन्हें १०० राजसूय यज्ञ करने की आज्ञा दी। उनकी आज्ञा का तुरंत पालन हुआ। हे दानव श्रेष्ठ प्रप्रपितामह आचार्य स्वर्भानु, अब तक ९९ राजसूय यज्ञों को सफलता पूर्वक पूर्ण किया जा चुका है। आचार्य शुक्रदेव अब १००वें राजसूय यज्ञ की तैयारी में लगे हुए हैं। आपका आना बड़े ही शुभ अवसर पर संपन्न हुआ है। आचार्य शुक्रदेव के साथ आपका निर्देश और आशीर्वाद अब इस १००वें राजसूय यज्ञ को सफलता पूर्वक संपन्न कराएगा ।

इस प्रकार ऐतिहासिक कहानियां कहते सुनते राजकुमार बाण का रथ आचार्य स्वर्भानु के साथ सम्राट महाबालि की राजधानी की सीमा में पहुँच गया। जैसे ही रथ ने राजधानी की सीमा में प्रवेश किया, राजकुमार बाण ने एक सैनिक को सम्राट महाबालि से एक अति विशिष्ट सम्माननीय अतिथि के साथ राजधानी में प्रवेश करने की आज्ञा लेने के लिए तुरंत प्रेषित किया। सैनिक तीव्र गति से राजकुमार बाण का सन्देश लेकर चला। महल पहुंचते ही सैनिक ने सम्राट महाबालि के द्वारपाल को राजकुमार बाण का सन्देश दिया, जो तुरंत सम्राट को भेज दिया गया। सम्राट महाबालि ने तुरंत आज्ञा प्रदान की। तत्पश्चात वह स्वयं गुरुदेव शुक्राचार्य की कुटिया की ओर निकल पड़े, उन्हें राजकुमार बाण के साथ किसी अति विशिष्ट अतिथि के आने का शुभ समाचार देने।

आज प्रातः ब्रह्मुहुर्त में जब आचार्य शुक्रदेव जागे तो उन्हें अति शुभ शगुन होने लगे। उनकी दाईं आँख एवं दाईं भुजा फड़क फड़क कर संभवतः यह सूचना दे रही थी कि शीघ्र ही कोई शुभ समाचार मिलने वाला है। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि दौड़ाई और शीघ्र ही जान लिया कि आचार्य स्वर्भानु महादेव को प्रसन्न कर वापस आ रहे हैं। शीघ्र नित्य कर्म क्रिया एवं स्नान कर वह अपने आसन पर विराजमान हो गए, और प्रतीक्षा करने लगे इस शुभ समाचार को पाने की।

अभी कुछ समय ही बीता होगा कि स्वयं सम्राट महाबालि ने उनके दर्शन की इच्छा से उनके आश्रम में उनकी कुटिया में प्रवेश किया। सम्राट महाबालि के चेहरे पर मुस्कान देख वह समझ गए कि कोई अवश्य ही शुभ समाचार है।

सम्राट महाबालि गुरुदेव शुक्राचार्य के चरणों में नतमस्तक हो कर बोले, 'हे प्रभु, राजकुमार बाण राजधानी की सीमा में आ गए हैं तथा राजधानी में प्रवेश करने की अनुमति चाहते हैं। उनके साथ कोई अतिथि भी हैं। यह तो मैं नहीं जानता कि वह कौन हैं, पर जैसा कि सैनिक ने बतलाया, राजकुमार बाण अति आदर के साथ उनके समक्ष करबद्ध बैठे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह कोई अति विशिष्ट व्यक्ति हैं।

आचार्य शुक्रदेव मुसकुराकर बोले, 'प्रिय पुत्र, मेरा स्वर्भानु वापस आ रहा है। यह अति विशिष्ट व्यक्ति कोई और नहीं, बल्कि मेरा स्वर्भानु महादेव को महातप से प्रसन्न कर लौट रहा है। राजकुमार बाण का अति सौभाग्य कि उसे आचार्य स्वर्भानु के दर्शन एवं आशीर्वाद प्राप्त करने का अवसर तुम से भी पहले मिल गया। जाओ, राजकुमार बाण के साथ अपने दादा श्री आचार्य स्वर्भानु के स्वागत करने की तैयारी करो।'

कर्णप्रिय मधुर वचन सुनकर सम्राट महाबालि को अपने दादा श्री चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद की स्मृति आ गई। आचार्य स्वर्भानु को अपने दादा श्री सम्राट प्रह्लाद की ही भांति समझ उनके नेत्रों से जल की धारा बहने लगी। मेरा सौभाग्य जो मेरे दादा श्री सम्राट प्रह्लाद के प्रिय भाई अह्लाद के भ्राता आचार्य स्वर्भानु मेरी राजधानी पधार रहे हैं। गुरुदेव को नमन कर प्रसन्नता से झूमते वह गुरुदेव की कुटिया से बाहर निकल तुरंत महल पहुंचे, और सभी सभासदों को राजकुमार बाण एवं उनके साथ आए अतिथि का महा स्वागत करने का आदेश दिया।

सम्राट महाबालि की राजधानी का प्रत्येक गृह एक बड़े उत्सव की तरह सजाया गया। प्रत्येक नागरिक ने अपने गृह की स्वच्छता के बाद घर के दरवाजों को तोरण से सजाया। स्थान स्थान पर रंगोली से घर आँगन सजाए गए। सायं में प्रकाश हेतु घी के दीपों को श्रृंखला में सजाया गया। रंग बिरंगे कांच के टुकड़ों से बने घड़े रूपी बर्तनों से दीप मालाओं को सजाकर समस्त मुख्य स्थानों की सुंदरता व शोभा बढ़ाई गई। यह दृश्य देखते ही बनता था।

स्वयं सम्राट महाबालि के महल की सजावट का तो वर्णन कर पाना अति कठिन है। महल की दीवारों को अति सुन्दर रंग बिरंगे कांच और दर्पण से सजाया गया। महल की छतों, फर्श के किनारे और दीवारों पर सुंदर अलंकरण चित्रित किए गए। समस्त महल को विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से अलंकृत किया गया। महल की सजावट के लिए स्वर्ण के अलंकरण का प्रयोग किया गया।

अब बस प्रतीक्षा थी राजकुमार बाण एवं अति विशिष्ट व्यक्ति के महल में प्रवेश की।

आचार्य स्वर्भानु ने राजकुमार बाण से प्रार्थना की कि वह अपना रथ सर्व प्रथम गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव के आश्रम ले चलें। सर्व प्रथम वह गुरुदेव के दर्शन करना चाहते हैं। आचार्य स्वर्भानु की प्रार्थना को आज्ञा मान राजकुमार बाण ने अपने सारथी को तुरंत रथ को गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव के आश्रम की ओर ले चलने की आज्ञा दी। कुछ ही क्षणों में रथ गुरुदेव शुक्राचार्य के आश्रम पहुँच गया। आश्रम की सीमा के बाहर ही रथ को रोक दिया गया। दोनों, आचार्य स्वर्भानु एवं राजकुमार बाण, पैदल ही तब गुरुदेव शुक्राचार्य की कुटिया की ओर बढ़े। एक आश्रम के सेवक ने राजकुमार बाण को पहचान लिया और दौड़कर गुरुदेव के पास संदेशा ले कर गया कि राजकुमार बाण किसी अतिथि के साथ आश्रम में प्रवेश कर चुके हैं। गुरुदेव शुक्राचार्य तब स्वयं अपनी कुटिया से बाहर निकल आए, और आचार्य स्वर्भानु एवं राजकुमार बाण का स्वागत करने द्वार की ओर दौड़े।

दूर से ही जब आचार्य स्वर्भानु एवं राजकुमार बाण ने गुरुदेव को देखा तो सर्व प्रथम वहीं से उन्हें दंडवत प्रणाम किया। गुरुदेव तब तक उनके समीप पहुँच चुके थे। गुरुदेव को समक्ष देख आचार्य स्वर्भानु ने तुरंत उनके चरण पकड़ लिए। उनका रोम रोम अत्यंत पुलकित हो रहा था। गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव ने तब उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और कुशल पूछी। तब आचार्य स्वर्भानु बोले, 'हे प्रभु, आप के आशीर्वाद से ही हमारा अस्तित्व है। जब आपका कृपा हस्त हमारे ऊपर है तो हमारा कोई बाल बांका भी कैसे कर सकता है?'

यह गुरु-शिष्य का मिलन देखने योग्य था। आचार्य स्वर्भानु के नेत्रों से जल की धारा रुक ही नहीं रही थी। आचार्य स्वर्भानु से मिल और उन्हें आशीर्वाद प्रदान करने के

बाद गुरुदेव ने राजकुमार बाण को भी उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और आशीष की झड़ी लगा दी।

यह दृश्य देख सभी आश्रम वासियों के नेत्र भी नम हो गए। तब गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव बोले, 'हे राजकुमार बाण, तुम्हारे पिता श्री सम्राट महाबालि महल में तुम दोनों की प्रतीक्षा में नेत्र लगाए बैठे हैं। उन्हें अधिक प्रतीक्षा कराना ठीक नहीं। हमें तुरंत सम्राट महाबालि के महल की ओर प्रस्थान करना चाहिए।'

गुरुदेव की आज्ञा सर पर धारण कर तीनों, गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव, आचार्य स्वर्भानु एवं राजकुमार बाण, ने तब सम्राट महाबालि के महल की ओर प्रस्थान किया।

मार्ग में प्रजा हर ओर से रथ पर पुष्पों की वर्षा, और गुरुदेव एवं राजकुमार बाण की जय जयकार कर रही थी। गुरुदेव और राजकुमार बाण उनके अभिवादन को स्वीकार करते हुए आगे बढ़ रहे थे। बस आचार्य स्वर्भानु रथ के एक कोने में चुपचाप बैठे हुए थे। यद्यपि इन अतिथि की एक झलक प्राप्त करने को प्रजागण रथ में झांकने का बार बार प्रयास कर रहे थे, लेकिन इन सब से अनजान आचार्य स्वर्भानु चुप ही बैठे रहे। यह मनोहर दृश्य देखने योग्य था। देखते देखते रथ सम्राट के महल के द्वार पर पहुंच गया। रथ को तब द्वार पर ही रोक तीनों, गुरुदेव शुक्राचार्य, राजकुमार बाण एवं आचार्य स्वर्भानु, पैदल ही तब सम्राट के राजसभा कक्ष की ओर चल दिए।

इधर जैसे ही सम्राट महाबालि को समाचार मिला कि गुरुदेव शुक्राचार्य, राजकुमार बाण एवं आचार्य स्वर्भानु के साथ महल के द्वार पर पहुँच चुके हैं, वह स्वयं नंगे पैरों ही उनका स्वागत करने दौड़े। दूर से ही गुरुदेव एवं आचार्य को दंडवत प्रणाम किया। समीप पहुँच गुरुदेव ने उन्हें उठाकर अपने वक्ष से लगा लिया। फिर वह आचार्य स्वर्भानु के चरणों पर गिर गए। नैनों से अश्रु धारा बहने लगी। अपने अश्रुओं से ही उन्होंने आचार्य स्वर्भानु के चरण धो डाले और बोले, 'आज मुझे दादा श्री आचार्य स्वर्भानु के रूप में मेरे पूज्य दादा श्री चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद के दर्शन हो गए। मैं कृतार्थ हो गया।'

तब आचार्य स्वर्भानु ने उन्हें उठाकर अपने गले से लगा लिया। इतनी ही देर में सम्राज्ञी सुदेष्णा पूजा की थाली लेकर आ गईं। उन्होंने सर्व प्रथम गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव की

आरती की। उनके चरण स्पर्श कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। तत्पश्चात दादा श्री आचार्य स्वर्भानु की आरती कर उनके चरणों पर गिर गईं। आचार्य स्वर्भानु ने उन्हें उठाया और अपना वरद हस्त उनके सर पर रख दिया। ढेरों आशीष की झड़ी लगा दी। पुष्पों एवं इत्र की वर्षा से समस्त वातावरण सुगन्धित हो गया। हर ओर गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव, आचार्य स्वर्भानु, सम्राट महाबालि, सम्राज्ञी सुदेष्णा एवं राजकुमार बाण की जय जयकार हो रही थी। सभी सभासद एवं राज्य के गणमान्य व्यक्ति पंक्ति से गुरुदेव एवं आचार्य का आशीर्वाद लेने के लिए दंडवत हो रहे थे। सभी को यथा योग्य आशीर्वाद देते हुए दोनों ही, गुरुदेव एवं आचार्य स्वर्भानु, ने सब का अभिवादन स्वीकार किया। तब उन सभी ने सम्राट महाबालि के अनुरोध पर उनके निजी कक्ष की ओर प्रस्थान किया।

सम्राज्ञी सुदेष्णा ने भोजन की व्यवस्था की। सम्राट महाबालि एवं सम्राज्ञी सुदेष्णा ने स्वयं अपने हाथों से गुरुदेव आचार्य शुक्रदेव एवं आचार्य स्वर्भानु को भोजन अपने करों से परोसा। भोजन के पश्चात सम्राट महाबालि एक बार फिर दादा श्री आचार्य स्वर्भानु के चरणों में गिर पड़े और मधुर स्वर में बोले, 'हे दादा श्री, यह साम्राज्य आपका ही है। मेरी गुरुदेव से करबद्ध विनती है कि वह मेरी प्रार्थना को स्वीकार करें। आपके राज्याभिषेक की तैयारी की आज्ञा दें एवं मुझे सेवक बन राज्य की सेवा करने का आदेश दें।'

यह सुन आचार्य स्वर्भानु ने सम्राट महाबालि को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और बोले, 'मैंने सम्राट महाबालि के बारे में अति कुछ सुना है। उनकी न्याय प्रियता, प्रजा से प्रेम, धर्म से लगाव और हरि विष्णु से प्रेम के चर्चे सर्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। हे सम्राट, यदि मुझे राज्य प्रिय होता तो मैं संभवतः अपने पिता श्री सम्राट विप्रचित्ति को छोड़ कर कभी नहीं जाता। यह साम्राज्य तुम्हारा है, और सदैव तुम्हारा ही रहेगा। मैं तो अब अपना शेष जीवन गुरुदेव शुक्राचार्य के चरणों में उनकी आज्ञानुसार ही बिताना चाहता हूँ।'

सम्राट महाबालि बोले, 'दादा श्री, आपकी इच्छा हमारे लिए आपकी आज्ञा है। आप अवश्य गुरुदेव की आज्ञानुसार जीवन बिताएं, लेकिन मेरा एवं इस राज परिवार का सदैव मार्ग दर्शन करते रहें, ऐसी मेरी विनती है। मैंने आपके निवास के लिए चक्रवर्ती

सम्राट प्रह्लाद के महल को सुसज्जित करने का आदेश दे दिया है। मेरी करबद्ध विनती हैं कि आप मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करें।'

आचार्य स्वर्भानु बोले, 'पुत्र, मैं तो अब योगी हूँ और योगी का ही जीवन बिताना चाहता हूँ। यदि गुरुदेव उचित समझें और मुझे आज्ञा दें, मैं तो उन्हीं के साथ उनके आश्रम में रहना चाहता हूँ।' ऐसा कहकर आचार्य स्वर्भानु ने गुरुदेव की ओर देखा।

मुसकुराते हुए गुरुदेव शुक्राचार्य बोले, 'स्वर्भानु, जब से देवयानी मुझ से बिछुड़ी है, मैं तब से बस एक ही आशा पर सम्राट महाबालि की राजधानी में रह रहा था। मुझे स्वर्भानु के वापस आने की प्रतीक्षा थी। अन्यथा मैं तो अपने गुरुदेव महादेव के पास कैलाश पर्वत कभी का चला गया होता। अवश्य, मेरा आश्रम तो तुम्हारा ही आश्रम है।'

गुरुदेव शुक्राचार्य सम्राट महाबालि से बोले, 'हे सम्राट, स्वर्भानु लम्बी यात्रा से आए हैं, थके हैं। अब आप हमें आश्रम जाने की आज्ञा दें।'

सम्राट महाबालि ने गुरुदेव शुक्राचार्य के चरण पकड़ लिए, 'हे प्रभु, आप तो हमारे जीवन आधार हैं। आपकी इच्छा हमारे लिए आज्ञा है। राजकुमार बाण आपको अभी आश्रम ले कर जाएंगे।'

सम्राट महाबालि के मुख से यह शब्द पूर्ण भी नहीं हो पाए थे कि राजकुमार बाण तुरंत अपने सिंहासन से उठे और सैनिक को आज्ञा दी कि सारथी तुरंत रथ तैयार करें।

आचार्य स्वर्भानु एवं गुरुदेव शुक्राचार्य को आश्रम में छोड़ एवं उनका यथोचित अभिवादन कर राजकुमार बाण महल को वापस चले गए। तब गुरुदेव ने आश्रम वासियों को आचार्य स्वर्भानु के लिए एक अति सुन्दर कुटिया के निर्माण का आदेश दिया और जब तक यह नई कुटिया बन कर तैयार नहीं हो जाती तब तक अपनी ही कुटिया में उनके विश्राम का प्रबंध किया।

आचार्य गुरुदेव शुक्राचार्य ने रात्रि के समय आचार्य स्वर्भानु से महादेव से मिलन और उनके वरदान देने के बारे में जानना चाहा। आचार्य स्वर्भानु बस इतना ही बोले, 'हे

गुरुदेव, प्रभु ने आपके आशीर्वाद से मुझे अमरत्व का मार्ग तो अवश्य सुझा दिया है परन्तु उसे गुप्त रखने का आदेश दिया है। लेकिन गुरु से छिपाव तो स्वयं ही घोर पाप एवं मृत्यु का आमंत्रण है। आपकी आज्ञा हो तो मैं विस्तारपूर्वक सब कुछ बताऊँ।'

आचार्य स्वर्भानु के इन शब्दों से गुरुदेव शुक्राचार्य का माथा ठनका। अवश्य ही कोई गूढ़ रहस्य होगा जो प्रभु महादेव ने गुप्त रखने का आदेश दिया है। तुरंत अपनी दिव्य दृष्टि दौड़ाई और जो भी हुआ था, तुरंत जान लिया। आचार्य स्वर्भानु की पीठ थपथपा कर बोले, 'पुत्र, महादेव मेरे गुरु हैं। उनका आदेश मेरे लिए प्राणों से भी प्रिय है। इस रहस्य को गुप्त ही रखो।'

कुछ समय इसी प्रकार बीत गया। गुरुदेव शुक्राचार्य ने आचार्य स्वर्भानु को आश्रम का कुलपति नियुक्त कर दिया। उन्होंने यह भी घोषणा कर दी कि सम्राट महाबालि के १००वें राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर वह दैत्य वंश के गुरुत्व का भार आचार्य स्वर्भानु को देकर स्वयं अपने गुरुदेव महादेव के समीप कैलाश चले जाएंगे।

शीघ्र ही शुभ मुहूर्त पर आचार्य शुक्रदेव के आदेश से सम्राट बालि के १००वें राजसूय यज्ञ की तैयारी प्रारम्भ हो गईं। गुरुदेव शुक्राचार्य ने आचार्य स्वर्भानु को इस यज्ञ का प्रधान आचार्य नियुक्त किया। राजकुमार बाण के प्रशासनिक नेतृत्व में इस यज्ञ का आयोजन किया जाने लगा। गुरुदेव शुक्राचार्य, आचार्य स्वर्भानु एवं सम्राट महाबालि ने समस्त ब्रह्माण्ड के ऋषियों, महर्षियों, आचार्यों, सम्राटों इत्यादि को इस यज्ञ में भाग लेने के लिए आमंत्रित भी किया। सभी ने यज्ञ के आमंत्रण को स्वीकार किया और यज्ञ के निर्धारित दिवस पर पधार कर सम्राट महाबालि के इस उत्सव की शोभा बढ़ाई। यथा समय यज्ञ प्रारम्भ हुआ।

ब्रह्मऋषि नारद ने अज्ञातवास में रह रहे इंद्र को भी इसकी सूचना दे दी। इंद्र घबरा गए। यदि यह सम्राट बालि का १००वां राजसूय यज्ञ सफल हो गया तो कभी भी सम्राट महाबालि को हराना असंभव होगा। इस समय सम्राट महाबालि के द्वारा हराए हुए वह अज्ञातवास में अवश्य हैं, लेकिन वह अपना स्वर्ग का राज्य वापस लेने की दिन प्रतिदिन योजना बना रहे हैं। इस यज्ञ की सफलता के पश्चात उनकी कोई भी योजना कार्यगत नहीं हो सकती। इंद्रदेव ने ब्रह्मऋषि नारद के चरण पकड़ लिए और बोले, 'हे ब्रह्मऋषि ब्रह्मदेव पुत्र, इस ब्रह्माण्ड में आपसे अधिक ज्ञानी और बुद्धिमान

कोई नहीं है। आप ही कोई मार्ग सुझा सकते हैं जिससे महाबालि का यह १००वां राजसूय यज्ञ सफल न हो सके। मेरा मार्ग दर्शन कीजिए, प्रभु।'

ब्रह्मऋषि नारद बोले, 'इंद्रदेव, शुक्राचार्य और आचार्य स्वर्भानु द्वारा संचालित किए गए इस यज्ञ को भंग करने का सामर्थ्य त्रैलोक में किसी भी ऋषि, महर्षि, आचार्य, देव, दैत्य, दानव अथवा किसी भी वंश के प्राणी के वश में नहीं है। ब्रह्मदेव स्वयं सम्राट महाबालि के संरक्षक हैं। आचार्य शुक्राचार्य महादेव के परम प्रिय श्रेष्ठ शिष्य हैं। आचार्य स्वर्भानु ने भी अपने कठोर तप से महादेव को प्रसन्न कर रखा है। अतः त्रिदेवों में से इन दोनों, महादेव एवं ब्रह्मदेव, से तुम कोई आशा नहीं कर सकते कि वह सम्राट महाबालि के इस १००वें राजसूय यज्ञ भंग करने में तुम्हारी किसी भी प्रकार की सहायता करेंगे। यद्यपि सम्राट महाबालि नारायण को भी अति प्रिय हैं, लेकिन फिर भी वह निष्पक्ष रहकर तुम्हारे हित में कुछ निर्णय ले सकते हैं। उनके निर्णय से यदि यज्ञ भंग भी न हो, फिर भी तुम्हारा राज्य दिलाने का कोई मार्ग वह अवश्य तुम्हें बता सकते हैं। सम्राट महाबालि के नारायण आराध्य हैं। नारायण की बात सम्राट महाबालि किसी भी प्रकार नहीं टालेंगे। इस यज्ञ को भंग करने की अथवा तुम्हें स्वर्ग राज्य वापस दिलाने का मार्ग केवल नारायण ही दे सकते है। तुम उन्हीं की शरण में जाओ।'

यह कहकर वीणा बजाते हुए 'नारायण, नारायण' का जाप करते हुए ब्रह्मऋषि नारद वहां से प्रस्थान कर गए।

इंद्रदेव के पास अब कोई मार्ग नहीं बचा था, अतिरिक्त इसके कि वह नारायण की शरण में जाएं। अतः 'त्राहि मां, त्राहि मां' करते हुए इंद्रदेव भगवान् विष्णु के साकेत धाम पहुँच गए। हरि विष्णु को अपनी व्यथा सुनाई और उनके मार्ग दर्शन की प्रतीक्षा करने लगे।

गंभीर मुद्रा में हरि विष्णु इंद्रदेव से बोले, 'इंद्र, महाबालि मेरा अति प्रिय भक्त है। उसका पिता विरोचन और दादा श्री प्रह्लाद दोनों ही मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थे। तुमने दुष्टता एवं धोखे से दान में विरोचन का सर मांग, एक प्रकार से उसकी हत्या कर दी। मुझे तुम पर उस समय अति क्रोध आया था। यदि शची ने मेरी आराधना कर मेरा क्रोध न शांत किया होता तो मैं तुम्हारा तभी वध कर देता। तुम दया के पात्र तो बिलकुल नहीं हो। लेकिन मेरी शरण में आए हो। मैं अपनी शरण में आए हुए को चाहे

वह कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो, निराश नहीं करता। मैं महाबालि का यज्ञ तो भंग नहीं करूंगा, परन्तु कोई मार्ग अवश्य खोजूंगा जिससे महाबालि का मान भी रह जाए और तुम्हारा स्वर्ग का राज्य भी तुम्हें वापस मिल जाए। अब जाओ और विश्राम करो। समय की प्रतीक्षा करो।'

हरि विष्णु के प्रिय वचन सुन इंद्र आश्वासित हुए, और नारायण की स्तुति करते हुए वहां से चले गए।

वह दिन भी आ गया जब गुरुदेव शुक्राचार्य के आध्यात्मिक नेतृत्व में आचार्य स्वर्भानु ने सफलता पूर्वक सम्राट महाबालि का १००वां राजसूय यज्ञ संपन्न किया। सभी ऋषियों, महऋषियों एवं आचार्यों ने सम्राट महाबालि को आशीर्वाद दिया। तभी एक आकाशवाणी हुई।

'सम्राट महाबालि, १०० राजसूय यज्ञ सफलता पूर्वक संपन्न कर तू अजेय हो गया है। मैं स्वयं, नारायण, तुझे चिरंजीवी का वरदान देता हूँ। इस ब्रह्माण्ड में इस समय से लेकर भविष्य में केवल सात चिरंजीवी होंगे, उनमें से एक तू भी होगा।

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च बिभीषणः ।
कृपः परशुरामश्चैव सप्तैते चिरंजीविनः ॥

आचार्य शुक्रदेव एवं आचार्य स्वर्भानु के प्रयास एवं उनके आशीर्वाद से तेरा अंतिम १००वां राजसूय यज्ञ सफलता पूर्वक अवश्य संपन्न हो गया है, लेकिन इसका परिणाम तुझे जब तक प्राप्त नहीं होगा तब तक कि तू आए हुए समस्त ब्राह्मणों को उनका यथोचित स्वागत और सत्कार कर उन्हें उनकी मनचाही भिक्षा नहीं दे देगा। अतः अपना कोष खोल, उन्हें मनचाही भिक्षा दे।'

इन शब्दों के साथ ही आकाशवाणी लुप्त हो गई।

गुरुदेव शुक्राचार्य का माथा ठनका। उन्हें आभास हो गया कि अवश्य ही हरि विष्णु कोई लीला करने वाले हैं। मेरे शिष्य महाबालि को चिरंजीवी का आशीर्वाद अवश्य दे

दिया है परन्तु उसे त्रिलोक के राज्यों से वंचित करने वाले हैं। अब उन्हें नारायण की लीला देखने के लिए समय की प्रतीक्षा थी।

सम्राट महाबालि की प्रसन्नता का तो कोई ठिकाना ही नहीं था। उनके आराध्य हरि विष्णु ने उन्हें स्वयं चिरंजीवी का आशीर्वाद दिया, इस से अधिक सम्मान एवं प्रसन्नता की उनके लिए और कोई बात हो ही नहीं सकती। नारायण की लीला से अनभिज्ञ उन्होंने तुरंत अपना कोष खोल दिया। समस्त ब्राह्मणों को उनकी मुंह माँगी भिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। जब सभी ब्राह्मणों को दान प्राप्ति हो गई, तब अचानक एक बौना ब्राह्मण सम्राट महाबालि के सम्मुख खड़ा हो गया और बोला, 'हे राजन, तुम्हारा कल्याण हो। तुमने १०० राजसूय यज्ञ सफलता पूर्वक संपन्न किए। सभी ब्राह्माणों को उनकी इच्छानुसार भिक्षा भी दी। क्या मुझे भी मेरी इच्छानुसार भिक्षा दोगे?'

सम्राट महाबालि मुसकुराकर बोले, ’हे वामन (ब्राह्मण), मैं आपका हृदय से स्वागत और सत्कार करता हूँ। आपको इसमें संशय क्यों है? मैंने अभी आपके ही समक्ष सभी उपस्थित ब्राह्मणों को उनकी इच्छानुसार दान दिया है। आप भी कहिए आपको किस वस्तु की आवश्यकता है? मैं अवश्य ही आपको प्रदान करूंगा।'

बौने वामन बोले, 'हे चिरंजीवी महा सम्राट, मेरे गुरु ने मुझे कुछ ऐसा कहा है कि दान लेना भी एक प्रकार का ऋण है जब तक कि दान देने वाला उसे शुद्ध हृदय से संकल्प द्वारा ऋण मुक्त न कर दे। मैं तो एक निर्धन ब्राह्मण हूँ। तुम्हारे ऋण को कैसे चुकाऊंगा? अतः यदि तुम मेरे कमंडल से जल लेकर संकल्प करते हुए मुझे इस दान के ऋण से मुक्त करो, मैं तभी तुम्हारा दान स्वीकार कर सकता हूँ।'

सम्राट महाबालि हंस कर बोले, 'हे ब्राह्मण देव, इसमें क्या समस्या हो सकती है? आप मुझे जल दीजिए। मैं अभी संकल्प कर आपको अपने इस दान के किसी भी प्रकार के ऋण से मुक्त करता हूँ।'

बौने वामन की दान लेने के लिए यह विचित्र शर्त सुनकर गुरुदेव शुक्राचार्य का माथा ठनका। उन्हें नारायण की लीला का आभास तो पहले से ही हो गया था, अब उनका संशय निश्चितता में बदल गया। तुरंत दिव्य दृष्टि से जानने का प्रयास किया कि यह बौना वामन कौन हैं, और क्या चाहता है? बौने वामन का स्वरुप तुरंत जान लिया।

यह कोई और नहीं, नारायण हैं। अदिति के घोर तप से उनके वर से उनके गर्भ से उत्पन्न हुए यह वामन अवतार हैं। तुरंत सम्राट महाबालि के समीप गए। सम्राट महाबालि का हाथ पकड़ जल संकल्प लेने को रोका। सम्राट महाबालि ने गुरुदेव के चरण पकड़ लिए और विनम्र वचनों में इसका कारण जानना चाहा। गुरुदेव शुक्राचार्य बोले, 'हे राजन, यह बौना ब्राह्मण कोई और नहीं, स्वयं नारायण हैं। तेरे दादा प्रह्लाद की दादी श्री अदिति के पुत्र वामन हैं। मैंने दिव्य दृष्टि से यह जान लिया है। यह अवश्य ही कुछ लीला करने पधारे हैं। मेरा ऐसा अनुमान है कि यह तुम्हें त्रिलोक के राज्य से वंचित करना चाहते हैं। इन्हें जल संकल्प कर कोई दान नहीं दो। यह मेरा आदेश है।'

सम्राट महाबालि ने गुरुदेव शुक्राचार्य के फिर से चरण पकड़ लिए और बोले, 'गुरुदेव, आप मेरे प्राण भी मांगे तो मैं सहर्ष दे दूंगा। लेकिन यदि मेरे आराध्य विष्णु मुझ से कुछ मांगे, तो मैं कैसे मना कर सकता हूँ? अतः आप मुझे आज्ञा दें कि मैं नारायण की कसौटी पर खरा उतरूं। फिर जैसा आपने कहा कि यह मेरे दादा श्री प्रह्लाद की दादी, मेरी पड़दादी अदिति के पुत्र हैं। यह तो मेरे पड़दादा हुए। इनका स्थान तो मेरे हृदय में सर्वोच्च होना चाहिए। मेरा राज्य तो इन्हीं का है। स्वयं इन्होंने मुझे चिरंजीवी का वर दिया है, अतः मेरे प्राण तो मांग नहीं सकते। राज्य यदि मांगे तो यह भी उन्हीं का है। आप मुझे इस सौभाग्य से वंचित न करें।'

इस प्रकार जब सम्राट महाबालि को गुरुदेव शुक्राचार्य ने अपनी हठ पर अड़े देखा तो उन्हें क्रोध आ गया और बोले, 'सम्राट महाबालि, मैंने बड़े प्रयास से तेरे १०० राजसूय यज्ञों का सफलता पूर्वक संचालन किया है। तुझे अजेय बनाया है। यदि तू मेरी आज्ञा का पालन नहीं करेगा तो मैं तुझे श्री-विहीन कर दूंगा।'

सम्राट महाबालि गुरुदेव के चरणों पर पड़े हुए बोले , 'गुरुदेव, मैं श्री-विहीन होकर भी आपके चरणों में पड़ा रहूँगा। मुझे आप श्री-विहीन, राज्य-विहीन कुछ भी कर दीजिए, बस अपने चरणों से अलग मत कीजिए और मुझे आज्ञा दीजिए ताकि मैं अपना वचन निभा सकूं।'

गुरुदेव शुक्राचार्य ने यह जान लिया कि यह मूर्ख सम्राट अब मेरी नहीं सुनेगा। अतः उन्होंने क्रोध त्याग शांत भाव में कहा, 'पुत्र, जैसी तेरी इच्छा।'

लेकिन वह आखिर गुरु थे। अपने शिष्य का सर्वनाश कैसे देख सकते थे? अतः वह मेढ़क का रूप धारण कर कमंडल के छिद्र में बैठ गए, ताकि कमंडल से संकल्प हेतु जल ही न निकल सके।

सम्राट महाबालि बौने वामन के पास पहुँच उनके चरणों में पड़ गए। बौने वामन ने उन्हें उठाया और पूछा, 'हे सम्राट, क्या मुझे जल संकल्प के पश्चात मुझे मेरा मनचाहा दान दोगे?'

'अवश्य, अवश्य, प्रभु, मेरा तन, मन, धन, राज्य सब आपका ही तो है। आप बस आदेश दीजिए,' सम्राट महाबालि बोले।

सम्राट महाबालि की ओर बौने वामन ने मुसकुरा कर देखा और कमंडल से जल निकालने का प्रयास किया। कमंडल के छिद्र में तो गुरुदेव शुक्राचार्य जी मेढ़क के रूप में बैठे हुए थे, अतः जल निकला ही नहीं। प्रभु तो इसका कारण तुरंत समझ गए। यज्ञशाला की एक लकड़ी से खरपंच निकाली और कमंडल के छिद्र को खोलने के लिए उसमें डाल दिया। अभाग्य से वह गुरुदेव शुक्राचार्य के एक नेत्र में जा कर लगी। उनके उस नेत्र से रक्त निकलने लगा। दर्द से छटपटाते हुए वह तुरंत छिद्र से बाहर निकल आए। इस कारण गुरुदेव शुक्राचार्य ने अपना एक नेत्र भी खो दिया। बौने वामन ने तुरंत अपनी धोती के एक छोर से गुरुदेव शुक्राचार्य के नेत्र से निकलते रक्त को स्वच्छ किया। इससे उनके नेत्र की पीड़ा जाता रही।

तब बौने वामन ने कमंडल से जल निकाला और उसे सम्राट महाबालि के कर पर रख संकल्प कराया।

फिर बौने ब्राह्मण बोले, 'हे महादानी सम्राट महाबालि, मैं तो केवल तीन पग भूमि अपने निवास के लिए कुटिया बनाने के लिए चाहता हूँ। मैं एक निर्धन ब्राह्मण तेरे राज्य में अपनी कुटिया बनाकर जीवन निर्वाह करता रहूँगा।'

सम्राट महाबालि ने कहा, 'प्रभु, केवल तीन पग भूमि? इसमें कुटिया कैसे बन सकती है? आप कुछ बड़ी भूमि मांगिए। मैं स्वयं आपकी कुटिया ही नहीं, आपके आश्रम और गुरुकुल का निर्माण स्वयं करवाऊंगा।'

मुसकुराकर बौने वामन बोले, 'कुछ अंगुल का ही तो मेरा आकार है, हे सर्वश्रेष्ठ सम्राट। मैं कोई ज्ञानी अथवा आचार्य नहीं जो आश्रम अथवा गुरुकुल की इच्छा रखूँ। मैं तो बस एक छोटी सी कुटिया में अपना जीवन निर्वाह करते हुए शेष जीवन प्रभु के चरणों में अर्पण करना चाहता हूँ। आप मुझे केवल और केवल तीन पग भूमि ही दे दें।'

सम्राट महाबालि तब बौने वामन के समक्ष करबद्ध बोले, 'जैसी आपकी इच्छा। मैं आपको अपने राज्य के किसी भी क्षेत्र में, जो भी आपको पसंद हो, तीन पग भूमि दान देता हूँ।'

सम्राट महाबालि का इतना ही कहना था कि उन बौने ब्राह्मण ने अपने त्रिविक्रम रूप को बढ़ाया। उन्होंने विकराल रूप धारण कर लिया। उनका रूप इतना विकराल था कि उनके सर और पैर को देखना भी असंभव था। भूलोक में पद, भुवर्लोक में जंघा, स्वर्गलोक में कमर, महःलोक में पेट, जनलोक में हृदय, यमलोक में कंठ की स्थापना कर सत्यलोक में मुख, उसके ऊपर मस्तक स्थापित किया। सूर्य, चंद्रमा आदि सब ग्रहगण, योग, नक्षत्र, इंद्रादिक देवता और शेष आदि सब नागगणों ने विविध प्रकार से वेद सूक्तों से तब उनकी प्रार्थना की।

तब वामन ने सम्राट महाबालि का हाथ पकड़कर कहा, 'हे राजन, एक पद से पृथ्वी, दूसरे से स्वर्गलोक पूर्ण हो गए। अब तीसरा पग कहाँ रखूँ?'

यह देख और सुन सम्राट महाबालि ने अपना सर झुका लिया और बोले, 'हे प्रभु, तीसरा पग आप मेरे सर पर रख लीजिए।'

वामन ने तब अपना पैर सम्राट महाबालि के मस्तक पर रख दिया और बोले, 'सम्राट महाबालि, अब आपका समस्त साम्राज्य एवं आप स्वयं मेरे हुए। मैं आपका स्वामी हूँ और आदेश देता हूँ कि आप पाताल का राज्याभिषेक स्वीकार करें। स्वर्ग का राज्य में इंद्रदेव को और पृथ्वी का राज्य में चंद्रवंशी एवं सूर्यवंशी सम्राटों में विभाजित करता हूँ।'

सम्राट महाबालि मुसकुराकर प्रसन्नता से बोले, 'हे प्रभु, मैं तो सदैव से ही आपका था, आपका हूँ एवं आपका ही रहूँगा। मैं सदैव आपका सेवक और आप मेरे सदैव स्वामी। जैसी आपकी आज्ञा। मुझे पाताल लोक जाने की आज्ञा दीजिए।'

तभी त्रिक्काकरा की प्रजा में हाहाकार मच गया। प्रभु को दंडवत कर सभी 'त्राहि मां त्राहि मां' करने लगे और विनती करने लगे कि हे प्रभु हमारे अन्नदाता स्वामी सम्राट महाबालि को आप यहीं त्रिक्काकरा में ही निवास की आज्ञा दें।

प्रभु वामन ने उन सब को सम्बोधित करते हुए कहा, 'हे सभासदो और समस्त प्रजागण, महाबालि मेरा भी अति प्रिय भक्त है। लेकिन विधि के विधान का तो सभी को पालन करना पड़ता है। मैं स्वयं भी उससे अछूता नहीं हूँ। सम्राट महाबालि का पाताल सम्राट बनना ही विधि का विधान है। हाँ, मैं वर देता हूँ कि वर्ष में एक बार सम्राट महाबालि अपनी इस भूलोक की राजधानी त्रिक्काकरा में अवश्य आ सकेंगे। वह दिवस 'ओनम' उत्सव के रूप में मनाया जाएगा।'

तब प्रभु वामन आचार्य स्वर्भानु की ओर मुड़े और बोले, 'स्वर्भानु, गुरुदेव शुक्राचार्य अब अपने गुरु महादेव के पास कैलाश जाना चाहते हैं। उनकी कैलाश जाने की इच्छा तो कई युगों से है, लेकिन वह तुम्हारे महातप से वापस आने एवं सम्राट महाबालि के १०० राजसूय यज्ञ समापन की प्रतीक्षा कर रहे थे। अब यह दोनों ही कार्य संपन्न हो गए हैं। अब हृदय से उन्हें कैलाश के लिए विदा करो, और सम्राट महाबालि के साथ पाताल लोक जाकर उनका गुरु के रूप में मार्ग दर्शन करो।'

आचार्य स्वर्भानु प्रभु वामन के चरणों पर लोट गए। उनके नेत्रों से अविरल अश्रु धारा बह रही थी। बस इतना ही बोले, 'जैसी प्रभु की इच्छा।'

तत्पश्चात प्रभु वामन गुरुदेव शुक्राचार्य की ओर मुड़े और उन्हें आशीर्वाद देते हुए बोले, 'हे शुक्राचार्य, तुमने दैत्य एवं दानव वंश का मार्ग दर्शन कई युगों तक किया है। अब आप अपनी इच्छानुसार कैलाश पधारें। महादेव वहां आपकी प्रतीक्षा में हैं। वहीं वह आपके नेत्र की शल्य-चिकित्सा कर आपको नेत्र दान देंगे एवं आप फिर से उसी प्रकार दोनों नेत्रों से देख पाएंगे।'

प्रभु वामन के मधुर शब्द सुन गुरुदेव शुक्राचार्य भावुक हो गए। उनके नेत्रों से जलधार बह निकली। उनके हृदय से उनकी स्तुति निकल पड़ी।

शांतकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशम् ।
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ॥
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यम् ।
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

हम उन विष्णु की वंदना करते हैं जो शांत स्वरूप हैं, सर्पों के शैया पर शयन करते हैं। जिनकी नाभि से कमल (ब्रह्मा का आसन) निकला है, जो देवताओं के स्वामी हैं। जो संपूर्ण विश्व के आधार हैं, आकाश के समान सर्वव्यापी हैं, बादल के समान श्याम रंग के हैं और जिनके अंग अति सुंदर हैं। जो माता लक्ष्मी के प्रिय हैं, कमल के समान नेत्र वाले हैं, और योगी जन ध्यान के द्वारा जिन्हें प्राप्त करते हैं। वह समस्त लोक के एकमात्र स्वामी हैं और जन्म-मृत्यु के भय को हरने वाले हैं।

स्तुति के पश्चात सभी ने प्रभु को दंडवत प्रणाम किया। सभी को आशीर्वाद देकर तब प्रभु अंतर्ध्यान हो गए।

सम्राट महाबालि सम्राज्ञी सुदेष्णा के साथ यज्ञशाला से तब अपने महल लौट आए और पाताल लोक जाने की तैयारी में व्यस्त हो गए। इधर आचार्य स्वर्भानु के साथ गुरुदेव शुक्राचार्य अपने आश्रम में लौट आए।

आश्रम में आते ही आचार्य स्वर्भानु ने गुरुदेव के चरण पकड़ लिए और बोले, 'हे गुरुदेव, आप कैलाश प्रस्थान से पहले मुझे वामन अवतार की सम्पूर्ण कथा सुनाइए। आपने मुझे इन्हें मेरी पड़दादी अदिति का पुत्र कहकर सम्बोधित किया था। स्वयं हरि विष्णु ने उनकी कोख से जन्म किस कारण हेतु लिया, मुझे यह सब कथा विस्तार से समझाइए।'

अपने शिष्य स्वर्भानु के मधुर शब्दों को सुन और उसकी वामन अवतार के प्रति जानने की जिज्ञासा जान, गुरुदेव शुक्राचार्य बोले, 'अवश्य पुत्र। ध्यान से वामन अवतार की पूर्ण कथा सुनो।'

वामन अवतार

तब गुरुदेव शुक्राचार्य अपने शिष्य आचार्य स्वर्भानु को वामन अवतार की कथा सुनाने लगे।

हे पुत्र, जब सम्राट महाबालि ने त्रिभुवनों की विजय प्राप्त कर ली, इंद्रदेव को भी अपना स्वर्ग का सिंहासन छोड़ अज्ञातवास में जाना पड़ा, तब इंद्र किसी भी प्रकार से महाबालि को परास्त करने की योजना बनाने लगे। स्वयं हरि विष्णु से संरक्षित सम्राट महाबालि को परास्त करने का उन्हें कोई उपाय सूझ ही नहीं रहा था। अति सोच विचार करने के पश्चात तब वह मेरु पर्वत निवासन अपनी माँ अदिति के पास गए। माँ को अपनी व्यथा सुनाई और किसी भी प्रकार दैत्यराज महाबालि को परास्त करने का मार्ग सुझाने की विनती की। तब माँ अदिति बोलीं, 'मेरे सर्वश्रेष्ठ पुत्र इंद्र, यदि तुम सभी देवताओं एवं मरुद्गणों के साथ मिलकर भी महाबालि को परास्त नहीं कर सकते तब इस ब्रह्माण्ड में हरि विष्णु के अतिरिक्त उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। हम सभी को इस समस्या पर तुम्हारे पिता महर्षि कश्यप से विचार विमर्श करना चाहिए। वह ही इसका कोई उपाय अवश्य निकालेंगे। जानती हूँ महाबालि हरि विष्णु से संरक्षित हैं, लेकिन उनसे बढ़कर देवताओं का हितकारी भी कोई नहीं है। चलो, हम सब महर्षि कश्यप के आश्रम पहुँच उनसे इस समस्या के समाधान की याचना करें।'

इस प्रकार विचार करते हुए माँ अदिति के साथ इंद्रदेव एवं सभी देवता महर्षि कश्यप के आश्रम कश्मीर पहुंचे। महर्षि कश्यप ने उनकी याचना पर विचार करते हुए सुझाव दिया कि हमें इसमें ब्रह्मदेव का सहयोग लेना चाहिए। अतः महर्षि कश्यप, अदिति, इंद्र एवं सभी देव तब ब्रह्मदेव के पास ब्रह्मलोक पहुंचे।

ब्रह्मदेव ने जब महर्षि कश्यप, अदिति, इंद्र एवं सभी देवताओं को आते देखा तो उन्हें यथोचित आसन दिए। अन्तर्यामी ब्रह्मदेव तब बोले, 'हे महर्षि कश्यप, अदिति, इंद्र एवं सभी देवगणो, मैं आपके आने का कारण भली भांति समझता हूँ और अति समय से इस पर विचार भी कर रहा हूँ। दैत्यराज प्रभावशाली सम्राट महाबालि को परास्त करना, जैसा तुमने भी विचार कर रखा है, केवल हरि विष्णु की कृपा से ही संभव है। इस समय हरि विष्णु उत्तर दिशा में क्षीर सागर के उत्तरी तट पर 'अमृत' नामक स्थान

पर तप में लीन हैं। महर्षि कश्यप और अदिति, आप दोनों, वहीं प्रस्थान कीजिए और तप से उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास कीजिए। जब प्रभु प्रसन्न होकर प्रगट हो जाएं और वरदान माँगने को कहें तब आप उनसे इस समस्या का समाधान पूछिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रभु तुम्हें इस समस्या के समाधान का वर देंगे।

ब्रह्मदेव की आज्ञा से तब महर्षि कश्यप एवं अदिति क्षीरसागर के उत्तर में स्थित इस ‘अमृत’ स्थान को प्रस्थान कर गए।

कठिनाई से कई नदियों एवं समुद्रों को पार कर यह दोनों महान विभूतियां अंततः 'अमृत' नाम के ऐसे स्थान पर पहुंचे जहां न कोई प्राणी था, न ही सूर्य का प्रकाश था। प्रत्युत, चारों और घनघोर अन्धेरा था जिसमें वन की सीमाएं का कोई अंत ही दृष्टिगोचर नहीं होता था। महर्षि कश्यप ने तब अदिति को प्रज्ञा संपन्न योगी, देवेश्वर, कल्याण-मूर्ति, सहस्रचक्षु नारायण की प्रसन्नता की प्राप्ति हेतु कामद व्रत की दीक्षा दी। तत्पश्चात महर्षि कश्यप एवं अदिति मौन धारण कर उचित स्थान पर वीरासन स्थिति में बैठ कर घोर तप करने लगे। महर्षि कश्यप ने वेदों में कथित 'परमस्तव' उच्चारण से हरि विष्णु को प्रसन्न करने के उद्देश्य से सहस्त्रों वर्ष तप किया।

महर्षि कश्यप एवं अदिति के तप से प्रसन्न हो हरि विष्णु अंततः उनके समक्ष प्रगट हुए और बोले, 'हे ऋषिवर कश्यप एवं ऋषि-पत्नी अदिति, तुम दोनों ने घोर तप किया है। तुम्हारा कल्याण हो। अपने हृदय की कामना मुझे बताओ। मैं अवश्य ही उसे पूर्ण करूंगा।'

दोनों, महर्षि कश्यप एवं अदिति, ने हरि विष्णु के चरण पकड़ लिए। अपने इष्ट हरि विष्णु को अपने समक्ष देख महर्षि कश्यप के नेत्रों से अश्रु धारा बह निकली। वह करबद्ध मधुर वाणी में बोले, 'हे प्रभु यदि आप हम पर प्रसन्न हैं, तो हमें हमारे पुत्र इंद्रदेव द्वारा दैत्य सम्राट महाबलि को परास्त करने का मार्ग सुझाइए।'

हरि विष्णु ने फिर अदिति की ओर देखा। अदिति ने भी तुरंत महर्षि कश्यप के शब्दों को दोहरा दिया ओर बोलीं, 'हे भगवन, जो महर्षि ने माँगा वह मुझे भी अति प्रिय लगा। मेरे हृदय की भी यही इच्छा है।'

उन दोनों की अभिलाषा सुन और हृदय में ब्रह्मदेव के वचनों का आदर कर तब कृपानिधान हरि विष्णु बोले, 'हे ऋषिवर, मैं अपने अंशावतार वामन के रूप में माता अदिति की कोख से पहले ही जन्म ले चुका हूँ। मैं अपने इस स्वरूपांश में सभी देवताओं के हित की रक्षा करूंगा। अभी आप जिस मार्ग से आए हो, उसी मार्ग से पृथ्वी लोक वापस जाओ और समय की प्रतीक्षा करो।'

अपने आश्रम लौट महर्षि कश्यप एवं अदिति हरि विष्णु के स्मरण में खो गए और उनकी समाधि लग गई। एक सहस्त्र वर्ष तक वह दोनों समाधि में रहे। जब वह समाधि से जाग्रत हुए तब सभी आश्रमवासियों ने उनकी स्तुति की। तब से उनका यह आश्रम 'अदितिवन' नाम से प्रसिद्ध हुआ। माँ अदिति के तप से इस वन को आध्यात्मिक स्वरुप की प्राप्ति हुई। शास्त्रों में ऐसा वर्णन हैं कि इस ‘अदितिवन’ के दर्शन से समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है, तथा जीवन मंगलमय बनता है।

जब महर्षि कश्यप एवं ऋषि-पत्नी अदिति की समाधि खुली तो हरि विष्णु ने एक बार फिर उनको दर्शन दिए। प्रभु को समक्ष देख अदिति रोने लगीं और बोलीं, 'हे दयानिधान, मेरे पुत्र इंद्र को दैत्यों ने परास्त कर अज्ञातवास में जाने को बाध्य कर दिया है। दैत्यों ने उसके स्वर्ग के राज्य को तो हड़प ही लिया है, यज्ञों में मिलने वाले उसके भाग से भी उसे वंचित कर दिया है। प्रभु, जैसा आपने हमें वर दिया था, अब इंद्र की रक्षा कीजिए एवं इन अत्याचारी का नाश कीजिए, जिससे उसका राज्य उसे वापस मिले और यज्ञ में प्राप्त उसका भाग उसे मिल सके।'

अदिति को इस प्रकार दुःखी देख हरि विष्णु बोले, 'हे देवी, दुःखी मत हो। तुम्हारी इच्छानुसार मैं शीघ्र ही अपने अंश वामन के द्वारा शीघ्र ही इसका समाधान खोज लूंगा एवं तुम्हारे शत्रुओं को उचित मार्ग दिखलाऊँगा। तुम शोक छोड़ अब प्रसन्न हो जाओ।'

इस प्रकार कर्ण प्रिय मधुर वचन कह हरि विष्णु अंतर्ध्यान हो गए।

प्रभु विष्णु के अंतर्ध्यान होने के पश्चात सभी इन्द्रादि देवों ने एकत्र हो हरि अंशावतार वामन की स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न होकर विष्णु अंशावतार वामन प्रगट हो गए और मुसकुराकर अभिप्राय पूर्ण ऐश्वर्य युक्त वाणी में बोले, 'हे देवगणो, माता अदिति, अब

आप शोक मुक्त हो जाओ। मैं समय आने पर इंद्र को उसका स्वर्ग का सिंहासन वापस दिला दूंगा। अब आप अपने अपने स्थान को लौट समय की प्रतीक्षा करो।'

यह कहकर वामनावतार प्रभु जटा, दंड, छत्र एवं कमंडल धारण कर योग साधना के लिए वन में चले गए। वन में वामन ने अति घोर तप किया। तप के माध्यम से उन्होंने प्राणी रूप में भी प्रभुता प्राप्त कर ली। उन्होंने इस जगत को तप के महत्व की शिक्षा दी। उन्होंने सिखलाया कि तप द्वारा प्राप्त शक्तियों से ब्रह्मा इस जगत की उत्पत्ति, विष्णु पालन एवं महादेव संहार करते हैं। जब प्राणी तप के माध्यम से साधना में लीन होता है तो उसे अलौकिक लाभ प्राप्त होता है। जैसे जैसे उसकी साधना बढ़ती जाती है, वैसे वैसे वह स्पष्ट रूप से तप के प्रभाव की अनुभूति करने लगता है। तप का अवलंबन करने से ही प्राणी में आंतरिक प्रसन्नता और आनंद की अनुभूति होती है। तप ही अध्यात्म में विश्वास दिलाता है और तब अध्यात्म से ही हमें निःस्वार्थ भाव से अच्छे कर्म करने की प्रेरणा मिलाती है। निःस्वार्थ कर्म ही प्राणी को अपने लक्ष्य की प्राप्ति एवं ईश्वर से साक्षात्कार करा सकता है। कर्म शरीर, वाणी और मन से किए जाने चाहिए। प्रत्येक कर्म का एक नियत परिणाम होता है। परिणाम कारण में वैसे ही निहित रहता है, जैसे बीज में वृक्ष। प्रत्येक कर्म का हमारे ऊपर तुरंत परिणाम होता है। कर्म के परिणाम मन की प्रत्येक वृत्ति पर अमिट छाप डाल देते हैं जो प्राणी के जीवन निर्माण का विकास करते हैं। अब प्राणी अच्छाई की ओर जाएगा अथवा बुराई की ओर, यह उसकी वृत्ति पर निर्भर है। तप से ही बुरी वृत्तियों पर अंकुश लगाया जा सकता है। तप और साधना के द्वारा ही प्राणी अपने व्यक्तित्व को उज्ज्वल बना सकता है। वामन अवतार ने शिक्षा दी कि तप से ही प्राणी अपनी दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। ईर्ष्या, लोभ, मोह इत्यादि दुर्भावनाओं से छुटकारा पा सकता है। अपने मन को वश में रखने की कला जान सकता है। तप के माध्यम से ही प्राणी अपनी अंतरात्मा को शुद्ध कर सकता है जिससे उसे शुद्ध संकल्प, उमंग, उत्साह व ऊर्जा प्राप्त होती है। तप के द्वारा ही प्राणियों के हृदय में व्यर्थ और नकारात्मक विचारों का प्रभाव बंद हो जाता है और आंतरिक बल, क्षमता व प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने वाले सकारात्मक विचार उत्पन्न होने लगते हैं। तप इहलोक ही नहीं, परलोक भी सुधारता है।

इस प्रकार एक लम्बे समय तक तप करते हुए, वन में आश्रम आश्रम जा आचार्यों, ऋषियों इत्यादियों को वामन अवतार शिक्षा देते रहे। जब सम्राट महाबालि के १००वें

राजसूय यज्ञ के बारे में दिव्य दृष्टि से उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ तब यह विचारकर कि अब माँ अदिति को दिए वचन की पूर्ति का समय आ गया है, वह सम्राट महाबालि के राजसूय यज्ञ में पधारे। उसके पश्चात क्या हुआ, तुम्हें भली भांति ज्ञात है।

इस कथा को सुनाते हुए गुरुदेव शुक्राचार्य आगे बोले, 'पुत्र स्वर्भानु, हरि विष्णु का महाबालि के प्रति प्रेम अनन्य है। यदि वह चाहते तो अपने तप के प्रभाव से महाबालि के १००वें राजसूय यज्ञ को भंग भी कर सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। अपितु १००वें राजसूय यज्ञ को सफलता पूर्वक संपन्न होने दिया और महाबालि को चिरंजीवी का आशीर्वाद भी दिया। मैं दिव्य दृष्टि से देख पा रहा हूँ कि उन्हें इसका स्वयं भी अत्यंत खेद है। माँ अदिति को दिए वचन को निभाने के लिए ही उन्होंने यह सब लीला रची। वह शीघ्र ही इस शरीर को त्याग कर अब हरि विष्णु में समाहित होने वाले हैं। हृदय से तुम सदैव उनका आदर सम्मान करते हुए उनकी स्तुति करते रहना। वही महादेव द्वारा बताए गए तुम्हारे अमरत्व पाने का मार्ग प्रशस्त करेंगे। अब तुम वामन अवतार के आदेशानुसार सम्राट महाबालि के साथ सुतल पाताल लोक जाने की तैयारियां प्रारम्भ करो। सम्राट महाबालि एवं सभी दैत्य एवं दानव वंश के गुरु का भार ग्रहण करो और इन सब का उचित मार्ग प्रदर्शन करो। तुम्हारे सुतल प्रस्थान करने के साथ ही मैं भी अपने गुरु महादेव के पास कैलाश प्रस्थान कर जाऊँगा। मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। जब भी मेरी याद आए अथवा मुझ से कोई विचार विमर्श करना हो, तब मुझे केवल स्मरण कर लेना। मैं स्वयं तब सूक्ष्म शरीर में तुम्हारे समीप आकर तुम्हारा उचित मार्ग प्रदर्शन करूंगा।'

इधर महल में सम्राट महाबालि, सम्राज्ञी सुदेष्णा, राजकुमार बाण इत्यादि सभी सभासदों के साथ सुतल जाने की तैयारियां करने लगे। सुतल में दानव नरेश को सूचित कर दिया गया कि स्वयं सम्राट महाबालि अब पाताल लोक का राज्य सम्हालेंगे। जब सम्राट महाबालि की सुतल जाने की सभी तैयारियां पूर्ण हो गईं तो वह गुरुदेव शुक्राचार्य के आश्रम पधारे। उनसे आशीर्वाद लिया। आचार्य स्वर्भानु के समक्ष करबद्ध खड़े होकर उनसे स्वयं का एवं सभी दैत्य एवं दानव वंश का गुरु भार सम्हालने की विनती की। आचार्य स्वर्भानु की स्वीकृति के बाद उनसे करबद्ध विनती के स्वर में बोले, 'गुरुदेव, अब देरी किस बात की? तुरंत सुतल प्रस्थान करने की आज्ञा दें।'

आचार्य स्वर्भानु, सम्राट महाबालि, सम्राज्ञी सुदेष्णा, राजकुमार बाण इत्यादि सब ने तब गुरुदेव शुक्राचार्य का दंडवत प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किए। गुरुदेव शुक्राचार्य को महादेव के पास कैलाश जाने की विदाई दी। तभी आकाश से महादेव द्वारा भेजा हुआ स्वर्ण जड़ित विमान प्रगट हो गया। गुरुदेव शुक्राचार्य उस विमान में बैठ तब कैलाश पर्वत की ओर चले गए।

गुरुदेव शुक्राचार्य के कैलाश प्रस्थान करने के तुरंत बाद गुरु आचार्य स्वर्भानु की आज्ञा मिलने पर सम्राट महाबालि भी अपने समस्त परिवार एवं सभासद इत्यादियों के साथ सुतल की ओर प्रस्थान कर दिए।

सुतल पहुंचते ही आचार्य स्वर्भानु, सम्राट महाबालि, उनके समस्त परिवार एवं सभासदों का भव्य स्वागत हुआ। एक शुभ मुहूर्त पर सम्राट महाबालि का गुरु आचार्य स्वर्भानु ने राज्याभिषेक कराया और अब सम्राट महाबालि समस्त दैत्य एवं दानव वंश के सम्राट घोषित कर दिए गए। आचार्य स्वर्भानु ने उनके गुरु का पदभार सम्हाला। सम्राट महाबालि की करबद्ध विनती के पश्चात भी उन्होंने महल में रहना स्वीकार नहीं किया, बल्कि सुतल से कुछ दूर अपना एक आश्रम निर्मित किया। अपने शिष्यों के साथ वह वहीं रहने लगे। सम्राट महाबालि की सभा में अवश्य वह समय पर पहुंच अपना उच्च आसन ग्रहण करते और यथा योग्य सम्राट का मार्ग प्रदर्शन करते।

एक दिन प्रातः जब आचार्य स्वर्भानु सम्राट महाबालि की सभा में पहुंचे तो उन्होंने एक अत्यंत प्रतिभावान, कीर्तिमान, आभामय एवं दिव्य प्राणी को अंग रक्षक की वेशभूषा में सम्राट की सुरक्षा में नियुक्त देखा। इससे पूर्व उन्होंने इस अंग रक्षक को कभी नहीं देखा था। वह न तो दैत्य वंश का और न ही दानव वंश का प्राणी प्रतीत होता था। आचार्य स्वर्भानु का माथा ठनका। कौन हो सकता है यह दिव्य प्राणी? कहीं देवताओं द्वारा सम्राट महाबालि को हानि पहुंचाने के लिए कोई षड्यंत्र तो नहीं रचा गया है? उन्होंने गुरुदेव शुक्राचार्य द्वारा प्रदानित दिव्य दृष्टि का प्रयोग किया और अचंभित होकर जाना कि यह तो स्वयं हरि विष्णु हैं। हरि विष्णु, सम्राट महाबालि के अंग-रक्षक! वह कुछ समझने का प्रयास कर ही रहे थे कि अंग रक्षक ने उनकी ओर मुसकुराकर देखा और इस रहस्य को गुप्त ही रखने का संकेत दिया। आचार्य स्वर्भानु ने तब हृदय में उनको नमन किया और सभा में चले गए। आज उनका मन सभा में बिलकुल भी नहीं लग रहा था। उन्हें बार बार हरि विष्णु का सम्राट महाबालि के अंग

रक्षक के रूप में उपस्थिति होने पर आश्चर्य हो रहा था तथा इसका कारण जानने की जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी। जब सभा समाप्त हुई तो वह सम्राट महाबालि से विनम्र वचन बोले, 'हे सम्राट, लगता है तुमने नए अंग रक्षक को नियुक्त कर लिया है। मैं इस नए अंग रक्षक को अपने आश्रम ले जाने की अनुमति चाहता हूँ ताकि इसके बारे में कुछ अधिक पता लगा सकूं।'

गुरु आचार्य स्वर्भानु के शब्द पूर्ण भी नहीं हो पाए थे कि तुरंत सम्राट महाबालि अपने सिंहासन से उठे और आचार्य के चरण स्पर्श कर क्षमा याचना करने लगे कि उन्होंने बिना उनकी अनुमति के इस अंग रक्षक की नियुक्ति कर ली। वह उसकी कांति, शौर्य, प्रतिभा से इतना प्रभावित हो गए कि जब उसने उनके अंग रक्षक बनने की उनसे प्रार्थना की, तो वह मना नहीं कर सके।'

आचार्य स्वर्भानु ने उठा कर सम्राट को गले से लगा लिया और बोले, 'सम्राट, मैं भली भांति जानता हूँ कि तुम कोई अनुचित निर्णय ले ही नहीं सकते। मुझे तुम्हारे निर्णय पर कोई संशय नहीं है। अवश्य ही यह प्राणी अति प्रतिभाशाली है। जैसा मुझे पता चला है कि अब तक इसके आवास का कोई उचित प्रबंध नहीं हो सका है। जब तक इसके आवास का उचित प्रबंध न हो जाए, यह मेरे साथ आश्रम में ही रहे, मैं तुमसे यह अनुमति चाहता हूँ। इससे मुझे इसका साथ प्राप्त होगा एवं इसके बारे में अधिक से अधिक जानकारी उपलब्ध हो सकेगी।'

'अवश्य गुरुदेव। यह तो अति उत्तम विचार है। मैं अभी अंग रक्षक को यह निर्देश दिए देता हूँ,' ऐसा कहकर सम्राट महाबालि ने अंग रक्षक को अपने समीप बुलाया, और जब तक महल में उसके रहने की उचित व्यवस्था नहीं हो जाती तब तक उसे गुरु आचार्य स्वर्भानु के आश्रम में रहने का आदेश दिया।

अंग रक्षक को लेकर तब आचार्य स्वर्भानु अपने आश्रम में आ गए। सर्वप्रथम वह उन्हें एक विशेष कक्ष में ले गए जहां उन्होंने उनके चरण स्पर्श कर उनकी स्तुति की। उनकी स्तुति से प्रसन्न हो अंग-रक्षक के भेष में हरि विष्णु ने उन्हें आशीर्वाद दिया और बोले, 'स्वर्भानु, मैं तुम्हारी जिज्ञासा को भली भांति समझता हूँ। तुम शुक्राचार्य की भांति मुझे अति प्रिय हो। मैं अपने प्रिय भक्तों से कोई छुपाव नहीं करता। अवश्य ही मैं

महाबालि का अंग रक्षक बन कर क्यों उपस्थित हुआ हूँ, तुम्हें बतलाऊँगा। ध्यान से सुनो।'

हरि विष्णु आचार्य स्वर्भानु से बोले, 'प्रिय स्वर्भानु, मुझे महाबालि अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है। वह अपने पितामह प्रह्लाद के समान ही मेरा अनन्य भक्त है। मैंने माता अदिति को अपने दिए वचनानुसार महाबालि का त्रिलोक का साम्राज्य उससे लेकर, स्वर्ग का साम्राज्य इंद्र को दे दिया, पृथ्वी का साम्राज्य चंद्रवंशी एवं सूर्यवंशी सम्राटों में विभाजित कर दिया, और पाताल लोक का साम्राज्य महाबालि को दे दिया। मेरे इस अनुचित निर्णय पर भी मेरा भक्त महाबालि एक शब्द नहीं बोला और नतमस्तक होकर मेरी आज्ञा का पालन करते हुए वह पाताल लोक चला आया। मुझे स्वयं अपने इस कृत्य पर ग्लानि हुई। एक तो इस कृत्य का प्रायश्चित करना आवश्यक था, दूसरा मैं अपने भक्त से दूर भी नहीं रह सकता, अतः मैं महाबालि की राजधानी सुतल उसका अंग रक्षक बन कर आ गया। यह एक गुप्त रहस्य है जिसे तुम्हारे एवं ब्रह्मऋषि नारद के अतिरिक्त और कोई भी नहीं जानता। इसे गुप्त ही रखो। समय आने पर मेरी लीला से स्वयं ही यह भेद खुल जाएगा। तब तक मैं प्रायश्चित कर चुका हुँगा।'

आश्चर्य से आचार्य स्वर्भानु हरि विष्णु के चरण पकड़ कर बोले, 'हे प्रभु, आपके आदेश की अवहेलना करने का साहस किस में है? मैं तो गुरुदेव शुक्राचार्य द्वारा बताई आपकी महिमा का संभवतः एक अंश ही जानता हूँ। मुझे अति आश्चर्य है कि क्या माता श्री भी इस रहस्य से परिचित नहीं हैं?'

हरि विष्णु हंसकर बोले, 'यदि श्री को इस मेरी योजना का भान भी हो जाता तो वह मेरे साथ आने की हठ करतीं। ऐसे में मेरे लिए अपना प्रायश्चित करना अति कठिन हो जाता। इस कारण श्री को भी इस लीला का कोई भान नहीं है।'

आचार्य स्वर्भानु करबद्ध नतमस्तक होकर फिर प्रभु से बोले, 'प्रभु, यह मेरा महान सौभाग्य है कि जब तक आप महाबालि के महल में रहेंगे मुझे प्रतिदिन आपके दर्शन का लाभ प्राप्त होगा। मेरी आपसे एक विनती है। मैं प्रतिदिन प्रातः आपकी स्तुति में पुष्प अर्पण एवं आपके मस्तिष्क पर चन्दन लगाकर आपके आशीर्वाद से ही अपना दिन प्रारम्भ करना चाहता हूँ। इसकी आप मुझे अनुमति दें।'

प्रभु विष्णु आचार्य स्वर्भानु के प्रेम से गदगद हो गए और बोले, 'हे पुत्र, महाबालि के महल में यदि तुम ऐसा करोगे तो मेरा रहस्य अवश्य ही खुल जाएगा। मैं स्वयं प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में ही तुम्हारे आश्रम आ जाऊँगा। तब तुम जैसा उचित समझो मेरी स्तुति करो, पुष्प अर्पण करो, चन्दन लगाओ।'

प्रभु विष्णु की भक्त के प्रति प्रेम देखकर आचार्य स्वर्भानु के नेत्रों से जल छलक आया। वह बार बार उनके चरणों में अपना मस्तिष्क रखते हैं, और उनसे आशीर्वाद माँगते हैं। इसी प्रकार प्रातः हो गई। हरि विष्णु एवं आचार्य स्वर्भानु ने नित्य क्रिया, स्नान, ध्यान, इत्यादि किया। फिर आचार्य स्वर्भानु ने उनकी यथा-विधि स्तुति की, पुष्प अर्पण किए एवं उनके मस्तिष्क पर चन्दन लगाया। समय होने पर वह महाबालि के महल की ओर चल दिए।

सम्राट महाबालि के आदेश से इस नए अंग रक्षक की सम्राट के शयन कक्ष के साथ वाले कमरे में ही निवास की व्यवस्था की गई। अंग रक्षक के रूप में हरि विष्णु तब सम्राट के महल में निवास अवश्य करने लगे, परन्तु आचार्य स्वर्भानु को दिए वचनानुसार नित्य प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में वह आचार्य के आश्रम में पहुंच जाते। आचार्य स्वर्भानु उनकी यथा विधि स्तुति करते, पुष्प अर्पण करते, मस्तिष्क पर चन्दन लगाते, और तब प्रारम्भ होती उनकी नित्य दिन क्रिया।

इधर साकेत धाम में प्रारम्भ में तो माँ श्री ने हरि विष्णु की अनुपस्थिति पर अधिक ध्यान नहीं दिया। हरि विष्णु अपने भक्तों से मिलने, कोई लीला करने, त्रिदेवों एवं देवताओं की सभा में अथवा तप हेतु इस प्रकार कुछ समय के लिए जाते रहते थे। परन्तु यह अनुपस्थिति थोड़े समय के लिए ही होती थी। इस बार तो अति समय बीत गया और हरि विष्णु वापस साकेत धाम में नहीं आए। माँ श्री की चिंता बढ़ गई। माँ ने अपनी दिव्य दृष्टि से जानना चाहा कि प्रभु कहाँ हैं, लेकिन प्रभु की लीला! वह सफल नहीं हो सकीं। तब उन्हें ब्रह्मऋषि नारद याद आए। ब्रह्मऋषि नारद से प्रभु की कोई लीला छुपी नहीं है। उन्होंने ब्रह्मऋषि नारद का स्मरण किया। माँ श्री की पुकार सुन तब ब्रह्मऋषि नारद दौड़ते हुए साकेत धाम पहुंचे।

माँ श्री ने ब्रह्मऋषि नारद का उचित सत्कार किया और विनम्र वचन बोलीं, 'हे ब्रह्मऋषि, नारायण आपके हृदय में एवं आप नारायण के हृदय में वास करते हैं। उनकी

कोई लीला आपसे छिपी हुई नहीं है। एक लम्बे समय से प्रभु किस कार्य हेतु गए हुए हैं तथा उनका इस समय निवास कहाँ है, आप मुझे कृपया बतलाइये।'

माँ श्री की विनम्र वाणी सुन ब्रह्मऋषि नारद बोले, 'हे नारायणी, भगवान विष्णु इस समय पाताल लोक में सम्राट महाबालि के अंग रक्षक बन उसकी सेवा में तत्पर हैं। जब से नारायण ने तीन पग में महाबालि का त्रिलोक का साम्राज्य छीनकर स्वर्ग का साम्राज्य इंद्र को वापस लौटा दिया, पृथ्वी का साम्राज्य चंद्रवंशी और सूर्यवंशी क्षत्रियों में विभाजित कर दिया, और महाबालि को पाताल लोक का साम्राज्य दिया, तब से प्रभु ग्लानि से भरे हुए हैं। उन्हें अपना यह निर्णय अनुचित एवं महाबालि के प्रति अन्याय लगा, लेकिन माँ अदिति को दिए वचन से वह बद्ध थे। अपने प्रिय भक्त महाबालि का उनसे दूर होने का भी उन्हें दुःख था। अतः वह प्रायश्चित हेतु एवं अपने भक्त के समीप रहने के लिए उसके अंग रक्षक के रूप में उसकी सेवा में तत्पर हैं। स्वयं महाबालि को भी इसका कोई आभास नहीं है। मेरे और आचार्य स्वर्भानु के अतिरिक्त इस रहस्य को कोई नहीं जानता। अब आप भी इस रहस्य की भागीदार बन गईं हैं।'

ब्रह्मऋषि के मुख से यह सत्यता जान माँ श्री अचंभित हो गईं और बोलीं, 'हे ब्रह्मऋषि, मुझे अब एक एक पल प्रभु की अनुपस्थिति में काल के समान लग रहा है। कोई तो उपाय होगा जिससे प्रभु को वापस साकेत धाम बुलाया जा सके।'

ब्रह्मऋषि नारद बोले, 'माँ, प्रभु भक्त की कोई प्रार्थना अस्वीकार नहीं करते। यदि भक्त महाबालि स्वयं उनसे हठ कर निवेदन करें कि प्रभु अपनी राजधानी साकेत धाम वापस लौट जाएं, तभी प्रभु का वापस आना संभव हो सकता है। मेरे विचार से इस कार्य हेतु श्रावण मास की पूर्णिमा अति पावन सुअवसर है। तब तक प्रभु का स्वयं पर थोपा हुआ प्रायश्चित भी पूर्ण हो जाएगा। आप इस दिवस एक साधारण स्त्री का रूप धारण कर महाबालि की सभा में जाएं और उसे अपना भाई बनाकर उसकी कलाई पर धागे का रक्षा सूत्र बांधे। आपको बहन स्वीकार करने के पश्चात महादानी महाबालि आपको भेंट स्वरुप कुछ देने को प्रतिबद्ध हो जाएगा। आपसे याचना करेगा कि आप उससे कुछ मांगे। ऐसे में आप उसके अंग रक्षक की मुक्ति मांग लें। अवश्य ही तब यह रहस्य भी महाबालि के समक्ष खुल जाएगा और वह प्रभु के चरणों में पड़कर उनसे क्षमा याचना करते हुए उनसे आपके साथ साकेत धाम वापस जाने की

हठ करेगा। तब प्रभु विष्णु महाबालि के हठ को अस्वीकार नहीं कर पाएंगे और उसे आशीर्वाद देते हुए आपके साथ वापस साकेत धाम लौट आएंगे।'

ऐसा कहकर ब्रह्मऋषि नारद 'नारायण, नारायण' का जाप करते हुए एवं वीणा बजाते हुए वहां से चले गए।

माँ श्री ने श्रावण मास की पूर्णिमा की प्रतीक्षा की, और फिर वैसा ही किया जैसा कि ब्रह्मऋषि नारद ने उनसे कहा था।

श्रावण मास की पूर्णिमा को माँ श्री एक साधारण स्त्री का रूप धारण कर महाबालि की सभा में पहुँच उससे मिलने की गुहार लगाने लगीं। अंग रक्षक के रूप में विद्यमान हरि विष्णु ने अपनी पत्नी श्री को तुरंत पहचान लिया। प्रगट में वह श्री से तो कुछ नहीं बोले, परन्तु सम्राट महाबालि के समीप पहुँच कर उससे बोले, 'हे सम्राट, आपकी प्रजा की कोई स्त्री आपसे मिलना चाहती है। लगता है किसी घोर कष्ट में है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप उस स्त्री से अवश्य मिल लें।'

अपने अंग-रक्षक के यह विनीत वचन सुनकर सम्राट महाबालि ने तुरंत अपने एक सैनिक को उस स्त्री को अपने समक्ष प्रस्तुत करने का आदेश दिया। सैनिक तुरंत दौड़ा गया और उस स्त्री को अपने साथ ले आया।

आते ही उस स्त्री ने विनीत भाव से सम्राट महाबालि का अभिनंदन किया और बोलीं, 'हे सम्राट, सम्राट प्रजा का रक्षक होता है। प्रजा की समस्त नारियां अपनी अपनी आयु के अनुसार सम्राट के लिए माँ, बहन एवं पुत्री स्वरुपा होती हैं। मैं भी तुम्हें अपना भाई मानती हूँ। आज श्रावण मास की पूर्णिमा का अति पावन सुअवसर है। कृपया इस धागे को अपनी कलाई में बंधवाकर मुझे अपनी बहन के रूप में स्वीकार करें।'

सम्राट महाबालि हर्षित हो तुरंत अपने सिंहासन से उतर उन स्त्री की ओर बढ़े और समीप पहुँच बोले, 'प्रिय बहन, यह मेरा सौभाग्य है कि तुम मुझे अपना भाई मानती हो। यह रही मेरी कलाई। अवश्य ही तुम इस पर धागा बाँध बहन के प्रेम को प्रदर्शित करो।'

माँ श्री ने तुरंत सम्राट महाबालि की कलाई पर धागा बाँध दिया।

सम्राट महाबालि तब उस स्त्री से बोले, 'बहन, यह मेरा कर्तव्य हैं कि मैं अपनी बहन को कुछ उपहार दूँ। मुझे अंग रक्षक ने बताया कि तुम्हें कोई कष्ट है। अपना कष्ट मुझे निःसंकोच बताओ। इस त्रिलोक में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मैं तुम्हें दे कर तुम्हारा कष्ट निवारण न कर सकूं।'

तब साधारण स्त्री के रूप में माँ श्री बोलीं, 'हे सम्राट, तुम्हारी दान वीरता की मैंने अति कहानियां सुनी हैं। निःसंदेह ही तुम्हारे लिए इस त्रिलोक में कुछ भी असंभव नहीं है। मेरी तो एक अति लघु प्रार्थना है। तुम्हारा यह अंग रक्षक मेरा पति है। जब से उसने तुम्हारे अंग रक्षक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया है, घर से संन्यास ले लिया है। मैं उसके बिना नहीं रह सकती। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो संकल्प कीजिए कि आप अपने इस अंग रक्षक को सेवा मुक्त कर मुझे सौंप दें।'

अपनी मुंह बोली बहन के मुख से यह साधारण शब्द सुन सम्राट महाबालि हंसे और बोले, ''हे बहन, यह कौन दुर्लभ कार्य है। मैं अभी इस अंग रक्षक को सेवा मुक्त करता हूँ और इसे आदेश देता हूँ कि यह तुम्हारे साथ अभी वापस जाए।'

सम्राट महाबालि का यह आदेश सुनते ही देवी श्री अंग रक्षक रूपी श्री नारायण के समीप पहुँच गईं और अपने स्वरुप में आ गईं। विनम्रता से अंग रक्षक रूपी नारायण के चरणों पर पड़ बोलीं, 'प्रभु, अब आप अपने सत्य रूप में आइए और साकेत धाम पधारिए।'

देवी श्री के वचन सुन तुरंत हरि नारायण अपने स्वरुप में आ गए।

देवताओं के भी ईश्वर और संपूर्ण जगत के आधार हरि विष्णु तब अपने स्वरुप में आ गए। नीलमेघ के समान उनका रंग था। उनके समस्त अंग अतिशय सुंदर एवं संपूर्ण थे। वह चतुर्भुज रूप में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किए हुए थे। सम्राट महाबालि की समस्त सभा कांतिमान हो गई।

सम्राट महाबालि तुरंत प्रभु के चरणों में पड़ गए और नेत्रों में अश्रु धारण कर बोले, 'हे प्रभु, मेरे इष्ट नारायण एक लम्बे समय से मेरे अंग रक्षक बन कर रह रहे थे और मुझे इसका भान भी नहीं हुआ। अपने इष्ट को सेवक समझ न जाने मैंने कितनी बार कुछ अनुचित शब्द कहे होंगे। मैं अत्यंत शर्मिन्दा हूँ, प्रभु। त्राहि मां, त्राहि मां। प्रभु, मेरी रक्षा कीजिए और मेरे पापों को क्षमा कीजिए।'

सम्राट महाबालि को हरि विष्णु ने उठाकर अपने गले से लगा लिया और आशीर्वाद देते हुए बोले, 'महाबालि, तुम मुझे तुम्हारे पिता विरोचन और पितामह प्रह्लाद से भी अधिक प्रिय हो। मैंने तुम्हें पाताल अवश्य भेज दिया था परन्तु मैं स्वयं तुम से दूर नहीं रह सका। तुमने कभी कोई अनुचित शब्द कहकर मेरा कभी कोई अपमान नहीं किया। अब तुम आचार्य स्वर्भानु के मार्ग निर्देशन में निष्कंटक होकर राज्य करो। समय आने पर साकेत धाम में प्रवेश करोगे। तुम चिरंजीवी हो। अपनी इच्छानुसार ही तुम इस साम्राज्य को त्यागकर मेरे समीप आने के लिए मुक्त हो। अब मुझे जाने की अनुमति दो।'

सम्राट महाबालि फिर से प्रभु के चरणों में पड़ गए और अश्रु भरे नेत्रों से उन्होंने देवी श्री और हरि विष्णु की विदाई की। आचार्य स्वर्भानु ने भी उनके चरण पकड़ उनसे आशीर्वाद लिया। तब प्रभु आचार्य स्वर्भानु से बोले, 'हे पुत्र, तुमने मेरी बड़ी सेवा की है। समय आने पर यह ऋण भी मैं चुकाऊंगा।'

ऐसा कहकर, सभी को आशीर्वाद देते हुए, नारायण नारायणी के साथ साकेत धाम पधार गए।

उसी समय से श्रावण मास की पूर्णिमा को रक्षा बंधन मनाने का उत्सव प्रारम्भ हुआ।

हरि विष्णु के जाने के बाद सम्राट महाबालि के हृदय में वैराग्य जाग गया। उन्होंने राजकुमार बाण को युवराज घोषित कर दिया। राज्य का प्रबंध युवराज बाण को दे अब वह अपना अधिकतर समय आचार्य स्वर्भानु के साथ उनके आश्रम में प्रभु भक्ति में लगाने लगे। शनैः शनैः उनका प्रजा से नाता टूटता चला गया। युवराज बाण निरंकुशता से शासन चलाने लगे। युवराज बाण हरि विष्णु अवतार वामन द्वारा उनके पिता का राज्य ले लेने से अति दुःखी थे। उन्होंने वामन अवतार के इस कृत्य को

अन्याय, पक्षपात पूर्ण एवं दैत्य, दानव वंश का विरोधी बतलाया। उनका हृदय हरि विष्णु के प्रति द्वेष से भर गया। उन्हें हरि विष्णु नाम से ही चिढ़ हो गई। हर क्षण वह हरि विष्णु से बदला लेने के ही विचार करने लगे। उन्होंने आचार्य स्वर्भानु से भी दूरी बना ली। स्वयं को ही मार्ग दर्शक घोषित करते हुए वह निर्णय लेने लगे। इन सबसे अनजान सम्राट महाबालि अपनी ईश्वर भक्ति में लीन रहे।

इसी मध्य सम्राट महाबालि की इच्छा तीर्थ यात्रा के उद्देश्य से ब्रह्माण्ड भ्रमण की हुई। उन्हें युवराज बाण पर पूर्ण विश्वास था कि उनकी अनुपस्थिति में वह प्रजा हित में साम्राज्य की व्यवस्था करते रहेंगे। अतः युवराज बाण को शासन की पूर्ण बागडोर देकर वह आचार्य स्वर्भानु के साथ तीर्थ यात्रा पर निकल पड़े।

युवराज बाण

सम्राट महाबालि के तीर्थ यात्रा जाने के बाद युवराज बाण को साम्राज्य अपनी इच्छा से चलाने की पूर्ण स्वतन्त्रता मिल गई। उसने दैत्य एवं दानव वंश के अन्य अधीन सम्राटों, सेनापतियों एवं योद्धाओं को देवताओं के विरुद्ध युद्ध करने को प्रेरित किया। यदा कदा युद्ध होने लगे। इन कृत्यों से ब्रह्माण्ड की शान्ति भंग होने लगी। दोनों ही ओर से अनगिनत योद्धा वीरगति को प्राप्त होने लगे। अब दैत्य एवं दानवों के पास गुरुदेव शुक्राचार्य तो थे नहीं जो अपनी मृत्यु संजीवनी विद्या से मृत दैत्य एवं दानवों के योद्धाओं को जीवित कर सकें। चहूँ ओर हाहाकार मचा हुआ था। जब यह समाचार सम्राट महाबालि को उनकी तीर्थ यात्रा के मध्य मिला तो वह अति आहत हुए। अपनी तीर्थ यात्रा को बीच में ही छोड़कर राजधानी सुतल वापस आने का कार्यक्रम बनाया जिससे वह युवराज बाण को समझा बुझाकर उसे उचित मार्ग पर ला सकें। सम्राट महाबालि को युवराज बाण के विष्णु विरोधी मनोभाव का पता भी चल गया था।

मार्ग में आचार्य स्वर्भानु से सम्राट महाबालि बोले, 'हे सर्वश्रेष्ठ आचार्य, कहते हैं कि पिता की जाने अनजाने किसी समय की मनोवृत्ति पुत्र पर आ ही जाती है। मुझे आज अपना बाल्य समय स्मरण हो आया। मैंने भी अपने बाल्य समय में इसी भांति पितामह हरि विष्णु भक्त सम्राट प्रह्लाद से हरि विष्णु विरोधी कड़े वचन बोले थे। मेरे पितामह प्रह्लाद मेरे इस कुकृत्य पर क्रुद्ध भी हो गए थे, परन्तु मैंने क्षमा याचना और अपने अज्ञान को दर्शा कर उन्हें मना लिया था। आज युवराज बाण में भी उसी प्रकार के विचारों का समागम हो रहा है। मैं हर संभव प्रयास करूंगा कि वह हरि विष्णु विरोधी मनोवृत्ति को दूर करे और देवताओं से मेल करने का प्रयास करे। आगे प्रभु इच्छा।'

सम्राट महाबालि के वचन सुन आचार्य स्वर्भानु को अत्यंत अचम्भा हुआ। वह तो कभी सोच भी नहीं सकते थे कि सम्राट महाबालि भी कभी हरि विष्णु से विमुख हो सकते हैं। अतः वह सम्राट महाबालि से बोले, 'हे सम्राट, बचपन में हरि विष्णु विमुख मनोभाव के प्रबल होने का कारण बताइए।'

सम्राट महाबालि बोले, 'हे गुरुदेव सर्वश्रेष्ठ आचार्य, यह उस समय की बात है जब पड़दादी अदिति के तप से प्रसन्न हो हरि विष्णु ने अपने अंशावतार वामन द्वारा उनके पुत्र इंद्रदेव की रक्षा करने का वचन दिया था, और वह घोर तप के लिए वन चले गए

थे। उनके तप के प्रभाव से सारा ब्रह्माण्ड डगमगा गया। विशाल पर्वत हिलने लगे। समुद्र विक्षुब्ध हो गए। दैत्य एवं दानव वंश कीर्ति विहीन एवं ओजहीन हो गए। समस्त दैत्य एवं दानव वंशों की श्री हीनता का कारण जानने के लिए तब मैंने पितामह सम्राट प्रह्लाद से प्रश्न पूछा।

मैंने पितामह सम्राट प्रह्लाद से पूछा, 'हे तात श्री, सभी दैत्य एवं दानव वंशों के प्राणी अग्नि से झुलसे सदृश्य कांतिहीन हो गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो इन्हें किन्हीं महान तपस्वी का श्राप लगा है। क्या हमारे वंश का कोई अशुभ होने वाला है? क्या ब्रह्मदेव ने हमारे वंश के विनाश के लिए कृत्या शक्ति को जाग्रत कर दिया है जिससे हम ओजहीन हो रहे हैं?'

मेरे इस प्रकार प्रश्न पूछने पर पितामह सम्राट प्रह्लाद ने अपना हरि विष्णु के चरणों में ध्यान पथ से चिंतन किया और सभी कारण जान लिया। कारण जान कर वह बोले, 'हे पुत्र, मैं देख पा रहा हूँ कि स्वयं विष्णु के अंश वामनावतार दादी माँ अदिति को दिए वचनानुसार इंद्र की रक्षा हेतु गहन तप में विलीन हैं। मैंने उन के अंदर शरीर में वसुओं, रुद्रों, अश्विनीकुमारों, मरुतों, साँध्यो, विश्वेदेवों, आदित्यों, गंधर्वों, नागों, दैत्यों एवं दानव वंशों को समाहित होते देखा है। मैंने अपने इन नेत्रों से उन में पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, समुद्रों, पर्वतों, नदियों, द्वीपों, पशुओं, भूसम्पत्तियों, पक्षियों, सम्पूर्ण मानव जाति, समस्त लोकों के स्रष्टा ब्रह्मा, शिव, ग्रहों, नक्षत्रों, तारागणों, तथा दक्ष आदि प्रजापतियों को भी समाहित होते देखा है। मैं दैत्य एवं दानव वंशों के कांति हीनता के कारण को भली भांति समझ चुका हूँ। देवों के देव जगद्योनि, अनादि, हरि विष्णु धर्म की स्थापना हेतु दादी माँ अदिति के वचन बद्ध हो वह गहन तप कर रहे हैं। उन्होंने ही हम सभी दैत्य एवं दानव वंशों के प्राणियों के शारीरिक बल को अपहृत कर लिया है।'

पितामह सम्राट प्रह्लाद को प्रत्युत्तर देते हुए तब मैं बोला, 'हे दैत्य सम्राट सर्वश्रेष्ठ पितामह, हमारी सेना में स्वयं आप महाबली, उसके पश्चात अजेय सेनापति जैसे शिवि, शङ्कु, अयःशंकु, हयशिरा, अश्वशिरा, भङ्गकार, महाहनु, प्रघष, शम्भू, कुक्कुराक्ष एवं दुर्जय इत्यादि सम्मिलित हैं। फिर हमें पड़दादी माँ अदिति के इन पुत्र से क्यों डरना चाहिए?'

मेरी इस उक्ति को सुन पितामह सम्राट प्रह्लाद क्रुद्ध हो गए और बोले, 'बालि, इस विवेकहीन दुर्बुद्धि के कारण एक दिन अवश्य ही तू सभी दैत्य एवं दानव वंश का सर्वनाश करेगा। हे मूर्ख, तू देवाधिदेव महाभाग अज सर्वव्यापी ईश्वर की शक्ति को नहीं जानता। तूने अभी अभी जिन वीर और शूरवीरों का नाम लिया, वह सभी दैत्य, दानव, ब्रह्मदेव सहित सभी देवता एवं चराचर की विभूतियाँ, मैं स्वयं, तू, ब्रह्माण्ड के सभी पर्वत, वृक्ष, नदी, वन, समुद्र इत्यादि जिन सर्ववन्द्य श्रेष्ठ सर्वव्यापी परमात्मा के एक अंश की अंश कला से उत्पन्न हुए हैं, उनके पराक्रम का एक अंश भी नहीं हैं। तूने इस प्रकार वचन बोलकर अपने पिता विरोचन एवं मेरे, अर्थात अपने पितामह के गुरु एवं इष्ट हरि विष्णु का, अपमान किया है। तुम्हारे द्वारा बोले गए इन वचनों ने मुझे मृत्यु से भी अधिक कष्ट दिया है। मुझे खेद है कि तुम्हारी इस सोच मात्र के कारण तुम्हें एक दिन राज्य से भ्रष्ट होना पड़ेगा।'

पितामह सम्राट प्रह्लाद के यह कठोर एवं अप्रिय वचन सुन मैं काँप उठा, और उनके चरणों में नतमस्तक हो विनम्र वाणी में बोला, 'हे तात श्री, आप मुझ पर क्रोध न करें। मेरी मूढ़ता को क्षमा करें। संभवतः बल के अभिमान से विवेकहीन होने के कारण मैंने हरि विष्णु के प्रति अनास्था के वचन कहे। मोह के कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गई थी। मैं अवश्य ही अधम हूँ। मैंने सदाचार का पालन नहीं किया। आपका क्रुद्ध होना स्वाभाविक ही था। तात श्री, इस जीवन में ब्रह्माण्ड का राज्य, ऐश्वर्य, कीर्ति इत्यादि का मेरे लिए कोई अधिक मूल्य नहीं। मुझे राज्य से च्युत एवं कीर्ति रहित हो जाना स्वीकार है, परन्तु आप सरीखे गुरुदेव के आशीर्वाद एवं प्रेम से विमुख होना नहीं। आपसे विमुख होते ही मेरा सर्वनाश सुनिश्चित है। हे तात श्री, मैं आपके चरण पकड़ता हूँ। इस अज्ञानी को क्षमा करें एवं अपना क्रोध शांत करें। आपके क्रोध से मैं संतप्त हो रहा हूँ।'

मेरे कर्णप्रिय मधुर वचन सुन पितामह का क्रोध शांत हो गया। उन्होंने मुझे गले से लगा लिया और बोले, 'वत्स, मैं तुम्हें हरि विष्णु भक्त बनने का आशीर्वाद देता हूँ। तुम्हारा राज्य से च्युत होना भी तुम्हारे लिए लाभकारी सिद्ध होगा चूंकि इस से तुम एक दिन हरि विष्णु की कृपा के पात्र बनोगे।'

इस प्रकार वार्तालाप चल ही रही था कि सम्राट महाबालि एवं गुरुदेव आचार्य स्वर्भानु का रथ सुतल पहुँच गया। जैसे ही युवराज बाण को पिता श्री सम्राट महाबालि के

आगमन की सूचना मिली, वह तुरंत नगर के द्वार पर स्वागत करने दौड़ते हुए पहुंचे। उन्होंने गुरुदेव आचार्य स्वर्भानु एवं पिता श्री सम्राट महाबालि को दंडवत प्रणाम किया। तत्पश्चात संम्राट महाबालि अपने महल आ गए, और आचार्य स्वर्भानु ने अपने आश्रम की ओर प्रस्थान किया।

अगले दिन प्रातः ही सम्राट महाबालि ने युवराज बाण को अपने कक्ष में उनसे मिलने आने के लिए आदेश दिया। आदेश सुनते ही युवराज बाण तुरंत दौड़ कर पिता श्री सम्राट महाबालि के कक्ष में पहुंचे एवं उनके चरण स्पर्श कर उनके सम्मुख विनम्र भाव से बैठ गए। पुत्र को स्नेह से निहारते हुए तब सम्राट महाबालि विनम्र स्वर में बोले, 'पुत्र, मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम्हारी राज्य विस्तृत करने की अभिलाषा तुम्हें देवों से युद्ध करने को प्रेरित करती रहती है। इस युद्ध में हमारे अनगिनत वीर मारे जा रहे हैं। अभाग्य से अब गुरुदेव शुक्राचार्य भी हमारे साथ नहीं हैं जिनकी मृत संजीवनी विद्या से हम अपने मृत सैनिकों को पुनः जीवित करते रहते थे। इसके साथ ही तुम हरि विष्णु के प्रति भी दुष्प्रचार कर रहे हो। तुम भली भांति जानते हो कि हरि विष्णु मेरे इष्ट हैं। फिर तुम ऐसा क्यों कर रहे हो?'

पिता श्री के वचन सुनते ही युवराज बाण आवेश में आ गए और अपने आसन से खड़े हो कर उग्र शब्दों में पिता से बोले, 'पिता श्री, हरि विष्णु ने हमारे साथ घोर अनर्थ, अन्याय एवं पक्षपात किया है। हमारे त्रिलोक के राज्य को हमसे छीनकर स्वर्ग का राज्य इंद्र को वापस लौटा दिया। पृथ्वी लोक का राज्य चंद्रवंशी एवं सूर्यवंशी सम्राटों में विभाजित कर दिया, और हमें यहां पाताल लोक भेज दिया। इसी हरि विष्णु ने मेरे दोनों प्रपितामह हिरण्याक्ष एवं सम्राट हिरण्यकश्यपु का वध कर दिया। उन्हीं के संरक्षण में इंद्र ने मेरे पितामह विरोचन का धोखे से दान में शीश मांग कर उनकी हत्या कर दी। ऐसा अन्यायी भी आपका अभी भी इष्ट है, यह जानकर मुझे बड़ी हैरानी हो रही है। मैं हरि विष्णु को अपना इष्ट तो दूर, मित्र भी नहीं मानता। वह हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। मुझे आपकी आज्ञा अभी तक नहीं मिली अन्यथा मैं तो उसका वध करने को तत्पर हूँ। यह सत्य है कि मैंने स्वर्ग लोक पर अवश्य ही आक्रमण किया है। स्वर्गलोक हमारा राज्य है। मैं हर स्थिति में तब तक शांत नहीं बैठूंगा तब तक कि स्वर्गलोक का राज्य वापस न ले लूँ। आप मुझे यथा आज्ञा दें और अपने पुत्र का पराक्रम स्वयं ही अपने नेत्रों से देखें।'

पुत्र को इस प्रकार आवेश में आते देख पिता सम्राट महाबालि ने उसे दुलार से अपने समीप बुलाया, उसकी पीठ थपथपाई और बोले, 'पुत्र बाण, तुम्हारे पराक्रम पर मुझे कभी कोई संशय नहीं रहा। इस प्रकार का विचार अपने हृदय में फिर कभी नहीं लाना। मैं हरि विष्णु के पराक्रम को जानता हूँ। वह अजेय हैं। एक बार इसी प्रकार मैं भी युवावस्था में हरि विष्णु से विमुख हो गया था, तब पितामह सम्राट प्रह्लाद ने मुझे उचित सीख देकर हरि विष्णु की महिमा से अवगत कराया था। वह तभी से मेरे इष्ट हैं। उनका मेरे प्रति प्रेम अनन्य है। तुम्हें स्मरण होगा कि मेरे प्रति प्रेम से ही वह मेरे अंग रक्षक बनकर मेरे साथ रहे। मैं तुमसे हरि विष्णु के प्रति यह घृणा पूर्ण विचार त्यागने का आग्रह करता हूँ। इस ज्वाला में तुम एक दिन बुरी तरह से झुलस जाओगे। मैं अपना प्रिय पुत्र नहीं खोना चाहता। यह हठ छोड़ दो और हरि विष्णु को मेरी ही भांति अपना इष्ट मान उनकी स्तुति करो।'

पिता श्री सम्राट महाबालि के विनम्र शब्दों पर ध्यान न देते हुए अहंकार में युवराज बाण तब बोले, 'पिता श्री, मुझे क्षमा करें। एक अन्यायी के समक्ष इस प्रकार समर्पण करना मेरे विचार से कायरता है। यदि आप मुझे प्रोत्साहित करते हुए हरि विष्णु के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की अनुमति नहीं देंगे तो मैं स्वयं अपने बल से उसे परास्त करूंगा।'

सम्राट महाबालि एक पिता थे। उनका पुत्र के प्रति मोह होना स्वाभाविक ही था। अतः इस प्रकार पुत्र के कटु वचन सुनने के पश्चात भी उन्होंने अपने क्रोध को नियंत्रण में रखा। यदि इस प्रकार के शब्द सम्राट के समक्ष किसी अन्य ने बोले होते तो सम्राट तुरंत उसका शीश धड़ से अलग कर चुके होते। अपनी वाणी को नम्र रखते हुए सम्राट महाबालि फिर बोले, 'पुत्र, आवेश से नहीं, अपनी बुद्धि से कार्य लो। जिन हरि विष्णु के विरुद्ध तुम्हारा इतना आवेश है, मैं उनके कुछ सत्य गुण तुम्हें बताने का प्रयास करता हूँ। हरि विष्णु जन्म, मृत्यु एवं जरा से अतीत अनंत हैं। वह अजित, अशेष, अव्यक्त स्थिति वाले एवं अच्युत हैं। वह जगत के कर्ता एवं जगद्गुरु हैं। वह समस्त जगत (चर) एवं अजगत (अचर) के स्थिति, पालन एवं प्रलय के स्वामी हैं। जिन्होंने एक दांत के कोने से वराह रूप में धरा को उठा लिया था, नरसिंह अवतार में महाबलशाली मेरे प्रपितामह सम्राट हिरण्यकश्यपु के वक्षःस्थल को नखों से विदीर्ण कर दिया था, एवं तुमने स्वयं ही देखा कि वामन रूप में तीनों लोकों को अपने तीन पग से नाप लिया था, तुम्हें उनके पराक्रम का आभास क्यों नहीं है? स्वयं महादेव,

इन्द्रादि देवता, सनकादिक मुनि तथा योगीगण भी जिनके सम्मुख शीश झुकाते हैं, हे प्रिय पुत्र, तू उनसे समानता कैसे कर सकता है? हरि विष्णु जगदपति हैं, सर्वेश्वर हैं, पुत्र, उनकी आराधना में ही अपना ध्यान लगा।'

पिता श्री सम्राट महाबालि के समझाने का युवराज बाण पर कोई प्रभाव नहीं हो रहा था। जब बार बार समझाने पर भी पुत्र बाण की समझ में हरि विष्णु की महिमा समझ नहीं आ रही थी तो सम्राट महाबालि को क्रोध आ गया। चन्दन की लकड़ी शीतल अवश्य होती है, लेकिन उसे भी बारम्बार रगड़ा जाता है तो उससे भी अग्नि की किरणें निकल पड़ती हैं। क्रोध में तब सम्राट महाबालि बोले, 'हे मूर्ख, तूने अपना सर्वनाश सुनिश्चित कर ही लिया है। हरि विष्णु से विमुख प्राणी मेरे साथ निवास नहीं कर सकता। मैं तुझे अभी पाताल लोक छोड़ने का आदेश देता हूँ। जब तेरी दुर्बुद्धि ने तेरी मृत्यु हरि विष्णु के हाथों लिख ही दी है, तो मैं क्या कर सकता हूँ? अभागे, अपना मुख अब मुझे कभी नहीं दिखाना।'

पिता-पुत्र के वाद-विवाद का स्वर सम्राज्ञी सुदेष्णा के कर्णों में पड़ा और वह तुरंत दौड़ी हुई सम्राट महाबालि के कक्ष में पहुँच गईं। जब सम्राट महाबालि को अपने प्रिय पुत्र बाण के प्रति क्रोधित देखा और उसको पाताल लोक से निर्वासन का आदेश सुना तब वह सम्राट महाबालि के चरणों में गिर पड़ीं और बोलीं, 'हे स्वामी, इसकी बुद्धि मूढ़ हो गई है। इसे नादान समझ इतने क्रोधित नहीं होइए। मैं आप से करबद्ध प्रार्थना करती हूँ कि इसे कुछ दिनों आचार्य स्वर्भानु के आश्रम में रहने का आदेश दीजिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आचार्य स्वर्भानु युवराज बाण को हरि विष्णु की महिमा समझा बुझा कर इसे उनका भक्त बनाने का प्रयास करेंगे।'

सम्राज्ञी के विनम्र शब्द सुन सम्राट महाबालि युवराज बाण से बोले, 'अब मेरा मुख क्या देख रहे हो? जाओ, सम्राज्ञी के आदेश का पालन करो। मैं हरि विष्णु की स्तुति के माध्यम से उनसे विनती करूंगा कि वह गुरुदेव आचार्य स्वर्भानु के द्वारा तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान करें।'

माता एवं पिता का आदेश सुन युवराज बाण दोनों के चरण स्पर्श कर सम्राट महाबालि के कक्ष से निकल गए और सीधे आचार्य स्वर्भानु के आश्रम में पहुंचे।

आचार्य स्वर्भानु ने जब युवराज बाण को खिन्न स्थिति में अपने आश्रम की ओर आते देखा तो उन्हें समझते देर नहीं लगी कि अवश्य ही पिता-पुत्र में कोई विवाद हुआ है। उन्होंने युवराज बाण को हृदय से लगा कर उनका स्वागत किया। नेत्रों में जल भरते हुए युवराज बाण ने जो भी पिता सम्राट महाबालि एवं उनके मध्य घटित हुआ था, उसका सब विवरण दिया। आचार्य स्वर्भानु प्रभु की लीला को समझते हुए युवराज बाण से बोले, 'प्रिय पुत्र, हरि विष्णु की महिमा, उनका पराक्रम एवं वैभव को तुम्हारे पिता श्री ने तुम्हें भली भांति समझा दिया है। इससे अधिक मैं भी कुछ नहीं कह सकता। तुम्हारा गुरु होने के कारण तुम्हारे अभियान में जिस प्रकार भी बनेगा, मैं केवल सहायता ही कर सकता हूँ। अब तुम मुझे स्पष्ट बताओ कि तुम्हारी योजना क्या है?'

युवराज बाण आचार्य स्वर्भानु के कूटनीतिक शब्दों का अर्थ नहीं समझ पाए और प्रसन्न हो कर हरि विष्णु पर आक्रमण करने की योजना बताने लगे। तब आचार्य स्वर्भानु बोले, 'पुत्र, तुम्हारी योजना सफल हो, मैं ऐसी कामना करता हूँ। परन्तु इतना तो सोचो कि जिन हरि विष्णु में तुम्हारे महाबलशाली प्रपितामह हिरण्यकश्यपु का वध करने की एवं त्रिलोकों को अपने तीन पग में बांधने की क्षमता है, तुम्हारा बल उनके समक्ष कितना है? क्या तुम अपना बल अपने प्रपितामह हिरण्यकश्यपु से अधिक समझने की भूल कर बैठो हो? इस प्रकार यदि तुम उन पर आक्रमण करोगे तो अवश्य शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होंगे। उनकी समानता करना चाहते हो तो पहले अपने बल को बढ़ाओ।'

आचार्य स्वर्भानु के शब्दों को कर्णप्रिय समझ युवराज बाण ने आचार्य के चरण पकड़ लिए और बोले, 'हे आचार्य, आप मेरे गुरु ही नहीं, मेरे प्रपितामह भी हैं। आप मेरा उचित मार्ग दर्शन कीजिए जिससे मैं हरि विष्णु को परास्त करने का उपयुक्त बल प्राप्त कर सकूं।'

आचार्य स्वर्भानु ने हृदय में सोचा कि श्रावण मास में हुए अंधे को हर ओर हरा हरा ही सूझता है। कुछ देवताओं को क्या परास्त कर दिया कि अपने बल की समानता हरि विष्णु से करने चला है। लेकिन प्रत्यक्ष में बोले, 'पुत्र, हरि विष्णु को परास्त करने का बल, अस्त्र, शस्त्र इत्यादि तप से केवल त्रिदेवों से ही प्राप्त किया जा सकता है। अब तुम हरि विष्णु के प्रति द्वेष रखते हुए उनसे युद्ध की इच्छा रखते हो, तो ऐसा वरदान

संभवतः स्वयं हरि विष्णु से तो ले नहीं सकते। महादेव भी स्वयं हरि विष्णु के भक्त हैं। वह भी तुम्हें इस प्रकार का कोई वरदान संभवतः नहीं देंगे। लेकिन महादेव तो भोले भंडारी हैं। तपस्या से प्रसन्न होकर वह तुम्हें उचित मार्ग अवश्य दिखलाएंगे। अतः मेरे विचार से यदि तुम महादेव का तप करो और उन्हें प्रसन्न कर सको तो संभवतः वह कोई मार्ग सुझा सकते हैं।

गुरुदेव आचार्य स्वर्भानु के मुख से इस प्रकार कर्ण-प्रिय शब्द सुन युवराज बाण उनके चरणों में पड़ उनसे महादेव को प्रसन्न करने का मार्ग पूछने लगे।

तब आचार्य स्वर्भानु ने उन्हें वन जाकर महादेव की तपस्या करने का मार्ग सुझाया और महामंत्र की दीक्षा दी जिस के जाप करने से महादेव प्रसन्न हो सकें।

आचार्य स्वर्भानु बोले, 'पुत्र, तुम महादेव के सिद्धि मन्त्र का जाप करो। मेरा आशीष है कि एक दिन अवश्य ही महादेव तुम से प्रसन्न हो कर तुम्हें यथोचित वरदान देंगे। अब मन्त्र दीक्षा ग्रहण करो। '

ऊं नम: शिवाय ।
त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेम् च त्रयायुधम् ।
त्रिजन्मपापसंहारमेक बिल्वं शिवार्पणम् ।।
ऊं मृत्युंजयाय रुद्राय त्राहिमाम् शरणागतं ।
जन्ममृत्यु जराव्याधि पीड़ितय् कर्मवन्धै ।।

इस प्रकार मन्त्र दीक्षा लेकर एवं आचार्य स्वर्भानु का आशीर्वाद प्राप्त कर युवराज बाण महादेव की तपस्या हेतु वन में प्रस्थान कर गए।

युवराज बाण ने वन में एक सुरक्षित स्थान पर अपनी कुटिया बना ली। यह कुटिया काष्ठ की दीवारों एवं फूस की छत से निर्मित अशक्त संरचना अवश्य थी, परन्तु उसके रहने के लिए पर्याप्त थी। यहीं वह गुरु आचार्य स्वर्भानु द्वारा बताई विधि से प्राणायाम एवं योग के साथ महादेव के सिद्धि मन्त्र का जाप करने लगा। कुछ समय में ही उसने कठिनतम मुद्राओं में योग्यता प्राप्त कर ली। गुरुदेव के बताए मार्ग पर चलते हुए उसे मौसम की अनिश्चितताओं से निपटने में भी पर्याप्त मदद मिली। उसे उपलब्ध सीमित

साधनों के उपयोग से जीवन जीने में सक्षमता प्राप्त थी। उसकी श्वास पूरी तरह उसके नियंत्रण में थी, और वह अब तपस्या के सतत अभ्यास द्वारा महीनों तक ध्यान की अवस्था में लीन रह पाता था। अपने अचेतन मन में प्रवेश करके, मस्तिष्क के छिपे हुए स्थानों को टटोलने की उसकी क्षमता बढ़ती जा रही थी तथा समस्त बाहरी तत्त्वों के प्रति उसकी जागरूकता में भी शीघ्रता से प्रगति हो रही थी। वह अपने आस पास के आकाश में व्याप्त दिव्य चेतना और प्रत्येक प्राणी में उपस्थित प्राण वायु का अनुभव कर सकता था। इसी प्रकार महीने बीते, वर्ष बीते, परन्तु महादेव के दर्शन नहीं हो पाए। तब उसने अपनी साधना को और भी बढ़ा दिया। एक पैर पर खड़ा होकर केवल वायु के सेवन से एवं सौर्य ऊर्जा से जीवन चलाते हुए उसने सहस्त्रों वर्षों तक तप किया। अंततः महादेव का दिल पिघला और उन्होंने बाण को साक्षात दर्शन दिए।

महादेव को समक्ष देख उसने साष्टांग प्रणाम किया और हर प्रकार से उनकी विनती की। तब महादेव ने उससे वर माँगने को कहा।

महादेव को प्रसन्न देख वह करबद्ध उनके समक्ष खड़ा हो गया और बोला, 'हे महादेव, यदि आप मुझ से प्रसन्न हैं तो मुझे तीन वर दीजिए। हे प्रभु, मुझे माँ पार्वती समान पुत्री प्राप्त हो। आप मुझे अपने संरक्षण में लें एवं मुझे अपने समान वीर से युद्ध करने का अवसर मिले।'

महादेव ने तब उसे आशीर्वाद देते हुए कहा 'तथास्तु। हे पुत्र, तुम्हारे घोर तप में संभवतः तुम्हें स्वयं समय का ध्यान नहीं रहा। जब तुमने तप प्रारम्भ किया था तब सतयुग था। अब द्वापर युग चल रहा है। तुम्हारे तप में लीन होने के कुछ वर्ष बाद ही हरि विष्णु द्वारा निर्देशित देवता और दैत्यों के प्रयास से समुद्र मंथन हुआ था। तुम्हारे पिता चिरंजीवी सम्राट महाबालि समुद्र मंथन के पश्चात हरि विष्णु के साकेत धाम चले गए थे। तुम्हारे गुरु आचार्य स्वर्भानु अब राहु केतु रूप में नवग्रह में स्थापित हैं। अब सुतल में कुछ शेष नहीं रहा है। मैं तुम्हें पृथ्वी लोक पर शोणितपुर का राज्य प्रदान करता हूँ। वहां की प्रजा तुम्हारी प्रतीक्षा में है। वहां का राज्य सम्हालते हुए तुम मेरी प्रिय भक्त अनौपम्या से विवाह करो। अनौपम्या से तुम्हें एक पुत्री प्राप्त होगी जिसका नाम ऊषा होगा। ऊषा में वह सभी गुण होंगे जो मेरी और पार्वती की पुत्री में हो सकते हैं। मैं तुम्हारा हर संभव संरक्षण करूंगा। तुम्हें समय आने पर अपने समान योद्धा से युद्ध

का अवसर भी अवश्य मिलेगा। अब तुम अपनी राजधानी शोणितपुर को प्रस्थान करो।'

महादेव के यह शब्द सुनकर बाण अचंभित हो गया। सहस्त्रों वर्ष बीत गए, युग बीत गए, यहां तक कि सतयुग के बाद त्रेता युग भी बीत गया और अब द्वापर युग चल रहा है, और उसे कोई आभास भी नहीं हुआ। यह अवश्य गुरुदेव आचार्य स्वर्भानु की कृपा का ही फल है। महादेव के एक बार फिर वह चरणों में पड़ गया और विनती करने लगा, 'हे महादेव, मुझे अब राहु केतु रूप में नवग्रहों में स्थापित मेरे गुरु आचार्य स्वर्भानु से मिलने का उपाय बता दो।'

महादेव मुसकुराकर तब बोले, 'प्रिय पुत्र बाण, तुम्हारे ही शोणितपुर राज्य में एक स्थान है, पैठाणी। वहीं वह तुम्हारी प्रतीक्षा में है। वही तुम्हें समुद्र मंथन इत्यादि का इतिहास बतलाएंगे। तुम से मिल और यह कथा सुनाकर वह नवग्रह स्थान को चले जाएंगे। उनकी स्मृति में तब तुम वहां एक मंदिर की स्थापना कर देना। मेरा यह वर है कि जो भी प्राणी पैठाणी में जाकर राहु की स्तुति करेगा उसे राहु के साथ मेरी कृपा भी प्राप्त होगी।'

ऐसा कहकर महादेव अन्तर्ध्यान हो गए। तब बाण महादेव द्वारा बताई अपनी नई राजधानी शोणितपुर की ओर चल दिए।

महादेव के आदेशानुसार वह शोणितपुर की सीमा में पहुंच गए। सीमा पर ही एक अति सुन्दर महादेव का मंदिर था। मंदिर को उस दिवस किसी विशेष उत्सव के लिए सजाया गया था। बाण ने मंदिर में महादेव की स्तुति की और फिर पुजारी से मंदिर के सजाने का विशेष कारण पूछा। पुजारी ने कहा, 'हे आगंतुक, तुम इस नगर में नए प्रतीत होते हो। आज शिवरात्री उत्सव है। स्वयं साम्राज्य के कार्यवाहक सम्राट महामंत्री बौद्ध आज मंदिर में पधारकर महादेव एवं माँ पार्वती की स्तुति करेंगे। इस उत्सव के अवसर पर महामंत्री बौद्ध के स्वागत में इस मंदिर को विशेष रूप से सजाया गया है।'

बाण तब पुजारी से बोले, 'हे ब्राह्मण, मैं आपके शब्दों का अर्थ नहीं समझा। आप ने अभी कहा कि महामंत्री बौद्ध साम्राज्य के कार्यवाहक सम्राट हैं। क्या सम्राट कहीं युद्ध

अथवा तीर्थ यात्रा पर राज्य से बाहर गए हुए हैं? मेरी उत्सुकता बढ़ गई है। कृपया संक्षेप में मुझे बतलाइए।'

पुजारी जी बोले, 'हे श्रेष्ठ पुरुष, शोणितपुर इस समय सम्राट विहीन साम्राज्य है। यहां के अंतिम सम्राट शरय थे जिनके कोई संतति नहीं थी। सम्राट शरय महादेव के अनन्य भक्त थे। उनकी मृत्यु से कुछ समय पूर्व महादेव ने उन्हें स्वप्न में निर्देशित किया कि वह मृत्यु से पूर्व अपने साम्राज्य का भार महामंत्री बौद्ध को दे दें और उन्हें निर्देशित कर दें कि समय आने पर बाण नामक प्राणी इस राज्य का अधिकारी होगा। उन्होंने ऐसा ही किया। महामंत्री बौद्ध तब से बाण की प्रतीक्षा में हैं। जब तक सम्राट बाण नहीं आ जाते, तब तक महामंत्री बौद्ध कार्यवाहक सम्राट के रूप में सम्राट बाण का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।'

बाण तब मुसकुराकर बोले, 'अच्छा, तो ऐसा है। क्या महामंत्री बौद्ध का तुम मुझ से परिचय करा दोगे? मैं बाण के बारे मैं उन्हें परिचय दूंगा।'

अब तक पुजारी इस आगुन्तक के व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित हो चुके थे। न जाने क्यों उनको ऐसा प्रतीत हो रहा था कि यह व्यक्ति कहीं महादेव स्वयं अथवा उनके द्वारा भेजा हुआ उनका कोई प्रतिनिधि तो नहीं? वह मंत्रमुग्ध मुद्रा में बोले, 'अवश्य, श्री मान जी। महामंत्री बौद्ध के मंदिर में प्रवेश करते ही मैं आपका उनसे परिचय करा दूंगा। तब तक आप चाहें तो अतिथिशाला में ठहर सकते हैं।'

बाण ने पुजारी की ओर देखा और मुसकुराकर बोले, 'धन्यवाद, ब्राह्मण श्रेष्ठ। मैं महादेव की प्रतिमा के सम्मुख ही अति आनंद का अनुभव कर रहा हूँ।' ऐसा कहकर बाण महादेव की साधना में लीन हो गए।

कोई अर्ध रात्रि का समय रहा होगा तब महामंत्री बौद्ध ने अपने अन्य सहायकों के साथ मंदिर में प्रवेश किया। उनके मंदिर में प्रवेश करते ही 'हर हर महादेव, माँ पार्वती की जय' के जय जयकार से मंदिर गूँज उठा। इसी जय जयकार में आगुन्तक की साधना भी खुल गई। एक विचित्र प्रभावशाली व्यक्तित्व के पुरुष को महादेव की प्रतिमा के पास साधना करते देख महामंत्री बौद्ध अति प्रभावित हुए और किसी अनजान शक्ति से चुम्बक की तरह उस व्यक्ति की ओर सम्मुख हुए। तब तक पुजारी

भी महामंत्री के पास दौड़ कर पहुँच गए और बोले, 'महामंत्री की जय हो। महामंत्री, यह आगुन्तक दोपहर से मंदिर में आपकी प्रतीक्षा में है।'

तब बाण ने उठकर उनका यथोचित अभिवादन किया और मृदुल स्वर में बोले, 'महामंत्री, मेरा नाम बाण है। महादेव की आज्ञा से मैं शोणितपुर आया हूँ। मेरे लिए अब क्या आज्ञा है?'

बाण नाम सुनते ही महामंत्री विस्मित हो उनके चरणों में पड़ गए और बोले, 'सम्राट बाण की जय हो। हे सम्राट, मैं तो आपके प्रतिनिधि के रूप में इस साम्राज्य का राज्य सम्हाले हुए हूँ। अब आप अपना साम्राज्य सम्हालें। सर्व प्रथम इस शिवरात्रि के पावन अवसर पर महादेव एवं माँ पार्वती की स्तुति का नेतृत्व करें। तत्पश्चात महादेव एवं माँ के समक्ष आपका राज्याभिषेक करने की हमें अनुमति दें।'

बाण ने महामंत्री बौद्ध को अपने वक्ष से लगा लिया और बोले, 'हे महामंत्री, जब तक मेरा राज्याभिषेक नहीं हो जाता, तब तक आप ही राज्य के कार्यवाहक सम्राट हैं। अतः इस पावन अवसर पर महादेव एवं माँ पार्वती की स्तुति करने का केवल आपको ही अधिकार है। हम सब आपके नेतृत्व में आज शिवरात्रि की पूजा करेंगे। मैं महादेव से विनती करूंगा कि पूजा की समाप्ति के पश्चात वह हमें दर्शन दें और मेरे राज्याभिषेक की अनुमति दें।'

महामंत्री बौद्ध ने तब बाण के आदेशानुसार यथा विधि महादेव एवं माँ पार्वती की स्तुति की। पूजा समाप्ति पर महादेव स्वयं प्रगट हुए और बाण का हस्त महामंत्री बौद्ध को सौंपते हुए बोले, 'हे महामंत्री, तुम्हारा नया सम्राट मैं तुम्हें सौंपता हूँ।'

यह कहकर वह अंतर्ध्यान हो गए।

महादेव से आज्ञा एवं आशीर्वाद पा तब महामंत्री बौद्ध भावी सम्राट को अपने साथ लेकर सभी सहायकों के साथ राजधानी शोणितपुर को प्रस्थान किए। मार्ग में महादेव की जय, माँ पार्वती की जय, सम्राट बाण की जय, महामंत्री बौद्ध की जय, के नारों से समस्त मार्ग गूँज उठा। शोणितपुर की समस्त प्रजा को इस जय जयकार से पता लग गया कि अब हमें हमारे सम्राट मिल गए हैं।

राजधानी पहुँच भावी सम्राट बाण को राजमहल में ठहराया गया। अगले दिन प्रातः ही महामंत्री बौद्ध ने पुरोहितों को भावी सम्राट बाण के राज्याभिषेक की आज्ञा दी। उनका राज्याभिषेक बड़ी धूम धाम से संपन्न हुआ और अब भावी सम्राट बाण शोणितपुर साम्राज्य के सम्राट बाण बन गए। उन्होंने महामंत्री बौद्ध को ही अपना महामंत्री नियुक्त किया, और उन्हें अपना मंत्रिमंडल चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी।

राज्य का प्रबंधन कर अब शीघ्र अति शीघ्र उन्हें अपने गुरु आचार्य स्वर्भानु से मिलने की तीव्र अभिलाषा थी। महामंत्री बौद्ध से उन्होंने पैठाणी की अवस्थिति का ज्ञान लिया और महामंत्री को जब तक वह वापस नहीं लौट आते तब तक साम्राज्य का कार्यवाहक प्रशासक घोषित कर अकेले ही अपने गुरु से मिलने चल दिए।

शीघ्र ही सम्राट बाण का रथ पैठाणी पहुँच गया। सारथी को पैठाणी की सीमा पर रुकने का आदेश दे तब सम्राट बाण महादेव के बतलाए स्थान पर अति आदर से अपने गुरुदेव आचार्य स्वर्भानु को पुकारने लगे। तभी एक गुफा के अंदर से उन्हें परिचित स्वर सुनाई दिया, 'आओ पुत्र बाण, मैं कई युगों से तुम्हारी प्रतीक्षा में यहीं बैठा हुआ हूँ। महादेव ने मुझे सम्मानित कर नवग्रहों में स्थान अवश्य दिया, पर आज्ञा दी कि जब तक मैं बाण से न मिल लूँ तब तक उसकी यहीं प्रतीक्षा करूँ।'

सम्राट बाण ने तब गुफा के अंदर जहां से स्वर आ रहा था, उस दिशा में प्रवेश किया। थोड़ी ही दूर पहुंचे होंगे कि उन्हें आचार्य स्वर्भानु के मस्तिष्क के दर्शन हुए। आचार्य स्वर्भानु का नया रूप देख उनके मुख से तीव्र आह निकल पड़ी और विस्मित क्रोधित स्वर में बोले, 'गुरुदेव, आपका यह मस्तिष्क सर्प के धड़ से जुड़ा हुआ! यह मैं क्या देख रहा हूँ? किस का इतना साहस हुआ जिसने मेरे गुरु आचार्य स्वर्भानु को इस स्थिति में पहुंचाया। आप मुझे बतलाएं, मैं अभी उसको यमलोक पहुंचा इस अपराध का दंड दूंगा।'

आचार्य स्वर्भानु मधुर स्वर में बोले, 'पुत्र, आवेश में नहीं आओ। मुझे स्वयं हरि विष्णु ने अमृत पान कराया और फिर देवताओं को दिए अपने वचनानुसार कि अमृत केवल देवताओं को ही वह देंगे, उन्होंने मेरा मस्तिष्क धड़ से अलग कर दिया। मैंने अमृत पान कर लिया था, अतः मैं मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ। तब गुरुदेव शुक्राचार्य की साधना एवं हरि विष्णु के प्रताप से महादेव उपस्थित हुए। हरि विष्णु की प्रार्थना पर तब उन्होंने

अपने वक्ष से एक नागराज का धड़ उसके सर से अलग कर दिया। मेरे मस्तिष्क को शल्य चिकित्सा से उन्होंने नागराज का धड़ जोड़ दिया और मुझे नया नाम दिया, राहु। मेरे धड़ से उन्होंने शल्य चिकित्सा से ही नागराज का सर लगा दिया, और उसका नाम दिया केतु। इस प्रकार स्वर्भानु राहु एवं केतु बन गए।'

सम्राट बाण का क्रोध कम हो ही नहीं रहा था। क्रोधित आवेशित शब्दों में वह तब बोले, 'विष्णु, विष्णु, विष्णु! इस विष्णु ने तो सदैव हमारा अहित ही किया है। प्रपितामह हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकश्यपु का वध किया। मेरे पितामह विरोचन का इंद्र के माध्यम से वध करवा दिया। मेरे पिता सम्राट महाबालि का छल से तीन पगों में त्रिलोक का राज्य ले लिया। अब देख रहा हूँ कि आपको इस अवस्था में पहुंचा दिया। गुरुदेव, मैं अपने क्रोध को किसी भी प्रकार शांत नहीं कर पा रहा हूँ। आप मुझे आदेश दें। मैं अभी विष्णु को युद्ध के लिए ललकारता हूँ। मुझे स्वयं महादेव ने संरक्षण प्रदान किया है। मैं अजेय हूँ। अवश्य ही इस विष्णु का वध करने में सक्षम हूँ।'

राहु रूपी आचार्य स्वर्भानु तब शांत स्वर में बोले, 'प्रिय पुत्र बाण, अपना क्रोध शांत करो। मैं हरि विष्णु की कृपा से ही जीवित हूँ। महादेव ने मुझे अमरत्व का मार्ग अवश्य दिखाया था, परन्तु मुझे हरि विष्णु ने अमृत पान कराया है। वह चाहते तो मेरे अमृत पान के पश्चात अपने सुदर्शन चक्र में निहित अग्नि वाण से मेरा अमृत सुखा कर मेरा वध कर सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। अपने सुदर्शन चक्र को अमृत सुखाने का नहीं, परन्तु मेरे मस्तिष्क को केवल धड़ से अलग करने का आदेश दिया। तत्पश्चात महादेव का आवाहन किया। महादेव के उपस्थित होने पर उन्होंने उनसे विनती की कि वह शल्य चिकित्सा द्वारा मुझे नागराज के अंगों से विभूषित कर यह काया दें। यह नागराज की काया जो तुम देख रहो हो, यह कोई साधारण नागराज नहीं, महादेव के अति प्रिय सर्प हैं। यह महादेव का मुझ पर आशीर्वाद है।'

गुरुदेव आचार्य स्वर्भानु के शांत मधुर शब्द सुन सम्राट बाण का क्रोध कुछ शांत हुआ। राहू रूपी गुरु आचार्य स्वर्भानु के चरणों पर गिर तब वह बोले, 'गुरुदेव, महादेव ने मेरे तप से प्रसन्न हो मुझे तीन वर दिए हैं। महादेव एवं माँ पार्वती की पुत्री समान मेरी संतति, मेरा सदैव संरक्षण एवं अपने बल समान योद्धा से युद्ध। साथ ही उन्होंने मुझे आदेश दिया कि मैं आप से मिलकर अपने साम्राज्य पाताल लोक एवं अपने पिता श्री सम्राट महाबालि के बारे में संज्ञान प्राप्त करूँ। उन्होंने ही मुझे आपके इस नए

आवास के बारे में बताया। मैं अत्यंत उत्सुक हूँ कि आपकी आज्ञा से मेरे महादेव तप जाने के पश्चात मेरे साम्राज्य, पिता श्री महाबालि एवं आपके साथ क्या क्या घटनाएं घटित हुईं, मुझे संक्षेप में सभी बतलाइए।'

सम्राट बाण के मधुर शब्द सुन राहु रूपी आचार्य स्वर्भानु ने युवराज बाण के महादेव की तपस्या में वन प्रस्थान करने के पश्चात् हुई घटनाओं की कथा सुनाना प्रारम्भ किया।

राहु रूपी आचार्य स्वर्भानु बोले, 'हे पुत्र बाण, तुम्हारे महादेव के महातप में चले जाने के पश्चात सम्राट महाबालि को एकाकीपन की अनुभूति होने लगी। तुम जानते ही हो कि वह तुम्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्रेम करते थे। तुम्हारा वियोग उनसे सहन नहीं हो पा रहा था। उन्होंने राजपाट से एक प्रकार से संन्यास ले लिया। तुम्हारे छोटे भाई राजकुमार अग्र को युवराज बना शासन की बागडोर उसके हाथों में सौंप दी, और वह स्वयं सम्राज्ञी सुदेष्णा के साथ मेरे आश्रम में आ कर रहने लगे। वह दिन रात हरि विष्णु की आराधना में लीन रहने लगे। जब इंद्र को यह पता लगा कि युवराज बाण तप के लिए वन चले गए हैं एवं सम्राट महाबालि ने तो राजपाट से संन्यास ही ले लिया है, और अब उनका द्वितीय पुत्र अग्र सिंहासन पर आरूढ़ है तो उसने युवराज अग्र के वध की कुटिल योजनाएं बनाना प्रारम्भ कर दिया। इंद्र जानता था कि युवराज अग्र में सम्राट महाबालि अथवा युवराज बाण के समान बल, प्रतिभा, दूर-दर्शिता, युद्ध कौशलता इत्यादि नहीं है, अतः उसे मार्ग से हटाना सुलभ होगा। इंद्र दिन प्रतिदिन दानवों के साम्राज्यों पर आक्रमण करने लगा। दानवों ने इंद्र और उसकी सेना का भरपूर सामना किया। भयंकर युद्ध होने लगे। युवराज अग्र सम्राट महाबालि को उनकी साधना से विचलित नहीं करना चाहते थे, अतः उन्हें इन घटनाओं की सूचना देने के विरुद्ध उनके कठोर आदेश थे। हाँ, मुझ से गोपनीयता से वह मिलते रहते और इस विनती के साथ कि पिता श्री को विचलित न किया जाए, वह मुझे सभी समाचारों से अवगत कराते रहते थे। मैं युवराज अग्र की पितृ-भक्ति से अत्यंत प्रभावित था, अतः मैंने उनके वचनों की मर्यादा रखी। सम्राट महाबालि को कभी भी इन घटनाओं के बारे में सूचित नहीं किया।

इंद्र ने संभवतः यह कभी सोचा भी नहीं होगा कि युवराज अग्र इस युद्ध कौशलता से दैत्य एवं दानवों का नेतृत्व करते हुए देवों का सामना करेंगे। इस युद्ध में दैत्य एवं

दानवों से अधिक देवताओं की क्षति हो रही थी। इंद्र विचलित हो गए। इस समस्या का समाधान हेतु वह ब्रह्मदेव के पास पहुंचे। ब्रह्मदेव ने उन्हें परामर्श दिया कि इस समस्या का समाधान केवल और केवल हरि विष्णु ही दे सकते हैं, अतः हम सब को उनके पास चलना चाहिए। सभी देवताओं ने इसका समर्थन किया। ब्रह्मदेव एवं इन्द्रादि सभी देवता तब हरि विष्णु के साकेत धाम पहुंचे। हरि विष्णु ने ब्रह्मदेव एवं उनके साथ आए सभी देवताओं का सम्मान किया और उनकी विनती सुनी। इंद्र के इस व्यवहार से हरि विष्णु स्वयं भी अत्यंत दुःखित थे, लेकिन संभवतः हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे। यह दिन प्रतिदिन का संहार उनसे भी नहीं देखा जा रहा था। हरि विष्णु यह भी जानते थे कि सम्राट महाबालि के पश्चात दैत्य एवं दानव वंशों में से कोई भी त्रिदेवों एवं देवताओं का शुभेच्छु नहीं है। सम्राट महाबालि राजपाट से एक प्रकार से संन्यास ले चुके हैं। युवराज बाण तप के लिए अवश्य चले गए हैं, परन्तु वह हरि विष्णु के घोर विरोधी हैं। युवराज अग्र को भी हरि विष्णु अथवा देवों से कोई सहानुभूति नहीं है। युवराज अग्र भी अब स्वर्ग लोक पर आक्रमण कर इंद्र को परास्त कर स्वर्ग लोक का सिंहासन जीतने की योजना बना रहे हैं। यदि युवराज अग्र को इसमें सफलता मिल गई तो ब्रह्माण्ड में दैत्य एवं दानवों का राज्य हो जाएगा। यह दैत्य एवं दानव सम्राट महाबालि की भांति हरि विष्णु भक्त, न्यायप्रिय, सत्यनिष्ठ एवं वैदिक धर्म के उपासक नहीं हैं। युवराज अग्र की स्वर्ग विजय का अर्थ होगा, ब्रह्माण्ड में कुशासन। अतः इसके लिए उन्हें कुछ तो करना ही पड़ेगा। तभी उनके मस्तिष्क में एक विचार सूझा।

ब्रह्मदेव एवं इन्द्रादि देवताओं को सम्बोधित करते हुए हरि विष्णु बोले, 'ब्रह्मदेव एवं देवो, इसका निश्चित रूप से एक समाधान है। यदि हम देवताओं को अमृत पान कर अमरत्व दिला दें, तो वह अजेय हो जाएंगे। अमरत्व प्राप्त होने से वह मृत्यु को कभी भी प्राप्त नहीं होंगे। अमृत प्राप्त करने का एक ही साधन है, समुद्र मंथन। समुद्र मंथन अकेले देवताओं के सामर्थ्य में नहीं है। इसे देवताओं को दैत्य एवं दानवों के साथ मिलकर करना होगा। यह तभी संभव हैं जब हम दैत्य एवं दानवों को यह आश्वासन दिला दें कि उन्हें अमृत का आधा भाग दे दिया जाएगा। अमरत्व प्राप्त करने के लालच में दैत्य और दानव देवों के साथ समुद्र मंथन के लिए सहमत हो जाएंगे। दैत्य एवं दानवों की सहमति केवल सम्राट महाबालि के आदेश पर ही प्राप्त हो सकती है। सम्राट महाबालि इस समय राजपाट से विमुख अवश्य हैं, परन्तु अभी भी वह सम्राट हैं। उन्होंने युवराज अग्र का अभी राज्याभिषेक नहीं किया है। मैं ब्रह्मऋषि नारद को

उनके पास समुद्र मंथन का प्रस्ताव भेजता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सम्राट महाबालि इस प्रस्ताव पर सहमत हो जाएंगे और युवराज अग्र एवं अन्य दैत्य एवं दानव वंशों के सम्राटों को यथोचित आदेश देंगे। अभी आप सब अपने अपने लोक को वापस जाओ, और मुझे इस योजना पर कार्य करने दो।'

इंद्र तब करबद्ध हरि विष्णु से बोले, 'हे प्रभु, यदि अमृत का आधा भाग दैत्य एवं दानवों को मिल गया तब तो वह भी अमर एवं अजेय हो जाएंगे।'

हरि विष्णु तब मुसकुराकर इंद्र से बोले, 'इंद्र, पहले अमृत पात्र प्राप्त करने की सोचो। आगे क्या होगा, कैसे होगा, यह मुझ पर छोड़ो।'

हरि विष्णु से इस प्रकार आश्वासन पा ब्रह्मदेव एवं इन्द्रादि देवता अपने अपने लोक को लौट गए। तब हरि विष्णु ने ब्रह्मऋषि नारद का स्मरण किया।

'प्रभु ने स्मरण किया है, मेरा सौभाग्य', इस प्रकार विचारते 'नारायण, नारायण' का जाप करते एवं वीणा बजाते तुरंत ब्रह्मऋषि नारद साकेत धाम पहुँच गए। प्रभु ने उनका हृदय से स्वागत किया और अपने समीप सिंहासन पर बैठाया। मृदुल वाणी में तब हरि विष्णु बोले, 'हे ब्रह्मऋषि, मेरा आपसे निवेदन है कि आप तुरंत सम्राट महाबालि की राजधानी सुतल पधारें और सम्राट से मिलकर मेरा एक निवेदन उन्हें प्रेषित करें। आजकल सम्राट महाबालि राज्य का भार अपने पुत्र युवराज अग्र को देकर अपने गुरुदेव आचार्य स्वर्भानु के आश्रम में रह रहे हैं।'

प्रभु के मुख से विनम्र शब्द सुन ब्रह्मऋषि नारद करबद्ध बोले, 'हे प्रभु, आपकी इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। आपकी इच्छा तो हमारे लिए आदेश है। आप आदेश दें, मुझे क्या करना है? आपकी सेवा में आपका इच्छित कार्य करने के लिए मैं पूर्णतः तत्पर हूँ।'

हरि विष्णु मुस्कराए और बोले, 'ब्रह्मऋषि, मेरा केवल एक सन्देश सम्राट महाबालि तक पहुंचाना है एवं उस सन्देश का उत्तर लेकर मेरे पास आना है। बस, आपको इतना ही कार्य करना है।'

ब्रह्मऋषि नारद मुसकुराकर बोले, प्रभु, कोई नई लीला रचने का विचार है? आप तुरंत आदेश दीजिए। मैं शीघ्र अति शीघ्र सुतल सन्देश ले जाने के लिए तत्पर हूँ।'

प्रभु बोले, 'ब्रह्मऋषि, सम्राट महाबालि को मेरा सन्देश देना कि मैं दिन प्रतिदिन दैत्य, दानव एवं देवताओं के मध्य युद्ध से अति पीड़ित हूँ। प्रतिदिन सहस्त्रों की संख्या में दोनों ओर से ही सैनिक वीरगति को प्राप्त हो रहे हैं। मैं इस समस्या का स्थायी समाधान निकालने का प्रयास कर रहा हूँ। मेरा ऐसा मानना है कि यदि दैत्य, दानव एवं देवताओं को अमृत प्राप्ति हो जाए, तो वह सभी अमर हो जाएंगे। ऐसी परिस्थिति में उनकी असुरक्षा समाप्त हो जाएगी। उनके हृदय में धारणा हो जाएगी कि अमरत्व प्राप्त दैत्य, दानव अथवा देवताओं में से भी किसी को भी जीत पाना असंभव है। अतः वह जहां हैं, वहीं अपने अपने राज्य को प्रजा हित में सुचारू रूप से चलाने का प्रयास करेंगे। अमृत केवल समुद्र मंथन से ही प्राप्त हो सकता है। समुद्र मंथन अकेले करने का सामर्थ्य दैत्य, दानव अथवा देवताओं में से किसी में भी नहीं है। इसके लिए मिल जुल कर प्रयास करने होने। मैं देवताओं को दैत्य एवं दानवों के साथ मिलकर समुद्र मंथन के लिए तत्पर कर लूंगा। यदि सम्राट महाबालि दैत्य एवं दानव वंशों के सम्राटों को देवताओं के साथ मिलकर समुद्र मंथन का आदेश दे दें, तो यह कार्य बन सकता है। समुद्र मंथन से अमृत कलश प्राप्त होने पर अमृत को दैत्य, दानव एवं देवताओं में यथोचित बराबर भाग में बाँट दिया जाएगा।'

ब्रह्मऋषि नारद कुछ प्रश्न पूछना चाहते थे। इससे पहले कि ब्रह्मऋषि कुछ शब्द बोलने के लिए अपना मुख खोलें, प्रभु ने संकेत से उन्हें अभी कुछ और पूछने से मना कर दिया।

प्रभु से आज्ञा ले तब ब्रह्मऋषि नारद सुतल को प्रस्थान कर गए।

समुद्र मंथन

'नारायण, नारायण' का जाप करते हुए ब्रह्मऋषि नारद आचार्य स्वर्भानु के आश्रम सुतल तुरंत पहुँच गए। 'नारायण, नारायण' उच्चारण का परिचित स्वर सुन आचार्य स्वर्भानु को तुरंत भान हो गया कि ब्रह्मऋषि नारद पधारें हैं। उस समय आचार्य स्वर्भानु साधना में लीन थे तथा हरि विष्णु को ही स्मरण कर रहे थे। साधना को मध्य में ही छोड़ वह द्वार पर तुरंत ब्रह्मऋषि के स्वागत के लिए दौड़े और उनके चरणों में पड़ गए। प्रेम के अश्रुओं से ही उन्होंने ब्रह्मऋषि नारद के चरण धो डाले। तब ब्रह्मऋषि ने उठाकर उन्हें गले से लगा लिया और यथोचित आशीर्वाद दिया। इतने में ही सम्राट महाबालि को भी एक आश्रम वासी ने सूचित कर दिया कि ब्रह्मऋषि नारद आश्रम में पधारे हैं। सम्राट महाबालि भी तब आश्रम के द्वार की ओर नंगे पांव ही दौड़े। ब्रह्मऋषि को देखकर दूर से ही सम्राट महाबालि ने ब्रह्मऋषि को दंडवत प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। तब ब्रह्मऋषि नारद को लेकर आचार्य स्वर्भानु सम्राट महाबालि के साथ अपनी कुटिया में आ गए। करबद्ध आचार्य स्वर्भानु ने तब ब्रह्मऋषि नारद से नदी में स्नान आदि कर निर्मल होने की प्रार्थना की ताकि यात्रा की थकावट दूर हो एवं साथ में जलपान करें। आचार्य का निवेदन सुन ब्रह्मऋषि नदी की ओर स्नान-ध्यान आदि करने चल पड़े।

थोड़ी ही देर में स्नान-ध्यान से निवृत हो, यात्रा की थकान दूर कर, ब्रह्मऋषि नारद आचार्य स्वर्भानु की कुटिया में वापस आ गए जहाँ आचार्य एवं सम्राट महाबालि, दोनों ही उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। साथ में जल पान किया। जलपान समाप्ति पर आचार्य स्वर्भानु ने ब्रह्मऋषि नारद को निवेदन किया कि वह विश्राम करें। ब्रह्मऋषि नारद मुसकुराए और बोले, 'आचार्य स्वर्भानु एवं सम्राट महाबालि, मैं हरि विष्णु का एक सन्देश ले कर आपके पास पहुंचा हूँ। जब तक हरि का कार्य नहीं कर लेता, मुझे विश्राम में शान्ति कहाँ मिल सकती है?'

'प्रभु का सन्देश एवं कार्य' यह सुन सम्राट महाबालि को तो अचम्भा हुआ, परन्तु आचार्य स्वर्भानु मुसकुराने लगे। उन्हें ऐसा कुछ आभास होने लगा कि संभवतः महादेव के दिए वचन, अमरत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। फिर भी प्रत्यक्ष में वह बोले, 'ब्रह्मऋषि, आप तो जानते ही हैं कि हरि विष्णु मेरे और सम्राट दोनों के ही

इष्ट हैं। उनका सन्देश हमारे लिए आज्ञा है। हमें अत्यंत उत्सुकता हो रही है। कृपया प्रभु का सन्देश हमें शीघ्र सुनाएं।'

ब्रह्मऋषि नारद ने तब हरि विष्णु का सन्देश एवं प्रस्ताव कि दैत्य, दानव और देवता सभी मिल जुल कर समुद्र मंथन कर अमृत कलश की प्राप्ति करें एवं अमृत पान कर अमर हो जाएं, सुनाया। इससे दिन प्रतिदिन होने वाले दैत्य, दानव एवं देवताओं के मध्य युद्ध को स्थायी रूप से समाप्त किया जा सकता है। आचार्य स्वर्भानु एवं सम्राट महाबालि, दोनों ने ही इस प्रस्ताव को ध्यान से सुना। आचार्य स्वर्भानु ने तो तुरंत सहमति भी दे दी। लेकिन सम्राट महाबालि कुछ विचार में पड़ गए और बोले, 'ब्रह्मऋषि, हरि विष्णु का प्रस्ताव हमारे लिए आज्ञा है। मैं युवराज अग्र को तुरंत सन्देश भेजता हूँ कि वह तुरंत सभी दैत्य एवं दानवों के मान्यगण सम्राटों की शीघ्र अति शीघ्र एकत्रित कर एक सभा का आयोजन करें। मैं उन सभी की सहमति लेने का पूर्ण प्रयास करूंगा। आप जानते ही हैं कि अधिकतर दैत्य एवं दानव वंश के मान्यगण एवं सम्राट हरि विष्णु को अपना हितैषी नहीं समझते। अवश्य ही इसमें उनका हित निहित है, यह उनके मस्तिष्क में डालने का मैं पूर्ण प्रयास करूंगा। हरि विष्णु के इस प्रस्ताव का उत्तर देने के लिए आपको इस सभा के आयोजन तक प्रतीक्षा करनी होगी। यदि दैत्य एवं दानव वंश के मान्यगण एवं सम्राटों ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया तो मैं स्वयं अकेला ही हरि विष्णु के इस प्रस्ताव पर कार्य करूंगा, और देवताओं के साथ समुद्र मंथन करूंगा। मुझ में अभी भी इतना बल है कि मैं समुद्र मंथन में एक ओर से मथनी चला सकूं।'

आचार्य स्वर्भानु मधुर स्वर में तब बोले, 'हे सम्राट, दैत्य एवं दानव वंश के किस मान्यगण एवं आपके आधीन सम्राट में इतना साहस है कि वह आपके प्रस्ताव को अस्वीकार कर सके। यदि आप इस प्रस्ताव को दैत्य एवं दानवों के हित में समझते हैं तो अपनी सहमति सभी दैत्य एवं दानव वंशों के मान्यगण एवं सम्राटों को भेज दें। वह सब समुद्र मंथन की तैयारियां प्रारम्भ करें।'

तब सम्राट महाबालि बोले, 'आचार्य आपका, ब्रह्मऋषि का एवं स्वयं हरि विष्णु का आदेश टालने का साहस किसी में भी नहीं। फिर भी यह उचित होगा कि शुभ कार्य सभी की सहमति से किया जाए। आप युवराज अग्र को मेरा सन्देश प्रेषित कर दीजिए।'

सम्राट महाबालि की आज्ञा आचार्य स्वर्भानु ने तुरंत युवराज अग्र को प्रेषित कर दी। युवराज अग्र ने सम्राट महाबालि की आज्ञा का तुरंत पालन किया। तुरंत ही एक सभा का आयोजन किया गया जिसमें दैत्य एवं दानव वंश के सभी मान्यगण एवं सम्राट उपस्थित थे।

सभा का नेतृत्व करते हुए सम्राट महाबालि बोले, 'प्रिय सभी दैत्य एवं दानव वंश के मान्यगण सम्राट, ब्रह्मऋषि नारद हरि विष्णु का एक प्रस्ताव लेकर उपस्थित हुए हैं ताकि यह दिन प्रतिदिन का हमारे एवं देवताओं के मध्य युद्ध समाप्त किया जा सके। वह चाहते हैं कि हम देवताओं के साथ मिलकर समुद्र मंथन कर अमृत की प्राप्ति करें। अमृत मिलने पर वह सभी दैत्य, दानव एवं देवताओं के मध्य यथोचित बराबर भाग में बाँट देंगे। इससे सभी दैत्य, दानव एवं देवता अमरत्व प्राप्त करेंगे। इस से असुरक्षा की भावना समाप्त हो जाएगी एवं सभी अपने अपने राज्य में अपनी प्रजा के हित के लिए कार्य कर सकेंगे। इस प्रस्ताव का मैं पूर्ण रूप से समर्थन करता हूँ। यदि किसी को इस प्रस्ताव के विरुद्ध कुछ बोलना है तो वह अपने कथन को प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र है।'

सम्राट महाबालि की बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि 'साधुवाद, साधुवाद' के नारों से सभा गूँज उठी। सभी एक स्वर में बोले, ‘सम्राट महाबालि यदि स्वयं सहमत हैं, तो हम सभी सहमत हैं। सम्राट महाबालि आज्ञा दें कि अब हमें आगे क्या करना है?’

सभा में उपस्थित सभी दैत्य एवं दानव गणों की सहमति जान सम्राट महाबालि ने उन्हें अगले कदम की प्रतीक्षा करने का आदेश दिया। सभा विसर्जन हो गई। सभी के मुख पर अमरत्व प्राप्त करने की प्रसन्नता थी।

सम्राट महाबालि तब आचार्य स्वर्भानु के साथ उनके आश्रम वापस आ गए। उन्होंने सभी दैत्य एवं दानव वंशों के मान्यगण एवं सम्राटों की सहमति की सूचना ब्रह्मऋषि नारद को दे दी।

प्रस्ताव की स्वीकृति का समाचार ले तब ब्रह्मऋषि नारद साकेत धाम आ गए और प्रभु को सभी कथा कह सुनाई। सम्राट महाबालि के लोक तांत्रिक विचारों का अनुसरण करने से हरि विष्णु अत्यंत प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करने लगे।

हरि विष्णु को अब दैत्य, दानव एवं देवता, सभी की समुद्र मंथन के लिए सहमति प्राप्त हो चुकी थी। वह ब्रह्मऋषि नारद के साथ समुद्र मंथन की अब योजना बनाने लगे।

हरि विष्णु ब्रह्मऋषि नारद से बोले, 'ब्रह्मऋषि, तुम मंदराचल पर्वत जाओ और उन्हें सभी यह कथा सुनाओ जिस कारण दैत्य, दानव एवं देवता समुद्र मंथन के लिए एकत्रित होने वाले हैं। उनसे विनती करो कि वह मथनी बन कर इस यज्ञ को संपन्न करें। इसके पश्चात महादेव के निवास कैलाश पर्वत पर जा कर उनसे विनती करो कि वह नागराज वासुकि को मंथन हेतु नेती बनने की आज्ञा दें। यह दोनों कार्य संपन्न कर देवताओं एवं युवराज अग्र को आदेश दो कि वह समुद्र में नाना प्रकार की औषधियों डाल दें जिससे मंथन में सहायता मिले।'

ब्रह्मऋषि नारद ने प्रभु की आज्ञा का तुरंत पालन किया। मंदराचल पर्वत मथनी के लिए तत्पर हो गए। महादेव की आज्ञा से नागराज वासुकि नेती बनने के लिए समुद्र मंथन के लिए निर्धारित स्थान पर पहुँच गए। समुद्र में ब्रह्माण्ड से दैत्य, दानवों एवं देवताओं ने विविध प्रकार की औषधियां लाकर डाल दीं। एक ओर दैत्य एवं दानव वंश के वीर, और दूसरी ओर देवताओं का समूह समुद्र मंथन के लिए तत्पर हो गया। हरि विष्णु ने यथोचित मुहूर्त निकाला। निर्धारित मुहूर्त पर सभी दैत्य, दानव एवं देवता वंश के योद्धा निर्धारित स्थान पर समुद्र के किनारे पहुँच गए।

हरि विष्णु ने दो टोलियां बनाईं। पहली टोली दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं की थीं। इस टोली का नेतृत्व आचार्य स्वर्भानु एवं सम्राट महाबालि के परामर्श से युवराज अग्र को दे दिया गया। दूसरी टोली देवताओं की थी। इसका नेतृत्व देवराज इंद्र को दे दिया गया। हरि विष्णु ने कैलाश पर्वत पर निवास कर रहे शुक्राचार्य को आमंत्रित किया तथा उन्हें देवताओं के गुरु वृहस्पति के साथ इस समुद्र मंथन का पर्यवेक्षक नियुक्त किया। आचार्य स्वर्भानु एवं सम्राट महा बालि को दोनों गुरुओं, शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति, की सेवा में लगा दिया।

हरि विष्णु ने दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं को नागराज वासुकि की पूँछ, एवं देवताओं को नागराज वासुकि के शीश को पकड़ समुद्र मंथन का आवाहन किया। दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं ने इस पर आपत्ति जताई। उन्हें ऐसी अनुभूति हुई कि

देवताओं ने जान बूझ कर उन्हें नीचा दिखाने के लिए हरि विष्णु के माध्यम से नागराज की पूँछ की ओर से मंथन करने का दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं को आदेश दिलवाया है। दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं का नेतृत्व करने वाले युवराज अग्र ने हरि विष्णु से स्पष्ट कर दिया कि यदि दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं का सहयोग देवताओं को चाहिए तो वह नागराज वासुकि के शीश की ओर से ही मंथन करेंगे। प्रभु तो यह चाहते ही थे। वह तो एक मनोवैज्ञानिक खेल खेल रहे थे। वह देवताओं को पूँछ की ओर से मंथन कराना चाहते थे। लेकिन यदि ऐसा आदेश सर्वप्रथम दे देते तो संशयी दैत्य एवं दानव उन्हें ऐसा नहीं करने देते। अतः उन्होंने जान बूझकर दैत्य एवं दानवों की मनोवैज्ञानिक प्रवृति को ध्यान में रखते हुए यह लीला रची। हरि विष्णु जानते थे कि मंथन के समय घर्षण उत्पन्न होने से नागराज वासुकि के मुख से अति विषैली अग्नि समान फुफकार निकलेगी जो उनके मुख की ओर मंथन करने वालों को झुलसाती हुई उन्हें विचलित एवं निस्तेज कर देगी।

हरि विष्णु ने तुरंत युवराज अग्र का प्रस्ताव मान लिया और देवताओं को आदेश दिया कि वह नागराज की पूँछ की ओर से मंथन करें जब कि दैत्य और दानव वंश के योद्धा नागराज वासुकि के मुख की ओर से मंथन करें।

समुद्र मंथन प्रारम्भ हुआ। घर्षण से उत्पन्न शक्ति के कारण मंदराचल पर्वत स्थिर नहीं हो पा रहे थे। उनका झुकाव कभी देवों की ओर होता तो कभी दैत्य एवं दानवों की ओर। हरि विष्णु को समझते देर नहीं लगी कि मथनी को स्थिर रखने के लिए एक आधार की आवश्यकता है। तब हरि विष्णु ने कछुए का रूप धारण किया और मंदराचल पर्वत का आधार बने। प्रभु का यह अवतार कूर्म अवतार के नाम से विख्यात हुआ।

मंदराचल पर्वत रूपी मथनी के स्थिर होते ही अमृत पाने की इच्छा से दोनों टोलियां बड़े वेग से मंथन करने लगीं।

सहसा तभी समुद्र में से कालकूट नामक भयंकर विष निकला। उस विष की अग्नि से दसों दिशाएँ जलने लगीं। समस्त प्राणियों में हाहाकार मच गया। उस विष की ज्वाला से सभी देवता, दैत्य एवं दानव जलने लगे। उनकी कान्ति धूमल होने लगी। तब मंथन के पर्यवेक्षक शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति ने सभी दैत्य, दानव एवं देवताओं के साथ

मिलकर भगवान शंकर की स्तुति की। उनकी स्तुति से प्रसन्न महादेव प्रगट हुए। सभी ने उनका दंडवत कर अभिवादन किया एवं इस कालकूट विष से मुक्ति का मार्ग पूछा। महादेव ने तब मुसकुराकर उन सब को सम्बोधित करते हुए कहा, 'हे दैत्य, दानव और देवताओं, इस कालकूट विष से आपको घबराने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे एवं समस्त ब्रह्माण्ड के हित के लिए इसे मैं स्वयं धारण करूंगा। तब महादेव ने विकराल रूप धारण किया। कालकूट विष को अपनी हथेली पर रखा और उसे पी गए। महादेव ने अपनी योग शक्ति से इस विष को कण्ठ से नीचे नहीं उतरने दिया। उस कालकूट विष के प्रभाव से महादेव का कण्ठ नीला पड़ गया। तभी से महादेव नीलकण्ठ नाम से भी सम्बोधित किए जाने लगे। उनकी हथेली से कुछ विष पृथ्वी पर भी टपक गया, जिसे साँप, बिच्छू आदि विषैले जन्तुओं ने ग्रहण कर उसका विषैलापन समाप्त कर दिया।

कालकूट विष के प्रभाव से मुक्त हो अब दोनों टोलियां फिर से समुद्र मंथन में उसी वेग से जुट गईं।

समुद्र मंथन में दूसरा रत्न देव कार्यों की सिद्धि के लिये साक्षात् सुरभि एवं कामधेनु गौ प्रकट हुईं। उन्हें काले, श्वेत, पीले, हरे तथा लाल रंग की सैकड़ों गऊएँ घेरे हुए थीं। महादेव ने तब शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति को निर्देश दिया कि सुरभि एवं कामदेव गौ एवं उनके साथ समुद्र मंथन से प्रगट हुई सभी गौ माताओं को महर्षि वशिष्ठ को दान स्वरुप भेंट कर दिया जाए। वह जैसा चाहें इन गौ माताओं को अन्य ऋषियों में वितरण कर दें। महादेव के आवाहन पर महर्षि वशिष्ठ तब उपस्थित हुए और उन्होंने सुरभि एवं कामधेनु गौ के साथ समस्त गऊओं का दान सभी ऋषियों की ओर से स्वीकार किया। उन्होंने कामधेनु गौ को अपने पास रख लिया। सुरभि गौ को महर्षि गौतम को सौंप दिया तथा अन्य गऊओं का यथोचित अन्य ऋषियों में वितरण कर दिया।

महादेव की आज्ञा से सुरभि, कामधेनु एवं अन्य गौ माताओं को महर्षि वशिष्ठ को सौंपने के पश्चात अब दोनों टोलियां फिर से आवेग से समुद्र मंथन करने लगीं।

तब समुद्र मंथन से तीसरा रत्न अश्वों के सम्राट उच्चैश्रवा अश्व निकले। उच्चैश्रवा अश्व का रंग श्वेत था। इनके सात मुख थे। यह तीव्र गति से चलने वाले एवं वायु में उड़ने

वाले अश्व थे। इस अश्व को शुक्राचार्य ने सम्राट महाबालि को भेंट देने का प्रस्ताव रखा। लेकिन सम्राट महाबालि ने गुरुदेव शुक्राचार्य के पग पड़ उनसे विनती की, 'हे मेरे आधार गुरुदेव, आप तो जानते ही हैं कि मैंने तो राजसीय जीवन से संन्यास ले लिया है। मैं तो अपना शेष जीवन अब हरि विष्णु के चरणों में ही बिताना चाहता हूँ। मैं इस उच्चैश्रवा अश्व का क्या करूंगा? आप गुरु वृहस्पति के साथ विचार विमर्श कर जैसा उचित समझें, इस अश्व को उसे दे दें।'

तब शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति में विचार विमर्श होने लगा। गुरु वृहस्पति ने इसे देवराज इंद्र को देने का परामर्श दिया, जो शुक्राचार्य ने स्वीकार कर लिया। अतः यह उच्चैश्रवा अश्व तब इंद्र को भेंट स्वरुप दे दिया गया।

समुद्र मंथन का कार्य एक ओर से दैत्य एवं दानव, और दूसरी ओर से देवताओं द्वारा वेग से क्रमशः रहा। चतुर्थ रत्न के रूप में समुद्र से ऐरावत हाथी निकले। ऐरावत हाथी को पाते ही शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति में चर्चा होने लगी कि इसका अधिकारी कौन है? ऐरावत हाथी तो सदैव से ही इंद्र का वाहन रहा है। दुर्वासा ऋषि के एक श्राप के कारण ऐरावत हाथी को समुद्र में विलीन होना पड़ा था, अतः दोनों गुरुओं को यह निर्णय लेने में कोई दुविधा नहीं हुई कि इसे इसके स्वामी इंद्रदेव को सौंप दिया जाए।

सम्राट बाण को आचार्य स्वर्भानु के मुख से यह सुनकर कि ऐरावत हाथी को दुर्वासा ऋषि के एक श्राप के कारण समुद्र में विलीन होना पड़ा था, आश्चर्य हुआ और उन्होंने आचार्य स्वर्भानु से दुर्वासा ऋषि के श्राप का कारण जानना चाहा।

आचार्य स्वर्भानु बोले, 'प्रिय पुत्र बाण, एक बार दुर्वासा ऋषि पृथ्वी पर विचरण कर रहे थे। घूमते घूमते उन्होंने एक विद्याधरी के हाथों में सन्तानक पुष्पों की एक दिव्य माला देखी। उस दिव्य माला की सुगंध से समस्त वन सुवासित हो रहा था। उन्मत्त वृत्ति वाले दुर्वासा ऋषि ने वह सुन्दर माला विद्याधर सुंदरी से भिक्षा में मांग ली। विद्याधरी ने दुर्वासा ऋषि को आदरपूर्वक प्रणाम करके वह माला उन्हें दे दी। दुर्वासा ऋषि ने उस माला को अपने मस्तक पर डाल लिया और पृथ्वी पर विचरने लगे। इसी समय उन्होंने ऐरावत हाथी पर विराजमान देवराज इन्द्र को देवताओं के साथ आते देखा। उन्हें देखकर दुर्वासा ऋषि ने मतवाले भौंरों से गुंजायमान वह माला अपने सिर पर से उतारकर देवराज इन्द्र का स्वागत करते हुए उनके शीश पर डाल दी। देवराज

इंद्र ने उस माला को अपने शीश से उतारकर अपने वाहन ऐरावत हाथी के मस्तक पर डाल दी। उस समय वह माला ऐसी सुशोभित हो रही थी जैसे कैलाश पर्वत के शिखर पर माँ गंगा विराजमान हों। मदोन्मत्त ऐरावत हाथी ने उस माला को अपने शीश से उतारकर अपनी सूंड़ से भूमि पर फेंक दिया। दिव्य माला का यह अपमान देखकर दुर्वासा ऋषि को क्रोध आ गया और देवराज इन्द्र से बोले, 'अरे ऐश्वर्य के मद से दूषित चित्त इन्द्र, तू बड़ा ढीठ है। तूने मेरी दी हुई दिव्य माला का आदर नहीं किया। मेरी दी हुई दिव्य माला का अनादर मेरा अनादर करने के समान ही है। मैं तुझे श्राप देता हूँ कि तेरा त्रिलोकी का वैभव नष्ट हो जायेगा। जिस प्रकार तूने दिव्य माला को अपने वाहन ऐरावत के द्वारा पृथ्वी पर फिंकवा श्रीहीन किया, उसी प्रकार तेरा त्रिभुवन राज्य भी शीघ्र ही श्रीहीन हो जायेगा। यह मदोन्मत्त हाथी, जो मेरे द्वारा दी गई दिव्य माला के अपमान करने में तेरा सहभागी बना, शीघ्र ही समुद्र में विलीन हो जाएगा।'

यह सुनकर इन्द्र घबरा गया और तुरंत ऐरावत हाथी से उतरकर दुर्वासा ऋषि के चरणों में पड़ गया। दुर्वासा ऋषि से अपने अपराध की क्षमा मांगने लगा। लेकिन दुर्वासा ऋषि का क्रोध शांत होता ही नहीं था। वह बोले, 'इन्द्र, मैं कृपालु चित्त नहीं हूँ। मेरे अंतःकरण में क्षमा को स्थान नहीं है। तू बार बार अनुनय विनय करने का ढोंग क्यों करता है? मैं क्षमा नहीं कर सकता।'

इस प्रकार श्राप देकर दुर्वासा ऋषि वहाँ से चले गए। हताश इन्द्र भी अपने वाहन ऐरावत हाथी पर सवार अपनी राजधानी अमरावती वापस आ गए। दुर्वासा ऋषि का श्राप अन्यथा तो हो ही नहीं सकता था। इन्द्र के समस्त राज्य में वृक्ष लता आदि क्षीण होने लगीं। उनकी दिव्यता और ऐश्वर्य श्रीहीन होने लगा। यज्ञों का होना बंद हो गया। तपस्वियों ने तप करना छोड़ दिया। लोगों की दान धर्म में रुचि नहीं रही। इस प्रकार श्रीहीन इंद्र एक दिवस समुद्र के तट पर अपने वाहन ऐरावत हाथी पर सवार भ्रमण कर रहे थे। तभी समुद्र की एक लहर ऐरावत हाथी को निगल गई। इंद्र किसी प्रकार समुद्र के आगोश से निकलने में सफल हो गए। तब इंद्र हरि विष्णु के साकेत धाम गए और उन्होंने दुर्वासा ऋषि के श्राप से मुक्ति का उपाय पूछा। प्रभु ने तब उन्हें बताया कि आने वाले समय में जब समुद्र मंथन होगा, तब मंथन से निकाले गए अमृत पान के साथ ही उन्हें श्री, ऐश्वर्या, त्रिलोक का राज्य इत्यादि सभी वापस मिल जाएंगे। हरि विष्णु का समुद्र मंथन के लिए दैत्य, दानव एवं देवताओं को प्रेरित करने का कारण उनके द्वारा दिया इंद्र को यह वचन भी था।

समुद्र मंथन की कथा सम्राट बाण को आगे सुनाते हुए राहु रूप में आचार्य स्वर्भानु बोले, 'प्रिय पुत्र बाण, समुद्र मंथन से पांचवां रत्न कौस्तुभ मणि निकली। कौस्तुभ मणि हरि विष्णु की प्रिय मणि है। हरि विष्णु इसे अपने वक्ष पर सदैव धारण करते थे, लेकिन वराह अवतार के समय हिरण्याक्ष से युद्ध करते हुए यह समुद्र में गिर गई थी। अतः शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति ने इसे आदर के साथ हरि विष्णु को सौंप दिया। यह मणि अत्यंत कांतिमान है। प्रभु इसी मणि द्वारा समस्त दैवीय आपदाओं का विनाश करते हैं।'

समुद्र मंथन से छठा रत्न कल्पद्रुम नाम का एक धर्म ग्रन्थ निकला। इसे शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति ने ब्रह्मदेव को सौंप दिया। कल्पद्रुम से ही कल्पवृक्ष की उत्पत्ति हुई।

समुद्र मंथन में सप्तम रत्न के रूप में 'रम्भा' नाम की अप्सरा प्रगट हुईं। रम्भा इंद्रदेव के दरबार की एक अति सुन्दर अप्सरा थीं जिन्हें कुबेर पुत्र नलकुबर के साथ प्रेम हो गया था। इन दोनों ने गांधर्व विवाह भी कर लिया था। जब इंद्र को भ्रम हो जाता है कि कोई ऋषि, महर्षि अथवा योगी उनका सिंहासन लेने के लिए घोर तप कर रहा है, तब वह अप्सराओं का उपयोग उनके तप को भंग करने में स्वभावतः करते रहे हैं। जब एक बार महर्षि विश्वामित्र ब्रह्मदेव से ब्रह्मऋषि स्तर पाने के लिए घोर साधना में लीन थे, तब इंद्र ने पहले तो अप्सरा मेनका को उनका तप भंग करने हेतु भेजा। लेकिन अप्सरा मेनका तो स्वयं ही अपना हृदय महर्षि विश्वामित्र को दे बैठीं। इसके पश्चात इंद्र ने महर्षि विश्वामित्र का तप भंग करने के लिए अप्सरा रम्भा को भेजा। महर्षि विश्वामित्र की दिव्यता के सम्मुख अप्सरा रम्भा की एक नहीं चली। अंत में थक कर वह उनके चरणों में गिर पड़ी और क्षमा याचना करने लगी। जब महर्षि विश्वामित्र को इसका आभास हुआ कि अप्सरा रम्भा इंद्र के निर्देशानुसार उनका तप भंग करने आई है, तो उन्हें अत्यंत क्रोध आया और उन्होंने उसे शिला बन जाने का श्राप दे दिया। अप्सरा रम्भा ने उनकी हृदय से स्तुति करते हुए क्षमा माँगी और अपने को निरपराधी बताया। वह तो अपने सम्राट इंद्रदेव के एक आदेश का ही पालन कर रही थी। तब महर्षि विश्वामित्र का हृदय पिघल गया और वह बोले, 'हे सुंदरी, मैं श्राप तो वापस नहीं ले सकता। तुम्हें शिला रूप में तो अवश्य ही परिवर्तित होना पड़ेगा। तुम्हारे शिला में परिवर्तित होने के पश्चात मैं तुम्हें समुद्र को अर्पित कर दूंगा। कुछ समय तक तुम समुद्र के आगोश में शिला बनकर पड़ी रहोगी। कुछ समय पश्चात हरि विष्णु के

निर्देशानुसार दैत्य, दानव एवं देवताओं द्वारा समुद्र मंथन किया जाएगा। तब समुद्र देव तुम्हें तुम्हारे सत्य स्वरुप में प्रगट कर देंगे और तुम अपने इस सुन्दर तन को प्राप्त करोगी।'

इस प्रकार कहकर उन्होंने शिला में परिवर्तित अप्सरा रम्भा को समुद्र देव को सौंप दिया। समुद्र मंथन में महर्षि विश्वामित्र के आशीर्वाद के अनुसार वह अपने सत्य स्वरुप में प्रगट हो गईं। शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति ने अप्सरा रम्भा को स्वतंत्र कर स्वर्ग लोक लौटने का आदेश दिया। उन दोनों महान आचार्यों को नमन कर तब अप्सरा रम्भा स्वर्ग लोक को चली गईं।

समुद्र मंथन में अष्टम रत्न के रूप में माता 'श्री' माता 'लक्ष्मी' के रूप में प्रगट हुईं। लक्ष्मी तो श्री का ही रूप थीं। श्री हरि विष्णु की पत्नी हीं थी, अतः लक्ष्मी को हरि विष्णु ने वरण किया और उन्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया।

'श्री' का नया रूप 'लक्ष्मी', यह सुनकर सम्राट बाण को अत्यंत आश्चर्य हुआ। करबद्ध वह आचार्य स्वर्भानु से बोले, 'हे गुरुदेव पूजनीय आचार्य, जैसा मुझे ज्ञात है कि महर्षि भृगु पुत्री श्री से हरि विष्णु ने विवाह किया था। फिर इन विष्णु पत्नी श्री को लक्ष्मी रूप में अवतरित क्यों होना पड़ा, इस कथा को मुझे सुनाइए।'

आचार्य स्वर्भानु तब बोले, 'पुत्र बाण, तुम सत्य ही कहते हो। महर्षि भृगु पुत्री श्री से हरि विष्णु ने विवाह किया था। एक बार किसी विषय को लेकर श्री और हरि विष्णु में वाद-विवाद हो गया। वाद-विवाद इतना बढ़ गया कि श्री अपने पति हरि विष्णु से रुष्ट हो गईं। रुष्ट होकर वह अपने पिता महर्षि भृगु के आश्रम में पहुँची। महर्षि भृगु ने उन्हें समझाने के अत्यंत प्रयास किए, परन्तु उनका क्रोध शांत होता ही नहीं था। वह हरि विष्णु के साकेत धाम जाने को किसी भी प्रकार तैयार नहीं थीं। तब महर्षि भृगु ने उन्हें स्पष्ट शब्दों में कहा, 'हे पुत्री, यदि तुम जमाता विष्णु के साथ मेरे आश्रम में सहर्ष आओ तो मैं सदैव हृदय से तुम्हारा स्वागत करूंगा। परन्तु अपने पति से एक वाद-विवाद पर इतना रुष्ट होना तुम्हें शोभा नहीं देता। पति-पत्नी में इस प्रकार के वाद-विवाद तो होते ही रहते हैं। अतः मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि तुम साकेत धाम लौट जाओ।'

पिता श्री महर्षि भृगु के इन कठोर शब्दों से श्री अत्यंत आहत हुईं। तब उन्होंने समुद्र में अपने आप को सौंप कर अपने प्राणों की आहुति देने का विचार बना लिया। समुद्र के आगोश में वह चली भी गईं। लेकिन समुद्र देव तो महर्षि भृगु को अपना भ्राता मानते हैं। भ्राता की पुत्री, अर्थात स्वयं की पुत्री समान। अतः उन्होंने श्री का अपनी पुत्री स्वरुप में स्वागत किया और जब तक उनका क्रोध शांत नहीं हो जाता, तब तक उन्हें अपने आगोश में रहने को स्थान दिया। श्री का क्रोध तो शांत हो गया, लेकिन यह हठ बना रहा कि जब तक हरि विष्णु उन्हें मनाने नहीं आते, वह साकेत धाम नहीं जाएंगी। इधर हरि विष्णु भी श्री को मनाने नहीं गए। श्री इसे अपना अपमान ही समझती रहीं। यद्यपि वह अपनी हठ के कारण पति हरि विष्णु के साकेत धाम तो वापस नहीं गईं, लेकिन वह उन्हें हृदय से अत्यंत प्रेम करती थीं। उनका विरह भी उनसे सहन नहीं हो रहा था। अतः वह जड़मत हो गईं। समुद्र देव को अपनी पुत्री समान श्री की यह अवस्था देख अत्यंत दुःख हुआ और उन्होंने हरि विष्णु से उन्हें स्वीकार करने की प्रार्थना की। समुद्र देव की स्तुति से प्रसन्न तब हरि विष्णु ने उन्हें दर्शन दिए और उन्हें वचन दिया कि वह श्री को लक्ष्मी के रूप में शीघ्र ही स्वीकार करेंगे। उन्होंने समुद्र देव को आदेश दिया कि जब दैत्य, दानव एवं देवता समुद्र मंथन करेंगे तब अष्टम रत्न के रूप में वह श्री को नए स्वरुप लक्ष्मी के रूप में प्रगट कर दें। वह उनका वरण कर तब उन्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करेंगे। इस नए स्वरुप में उन्हें इस वाद-विवाद और रुष्ट होने की किसी घटना का कोई स्मरण नहीं रहेगा।'

हरि विष्णु के द्वारा समुद्र देव को वचन देने के कारण समुद्र मंथन में अष्टम रत्न के रूप में समुद्र देव स्वयं श्री को लक्ष्मी के रूप में लेकर प्रस्तुत हुए। लक्ष्मी को तुरंत हरि विष्णु ने वरण कर लिया। यह दिवस कार्तिक मास की अमावस्या था। उसी दिन से माता लक्ष्मी का पूजन प्रारम्भ हुआ जो बाद में दिवाली अथवा दीपावली नाम से मनाया जाने लगा।

राहु रूप में आचार्य स्वर्भानु सम्राट बाण को समुद्र मंथन की कथा आगे बताते हुए बोले, 'प्रिय पुत्र बाण, समुद्र मंथन से नवम रत्न के रूप में एक अत्यंत सुन्दर कन्या वारुणी मदिरा कलश लेकर प्रगट हुईं। इसे एक संयोग ही कहा जा सकता है, जो संभवतः वरुण देव का सम्राट महाबालि के प्रति अत्यंत प्रेम था, वरुण देव असुरों की ओर से समुद्र मंथन कर रहे थे। वरुण देव वारुणी पर मुग्ध हो गए। तब सम्राट महाबालि की प्रार्थना पर शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति ने वरुण देव का गांधर्व विवाह

वारुणी के साथ करा दिया। वारुणी का मदिरा कलश भी दोनों गुरुओं के आदेश पर दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं को सौंप दिया गया। ऐसी किंवदंती है कि इसी वारुणी मदिरा के ग्रहण करने के कारण दैत्य एवं दानव वंश के योद्धा मदिरा पान के आदी हो गए।'

'समुद्र मंथन से दशम रत्न के रूप में चन्द्रमा प्रगट हो गए। तुम जानते ही हो पुत्र बाण कि चन्द्रमा महर्षि अत्रि एवं माता सती अनुसुईया के पुत्र हैं। दक्ष प्रजापति की २७ पुत्रियों, अश्विन, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद एवं रेवती, जो २७ नक्षत्रों के रूप में जानी जाती हैं, से इनका विवाह हुआ था। आपस की पत्नियों की कलह से तंग आकर एक दिवस इन्होंने समुद्र देव की शरण ले ली थी। चन्द्रमा के समुद्र देव के आगोश में चले जाने के पश्चात उनकी सभी पत्नियों को अपनी त्रुटि की अनुभूति हुई और उन्होंने मिलकर हरि विष्णु से प्रार्थना की कि उन्हें उनके पति को वापस लौट कर आने में वह उनकी मदद करें। उनकी स्तुति से प्रसन्न हो तब हरि विष्णु ने उनको वचन दिया था कि समुद्र मंथन के समय उन्हें उनके पति से मिलन हो जाएगा। अतः समुद्र मंथन में दशम रत्न के रूप में चन्द्रमा प्रगट हो गए। उनकी पत्नियों को अभी भी यह भय सता रहा था कि कहीं उनके पति फिर से उन्हें छोड़ कर न चले जाएं, अतः उन्होंने मिलकर महादेव की स्तुति की और उनसे प्रार्थना की कि वह उन्हें अब कहीं न जाने दें। महादेव ने तब सभी चंद्रदेव की पत्नियों की स्तुति से प्रसन्न हो चंद्रदेव को अपने शीश में निवास दिया ताकि वह उन्हें अब कहीं भी जाने से रोक सकें। तब से चंद्रदेव महादेव के शीश की शोभा बढ़ा रहे हैं।'

'समुद्र मंथन से ग्यारहवें रत्न के रूप में 'पारिजात वृक्ष' प्रगट हुए। माता लक्ष्मी को यह वृक्ष अत्यंत प्रिय लगा और उन्होंने इस वृक्ष को शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति से अपने लिए मांग लिया। दोनों ही गुरुओं ने प्रेम और आदर के साथ इस वृक्ष को माँ लक्ष्मी को सौंप दिया। माँ लक्ष्मी ने इस वृक्ष का तब साकेत धाम में वृक्षारोपण किया। इसके पुष्प 'हरसिंहार' माँ लक्ष्मी को इतने पसंद थे कि उन्होंने ब्रह्माण्ड को यह वर दे दिया कि जो भी प्राणी हरसिंहार पुष्प के अर्पण से उनकी एवं हरि विष्णु की स्तुति करेगा, उसे धन-धान्य, यश-ऐश्वर्या एवं सभी सुख इहलोक में प्राप्त होंगे। बाद में ब्रह्मऋषि

नारद ने इसके एक बीज का पृथ्वी पर भी आरोपण किया। इस प्रकार भूमण्डल के प्राणियों को भी माता लक्ष्मी के वरदान का लाभ प्राप्त होने लगा।'

'समुद्र मंथन से बारहवें रत्न के रूप में 'पाञ्चजन्य शंख' प्राप्त हुए। पाञ्चजन्य शंख को समुद्र देव ने माता लक्ष्मी का भ्राता कहकर पुकारा, अतः शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति ने इसे हरि विष्णु को सौंप दिया। इस शंख को 'साला शंख' नाम से भी उच्चारित किया गया। साला अर्थात पत्नी का भाई। यह शंख विजय का प्रतीक है। इसकी ध्वनि को अति शुभ माना जाता है। चूंकि यह शंख माता लक्ष्मी का भ्राता है, अतः इसमें माता लक्ष्मी का वास माना जाता है।'

'समुद्र मंथन में तेरहवें रत्न के रूप में वैद्याचार्य धन्वन्तरि एक कलश ले कर प्रगट हुए। इस कलश को अमृत कलश भी कहा जाता है। इस कलश में अमृत भरा हुआ था, जो चौदहवें रत्न के रूप में जाना गया।'

'अमृत कलश प्राप्त होते ही दैत्य, दानवों एवं देवताओं के धैर्य का बाँध फूट गया और उनमें आपस में अमृत कलश के लिए झगड़ा प्रारम्भ हो गया। दैत्य युवराज अग्र ने वैद्यराज धन्वंतरि के हाथ से अमृत कलश छीन लिया। तब इद्रदेव के पुत्र जयंत ने युवराज अग्र को ललकारा। वह युवराज अग्र से अमृत कलश छीनने में सफल हो गया। इंद्रदेव के संकेत पर जयंत अमृत कलश को लेकर स्वर्ग लोक की ओर भागा। दैत्य एवं दानवों ने तब उसका पीछा किया। १२ दिन तक यह संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष में अमृत की कुछ बूँदें पृथ्वी पर चार स्थानों में पड़ गईं - हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन एवं नासिक। तब से ही वहां कुम्भ का आयोजन होने लगा। दोनों ही गुरुओं, शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति, ने अपने अपने पक्षों को समझाने के अति प्रयास किए, लेकिन सब व्यर्थ। दैत्य, दानव एवं देवताओं द्वारा इस अवहेलना से अपमानित हो तब गुरु शुक्राचार्य तो अपने निवास महादेव के पास कैलाश पर्वत लौट गए और गुरु वृहस्पति स्वर्ग लोक।'

'इस अमृत कलश की प्राप्ति के लिए हो रहे युद्ध में दैत्य और दानवों का पलड़ा भारी पड़ रहा था। ऐसा लगा कि दैत्य एवं दानव शीघ्र ही देवताओं से अमृत कलश छीनने में सफल हो जाएंगे। यदि ऐसा संभव हो गया तो दैत्य एवं दानव आपस में ही अमृत वितरण कर लेंगे एवं अमर हो जाएंगे। जिस कार्य हेतु हरि विष्णु ने यह लीला रची

थी, देवताओं को अमृत पान कर उन्हें अमर बनाने के लिए, उससे देवता वंचित हो जाएंगे। तब हरि विष्णु ने हस्तक्षेप किया। हरि विष्णु एक अति सुन्दर स्त्री, विश्वमोहिनी, के रूप में युद्ध स्थल पर प्रगट हो गए। प्रभु विश्वमोहिनी के रूप में दैत्य और दानव वंश के योद्धाओं की ओर बढ़े। जैसे ही दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं की दृष्टि इस अति सुन्दर स्त्री विश्वमोहिनी पर पड़ी, वह सभी उन पर मोहित हो गए। उन्हें पाने के लिए दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं में होड़ लग गई। अनुपम सुंदरी के समीप पहुँच वह बोले, 'हे अनुपम सुन्दरी, कमलनयनी, तुम कौन हो और किस उद्देश्य से यहाँ आई हो? लगता है ब्रह्मदेव ने अवश्य ही तुम्हें हमारे लिए यहाँ भेजा होगा। हे सुन्दरी, अब तुम यहाँ आई हो तो हमारा झगड़ा सुलझाने में हमारी सहायता करो। न्याय के अनुसार इस अमृत का निष्पक्ष वितरण हम दैत्य, दानव एवं देवताओं के मध्य कर दो।'

दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं की इस प्रकार विनती सुन स्त्री रूप हरि विष्णु रहस्यपूर्ण भाव से हँसे और उन्होंने अमृत कलश अपने हाथों में ले लिया। विश्वमोहिनी रूप धारी हरि विष्णु ने दैत्य, दानव एवं देवताओं की सहमति से उनको पहले एक दिन का उपवास रखने को कहा। तत्पश्चात स्नान-ध्यान के पश्चात उन्हें दो कतारों में बिठा दिया। एक कतार में सभी दैत्य एवं दानव और दूसरी कतार में देवता। हरि विष्णु ने अपने इस विश्वमोहिनी रूप से तब सभी दैत्य एवं दानवों का मन अपने वश में कर लिया। वह दैत्य एवं दानवों को अपनी मनमोहक अदाओं से भ्रमित करती हुई देवताओं को अजर अमर करने हेतु अमृत का पान करवाने उनकी कतार की ओर मुड़ गईं। तभी मुझे महादेव के वचन स्मरण हो गए। मैंने देवताओं की कतार की ओर देखा तो सूर्यदेव एवं चंद्रदेव पास पास बैठे हुए थे। थोड़ी ही देर में सूर्य का ओज सहन न करने के कारण चंद्रदेव उनसे हटकर थोड़ी दूरी पर बैठ गए। दोनों के मध्य एक रिक्त स्थान हो गया था। मैं चुपके से तब महादेव को हृदय में धारण कर उनके मध्य स्थान में बैठ गया। विश्वमोहिनी देवताओं को अमृत पिलाने लगीं। सूर्यदेव के पश्चात मुझे भी अमृत पान करने का अवसर मिल गया। इसी बीच सूर्यदेव एवं चंद्रदेव दोनों ने ही मुझे पहचान लिया और विश्वमोहिनी रूप में हरि विष्णु को संकेत किया कि मैं एक दानव वंश से हूँ। हरि विष्णु ने तत्काल सुदर्शन चक्र से मेरा गला काट दिया। मेरे तन के दो टुकड़े हो गए। चूंकि मैंने अमृत पान कर लिया था इस कारण मैं मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ। मैंने हरि विष्णु की ओर देखा। मैं कहना चाहता था कि हे प्रभु, मैं तो देवताओं की कतार में महादेव के निर्देशानुसार बैठा हूँ। फिर आप भी मेरे इष्ट हैं। फिर

आपने मेरे तन के दो टुकड़े क्यों कर दिए? तब प्रभु ने मुझे चुप रहने का संकेत किया। देखते देखते ही उन्होंने समस्त अमृत देवताओं को पान करा दिया। अब दैत्य एवं दानवों के लिए कुछ बचा ही नहीं था। समस्त अमृत देवताओं में वितरण कर वह अपने हरि विष्णु रूप में आ गए। जब दैत्य एवं दानवों को इसकी अनुभूति हुई कि उनके साथ धोखा हुआ है, तो वह युद्ध करने पर उतारू हो गए। तभी वहां सम्राट महाबालि भी आ गए। सम्राट महाबालि ने सभी दैत्य और दानवों को समझाया कि अब युद्ध करने से कोई लाभ नहीं। देवता अमरत्व प्राप्त कर चुके हैं। युद्ध में तुम्हारी हार सुनिश्चित है। निराश दैत्य एवं दानव तब पाताल लोक को लौट गए। सम्राट महाबालि ने युवराज अग्र को वहीं रोक लिया। हरि विष्णु के समक्ष उनके चरणों में पड़कर बोले, 'प्रभु आपने मुझे चिरंजीवी का वरदान दिया है। युवराज अग्र को दैत्य एवं दानव वंश के सम्राट होने का राज्याभिषेक कीजिए एवं मुझे अपने साथ साकेत धाम आने की आज्ञा दीजिए। हरि विष्णु ने तब 'तथास्तु' कहा। इस प्रकार युवराज अग्र सम्राट अग्र बनकर पाताल लोक वापस चले गए और सम्राट महाबालि हरि विष्णु के साथ साकेत धाम जाने की तैयारी में लग गए।'

'अब हरि विष्णु को मेरा ध्यान आया। दौड़ कर मेरे तन के कटे हुए दोनों भागों के समीप आ गए। महादेव का स्मरण किया। महादेव तुरंत प्रगट हो गए। महादेव के प्रगट होने पर हरि विष्णु ने उनसे प्रार्थना की, ‘हे श्रेष्ठ महादेव, अब शल्य चिकित्सा से अपने एक नागराज का धड़ स्वर्भानु के शीश को लगा दें एवं उस नागराज के शीश को स्वर्भानु के धड़ से जोड़ दें।‘

महादेव ने तुरंत अपने गले से अपने अति प्रिय एक विशालकाय पावन नागराज को उतारा और उसका शीश धड़ से पृथक कर दिया। तब उसी प्रकार शल्य चिकित्सा की जिस प्रकार उन्होंने गजराज का शीश गणेश को लगाया था, एवं बकरे का शीश प्रजापति दक्ष को लगाया था। इस नागराज का धड़ मेरे शीश पर लगा दिया। मुझे तब महादेव ने राहु (दिव्य परामर्श दाता) नाम से सम्बोधित किया। नागराज का शीश मेरे धड़ पर लगा दिया और उसे केतु (दिव्य पताका) नाम से सम्बोधित किया। इस प्रकार स्वर्भानु, राहु एवं केतु बन गए।‘

'महादेव तब मुझ को सम्बोधित करते हुए बोले, 'पुत्र स्वर्भानु, तुम्हारी तपस्या सफल हुई। ब्रह्मऋषि नारद के वचनानुसार तुम अब अमरत्व को प्रदान हुए। हरि विष्णु के

प्रति तुम्हारी सेवा, जो तुमने महाबालि के साम्राज्य में दी थी जब वह महाबालि के अंग रक्षक बन कर सुतल में रह रहे थे, भी फलीभूत हुई। स्मरण रखो, यदि हरि विष्णु चाहते तो सुदर्शन चक्र में निहित अग्नि बाण से तुम्हारे अमृत को सुखा सकते थे। परन्तु तुम्हें सुतल में दिए वचन को निभाते हुए उन्होंने ऐसा नहीं किया। मैं स्वयं एवं हरि विष्णु तुम्हारी तपस्या, निष्ठा, प्रेम एवं ईश्वर भक्ति से अति प्रसन्न हैं। हरि विष्णु के आदेश पर मैं तुम्हें अति सम्मान देते हुए नवगृह में स्थापित करता हूँ। सूर्य, चंद्र, मंगल, बुद्ध, वृहस्पति, शुक्र एवं शनि के साथ तुम्हें इस सम्मान की प्राप्ति हो रही है। मैंने शनि को आदेश दे दिया है कि वह तुम्हें अपने लोक में स्थान दें। ब्रह्मदेव ने शनि को ब्रह्माण्ड का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया है। इस ब्रह्माण्ड में मुख्य न्यायाधीश शनि के आदेश पर तुम प्राणियों के कर्मफल देने का कार्य करते रहोगे। अभी कुछ समय पृथ्वी पर ही रुक कर महाबालि पुत्र बाण की प्रतीक्षा करो। पैठाणी में तुम्हारे निवास का प्रबंध कर दिया गया है। पैठाणी में ही महाबालि पुत्र बाण अपनी तपस्या की समाप्ति पर तुमसे मिलने आएंगे। बाण को सब इतिहास जानने की अति उत्सुकता होगी। बाण को पूर्ण कथा सुनाकर तुम शनि लोक को प्रस्थान करना।'

इस प्रकार पूर्ण कथा सुनाकर राहु रूप में आचार्य स्वर्भानु सम्राट बाण से बोले, 'प्रिय पुत्र, अब मुझे शनि लोक जाने की अनुमति दो। तुम कई कल्पों तक पृथ्वी पर राज्य भोगो। द्वापर युग में स्वयं विष्णु के अवतार कृष्ण तुम्हारा वध करेंगे। हरि के हाथों वीरगति मिलने से तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी। मोक्ष लेकर जब तुम प्रभु के धाम, साकेत धाम, पहुंचोगे तो वहां तुम्हारे पिता महाबालि, पितामह विरोचन, प्रपितामह प्रह्लाद आदि सब से तुम्हारा मिलन होगा।'

राहु रूप आचार्य स्वर्भानु के प्रीति भरे शब्द सुनकर सम्राट बाण उन के चरणों पर गिर गए और बोले, 'हे मेरे मार्गदर्शक गुरु प्रपितामह आचार्य, आपसे बिछड़ना तो नहीं चाहता, लेकिन आपने अपना मार्ग चुन लिया है। आप शनि लोक को प्रस्थान कीजिए। मैं यहां आपका भव्य मंदिर बनवाऊँगा। आप आशीर्वाद एवं वर दीजिए कि जो भी प्राणी पैठाणी में आकर आपकी स्तुति करेगा, आप उसको उत्तम फल देंगे तथा कर्म फल से मुक्ति दे उसे ईश्वर मिलन का मार्ग प्रदर्शित करेंगे।'

आचार्य स्वर्भानु ने तब 'तथास्तु' कहा, और सम्राट बाण से विदा लेकर शनि लोक को चले गए।

आचार्य स्वर्भानु के इस वरदान के कारण आज जो भी प्राणी पैठाणी जाकर शुद्ध हृदय से उनकी स्तुति करता है, उसे वह इहलोक में सभी कष्टों से छुटकारा दिलाकर परलोक में मोक्ष प्रदान करते हैं।
राहु रूपी आचार्य स्वर्भानु के शनि लोक जाने के पश्चात सम्राट बाण अपनी राजधानी शोणितपुर लौट आए। उन्होंने राजधानी पहुंचते ही पैठाणी में राहुदेव का भव्य मंदिर निर्माण का आदेश दिया। पैठाणी में तब राहुदेव के भव्य मंदिर का निर्माण हुआ। सहस्त्रों की संख्या में तब से प्राणी वहां राहु देव की स्तुति और उनका आशीर्वाद लेने आने लगे।

न्यायमूर्ति - शनि, राहु एवं केतु

सम्राट बाण से विदा लेकर आचार्य स्वर्भानु राहु रूप में शनि लोक चले गए। शनि देव ने उनका हृदय से स्वागत किया और एक अत्यंत पावन उच्च स्थान पर उनके महल का निर्माण करवाया। मुख्य न्यायाधीश शनि के न्याय के अनुसार राहु अपने द्वितीय स्वरुप केतु एवं अन्य छै नवग्रह - सूर्य, चंद्र, मंगल, बुद्ध, वृहस्पति एवं शुक्र, के साथ कर्म फल प्रदान करने का कार्य निष्ठा पूर्वक करने लगे।

अभाग्य से हमारे समाज में आजकल कुछ ऐसी धारणा बन गई है कि राहु एवं केतु दुष्ट गृह हैं। वह केवल दुष्टता ही दिखाते हैं। यह असत्य है। राहु एवं केतु तो केवल मुख्य न्यायाधीश शनिदेव के निर्देश का पालन करते हैं। इनसे किसी को भी भय की आवश्यकता नहीं है। यदि प्राणी जीवन में सन्मार्ग पर चलते रहें तो उन्हें कोई कष्ट क्यों होगा? शनिदेव किसी भी प्राणी को बिना कारण कष्ट देने का अन्याय क्यों करेंगे? जब शनिदेव, मुख्य न्यायाधीश, अन्याय नहीं करेंगे तो राहु एवं केतु दंड क्यों देंगे? निर्मल, सत्य, पवित्र एवं धर्मानुसार राह पर चलने वाले, न्यायप्रिय, शांतिप्रिय, परोपकारी प्राणियों पर शनिदेव के साथ राहु एवं केतु देव की सदैव शुभ कृपा ही बनी रहती है।

भय क्यों होता है? इसकी उत्पत्ति के क्या कारण हैं? हम इस पर एक दृष्टि डालें। शास्त्रों में कहा गया है कि भय का कारक मन है। मन चंचल है, शंकालु है। हम एक क्षण के लिए यह मान लें कि प्राणी भला बुरा कुछ भी करता रहे, उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा। उसे कोई कष्ट नहीं होगा। वह मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा। उसके गृह में कोई क्लेश नहीं होगा। धन-धान्य के साथ वह सदैव ही सुख शांति से जीवन व्यतीत करेगा। फिर तो प्राणी अपने स्वार्थ के लिए भला बुरा कुछ भी करने में नहीं सकुचाएगा। क्या ऐसा संभव है? हमें जीवन के हर मोड़ पर उतार चढ़ाव स्वीकार करने होते हैं। जीवन पुष्पों की शैया ही नहीं, बल्कि काँटों की सेज भी है। हमारे जीवन में कांटे आते ही क्यों हैं? हमें समय आने पर मृत्यु के आगोश में क्यों सोना पड़ता है? यह हमारे पूर्व और इस जन्म के ऋण-अनुबंध ही तो हैं। जैसा करेंगे वैसा फल पाएंगे। बोया पेड़ बबूल का तो आम कहाँ से खाए। हमारे कर्मों का अच्छा बुरा फल कर्मों के अनुसार मुख्य न्यायाधीश शनिदेव देते हैं। यही सत्य है, कोई कपोल कल्पित अवधारणा नहीं। जो शाश्वत है, उसको स्वीकारना होगा। यह सत्य है कि जो आया है, वह जाएगा भी। इसी

प्रकार यह भी सत्य है कि लोक प्रशासन पुष्पों से नहीं चला करता। यदि पुष्पों से चलता होता तो दंड की आवश्यकता ही क्या थी? न अदालतें होतीं, न सामाजिक पंचायतें होतीं, न विधि-विधान होते, न कारागार होते, न आरक्षी होते। हम सभी यह भली भांति जानते हैं कि सत्ता प्रशासन के लिए दंड को प्रबल माना गया है। संभवतः यही कारण है कि हमारे दुष्कर्मों का दंड सम्राटों अथवा आरक्षी अथवा सेना द्वारा आज भी दिया जाता है। किसी भी सैन्य और आरक्षी की पहचान उसके दंड से है। सम्राट की भी पहचान दंड से है। सत्ता की पहचान भी दंड से ही है। देश की पहचान वहां की सामाजिक व्यवस्था और दंड विधान से है। हर देश की दंड संहिता है। ऐसे में यदि तीनों लोकों की दंड संहिता मुख्य न्यायाधीश शनिदेव के पास और उसको कार्यान्वित करने की शक्ति राहु एवं केतु (अन्य छै नवग्रह - सूर्य, चंद्र, मंगल, बुद्ध, वृहस्पति एवं शुक्र के साथ) में है, तो यह देव क्रूर कैसे हुए?

एक बार माता लक्ष्मी ने राहु और केतु की उपस्थिति में एक प्रश्न शनिदेव से पूछा। माता लक्ष्मी ने पूछा, 'हे शनिदेव, आपको एवं आपके सहयोगी राहु एवं केतु को प्राणी क्रूर कहते हैं? कहते हैं कि आप तीनों देव किसी के साथ भी करुणा नहीं करते। ऐसा क्यों है?'

शनिदेव बोले, 'हे माता, प्रभु ने मुझे तीनों लोकों का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया है। मेरे सहयोगी राहु एवं केतु (अन्य छै नवग्रह - सूर्य, चंद्र, मंगल, बुद्ध, वृहस्पति एवं शुक्र के साथ) मेरे द्वारा दिए कर्म फल को कार्यान्वित करने का कार्य करते हैं। मैं और मेरे सहयोगी यदि करुणा दिखाने लगे तो यह तीनों लोकों का प्रशासन कैसे चलेगा?'

तब माता लक्ष्मी बोलीं, 'शनिदेव, मृत्युलोक तो ठीक है। आप तो देवताओं पर भी कृपा नहीं करते।'

शनि देव मुसकुराकर बोले, 'हे माते, मृत्युलोक से अधिक दंड का प्रावधान तो देवलोक में होना चाहिए। देवों का मृत्युलोक में प्राणी अनुसरण करते हैं। यदि इनका आचरण अनुकरणीय नहीं होगा, तो व्यवस्था कैसे चलेगी?'

शनिदेव न्यायाधीश हैं, क्रूर शासक नहीं। राहु एवं केतु उनके दिए आदेश का पालन करते हैं, वह भी क्रूर नहीं हैं। दुर्भाग्यवश, आजकल कुछ अनभिज्ञ आचार्य लोग इनको क्रूर कहकर प्रचारित करते हैं। क्रूर न्यायाधीश कभी भी अत्याचारी, अनाचारी, पापियों को दंड नहीं देता। वह स्वयं ही त्रुटि पर होता है। वह अन्याय पर चलते प्राणियों को प्रश्रय देता है। लेकिन शनिदेव एवं राहु केतु (अन्य छै नवग्रह - सूर्य, चंद्र, मंगल, बुद्ध, वृहस्पति एवं शुक्र) तो ऐसे नहीं हैं? वह तो अन्याय सहन ही नहीं कर सकते। वह अनाचारी और पापियों को दंड देते हैं। महादेव को यह सभी देव अति प्रिय हैं, लेकिन महादेव भी कई बार इनसे नहीं बच सके। इन सभी देवों के चरित्र का एक ही सार है, 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई'। परहित करने वाले से वह प्रसन्न होते हैं। परपीड़ा सहन नहीं करते। धर्म की रक्षा करते हैं। धर्म की रक्षा से ही इस ब्रह्माण्ड को दिए ईश्वर विधान का पालन होता है।

यह त्रिदेव - शनि, राहु एवं केतु, किसी को भयभीत करने के लिए नहीं है। भय तो हमारे दुष्कर्मों के कारण हम सब के अंदर ही है। हमारी अंतर-आत्मा हमें चेताती रहती है कि उचित कर्म क्या हैं? हम अपनी अंतर आत्मा के स्वर न सुनते हुए, अपने स्वार्थवश अन्य प्राणियों को धोखा देते रहते हैं, अपना हित साधते रहते हैं। ऐसे में इस प्रकार के स्वार्थी, परपीड़क, भोगी-विलासी, क्रूर, अनाचारी प्राणियों पर यह देव अंकुश रखते हैं। आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक तीनों के केंद्र में रहने वाले यह देव मुख्यतः प्रकृति और प्रवृत्ति के देवग्रह हैं। यह तीनों देव, शनि, राहु एवं केतु भी, अन्य छै नवग्रह - सूर्य, चंद्र, मंगल, बुद्ध, वृहस्पति एवं शुक्र के साथ संतुलन के देव हैं। यह तो नेतृत्व करने वाले, समायोजक, उचित न्याय देने वाले एवं दुष्टों को दंड देने वाले देव हैं। इनका हमें सम्मान करना चाहिए, न कि इनसे डरना चाहिए।

श्री राम कथा संस्थान पर्थ उद्देश्य

- श्री राम कथा संस्थान भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी महाराज (१४वीं शताब्दी) की शिक्षाओं पर आधारित एक सनातन वैष्णव धार्मिक संस्था है।
- श्री संस्थान का सिद्धांत धर्म, जाति, लिंग एवं नैतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव रहित है। 'हरि को भजे सो हरि को होई' संस्थान का मूल मन्त्र है।
- श्री संस्थान का मानना है कि शुद्ध हृदय एवं निःस्वार्थ भाव भक्ति ईश्वर को अति प्रिय है। सभी प्रभु-भक्त एक दूसरे के भाई बहन हैं।
- ब्रह्म मनोभाव: भगवान् श्री राम, माता सीता एवं उनके विविध अवतार ही सर्वोच्च ब्रह्म हैं। वह सर्व-व्याप्त एवं विश्व के सरंक्षक हैं।
- आत्मा मनोभाव: आत्मा का अस्तित्व सर्वोच्च ब्रह्म के परमानंद पर निर्भर है। आत्मा को सर्वोच्च ब्रह्म ही निर्देशित एवं प्रबुद्ध करते हैं। श्री राम, माता सीता एवं उनके अवतार ही जीवन का अंतिम उद्देश्य मोक्ष दिलाने में समर्थ हैं।
- माया मनोभाव: माया प्रकृति के तीन गुण - सत, रज और तमस, के प्रभाव से प्राकट्य होती है। माया को सर्वोच्च ब्रह्म ही नियंत्रित करने में समर्थ हैं। सर्वोच्च ब्रह्म पर ध्यान केंद्र करने से माया का विनाश होता है, और जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिल मोक्ष की प्राप्ति होती है।
- श्री संस्थान इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निरंतर सनातन धार्मिक पत्रिकाएं, पुस्तकें, पुस्तिकाएं, काव्य ग्रन्थ आदि की रचनाएं एवं प्रकाशन करती है। साथ ही, समय समय पर श्री राम एवं अन्य धार्मिक कथाओं के संयोजन का भी प्रयास करती रहती है।

लेखक: डॉ यतेंद्र शर्मा

एक हिन्दू सनातन परिवार में जन्मे डॉ यतेंद्र शर्मा की रूचि बचपन से ही सनातन धर्म ग्रंथों का पठन पाठन एवं श्रवण में रही है। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने पितामह श्री भगवान् दास जी एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सालिग्राम अग्निहोत्री जी से प्राप्त की और पांच वर्ष की आयु में महर्षि पाणिनि रचित संस्कृत व्याकरण कौमुदी को कंठस्थ किया। उन्होंने तकनीकी विश्वविद्यालय ग्राज़ ऑस्ट्रिया से रसायन तकनीकी में पी.अच्.डी की उपाधि विशिष्टता के साथ प्राप्त की। सन १९८९ से डॉ यतेंद्र शर्मा अपने परिवार सहित पर्थ ऑस्ट्रेलिया में निवास कर रहें हैं, तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के खनन उद्योग में कार्य रत हैं।

सन २०१६ में उन्होंने अपने कुछ धार्मिक मित्रों के साथ एक धार्मिक संस्था 'श्री राम कथा संस्थान पर्थ' की स्थापना की। यह संस्था श्री भगवान् स्वामी रामानंद जी महाराज (१४वीं- १५वीं शताब्दी) की शिक्षाओं से प्रभावित है तथा समय समय पर गोस्वामी तुलसी दास जी रचित श्री राम चरित मानस एवं अन्य धार्मिक कथाओं का प्रवचन, सनातन धर्म के महान संतों, ऋषियों, माताओं का चरित्र वर्णन एवं धार्मिक कथाओं के संकलन में अपना योगदान करने का प्रयास करती है।

श्री राम कथा संस्थान पर्थ
३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज़, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
Web **https://shriramkatha.org**
Email: **srkperth@outlook.com**